स्व० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

स्व० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय
(४० वर्षकी अवस्थामें)

निवेदन

आधुनिक युगके सर्वश्रेष्ठ लेखक स्व० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायसे हिन्दी-संसार खूब परिचित है। हम अबतक उनके छोटे-बड़े २४ उपन्यास, २२ कहानियाँ, ६ बचपनकी कहानियाँ, ३ नाटक, २३ निबन्ध-लेख, १ बृहत् निबन्ध, ३ अधूरे उपन्यास, २ अपूर्ण कहानियाँ और १०० से ऊपर साहित्यिक चिट्ठियाँ प्रकाशित कर चुके हैं। इस तरह बँगलामें उनका लिखा हुआ जो कुछ था लगभग वह सबका सब हमारी 'शरत्-साहित्य पुस्तक माला' द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इस बातका भी पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया है कि अनुवाद मूलके अनुरूप ज्योंका त्यों हो; ऐसा मालूम हो कि उसे शरत् बाबूने स्वयं ही अपनी तरफसे लिखा है। और इसके लिए हमें बंगलाके मर्मज्ञ और हिन्दीके मँजे हुए लेखक पं० रूपनारायण पाण्डेय, बाबू रामचन्द्र वर्मा, बाबू धन्यकुमार जैन, डॉ० महादेव साहा आदि सुयोग्य मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि हमें इस कार्यमें हिन्दी-जगत्ने निरन्तर उत्साहित किया है और उसीका यह फल है कि आज हम शरत्-साहित्यको सम्पूर्ण कर सके और इस बीच इसके अनेक भागोंकी ५–५, ६–६ आवृत्तियाँ निकल चुकीं।

अब हमारे सामने यह कर्तव्य उपस्थित है कि हम केवल मनोरंजनसे ऊपर उठकर शरत्-साहित्यपर विविध दृष्टियोंसे गहराईके साथ विचार भी करें।

इसी कर्त्तव्यकी पूर्तिके लिए अब हम 'शरत्-प्रतिभा'को प्रकाशित कर रहे हैं। इसके लेखक प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ताके प्राध्यापक डॉ० सुबोधचन्द्र सेनगुप्त आलोचनाके क्षेत्रमें बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अंगरेजीमें भी कई आलोचना-ग्रन्थ लिखे हैं।-शरत्चन्द्र: मेन एण्ड आर्टिस्ट, ग्रेट सेंटिनल: स्टडी ऑफ् रवीन्द्रनाथ टैगोर, आर्ट आफ बर्नार्ड शा, आदि।

इनके सिवाय उन्होंने बंकिमचन्द्रके 'रजनी' उपन्यास और माइकेल मधुसूदन दत्तके 'मेघनाथ-वध' महाकाव्यको विस्तृत भूमिकाओं और टीका-टिप्पणियोंके सहित सम्पादित किया है। इस तरह वे बँगला और अंग्रेजी दोनोंके साहित्यकी आलोचनाके अधिकारी हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें गुणोंके साथ साहित्यिक दोषों और त्रुटियोंपर भी प्रकाश डाला गया है और प्रत्येक रचनाके प्रत्येक पुरुष स्त्री-बालक पात्रोंके चरित्रका विश्लेषण किया गया है।

अध्ययनशील सहृदय पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि इस ग्रन्थको पढ़ते समय समग्र शरत्-साहित्यको अपने सामने रखें और फिर आलोचककी बातोंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

—प्रकाशक

शरत्-साहित्यकी सूची

पहला भाग —**सुमति, पथनिर्देश, अनुपमाका प्रेम** (कहानियाँ), **काशीनाथ** (लघु उपन्यास)

२—**अन्धकारमें आलोक** (कहानी) **स्वामी, वैकुंठका दानपत्र** (छोटे उपन्यास)

३—**तसवीर, दर्पचूर्ण** (कहानियाँ), **चन्द्रनाथ** (उपन्यास)

४—**श्रीकान्त** प्रथम पर्व (उपन्यास)

५—**बाम्हनकी बेटी** (उपन्यास) **प्रकाश और छाया, बिलासी, एकादशी बैरागी**, **बाल्यस्मृति** (कहानियाँ)

६—**श्रीकान्त** द्वितीय पर्व (उपन्यास)

७—**श्रीकान्त** तृतीय पर्व (उपन्यास)

८—**बिन्दोका लल्ला, बोझा, मन्दिर, मुकदमेका नतीजा, हरिचरण, हरिलक्ष्मी, अभागिनीका स्वर्ग** (कहानियाँ)

९—**षोड़शी** (नाटक), **निष्कृति** (कहानी)

१०—**देवदास, बड़ी बहिन** (मझोले उपन्यास)

११—**पंडितजी**, **मँझली बहिन** (उपन्यास)

११—**रमा** (नाटक) परिणीता (छोटा उपन्यास)

१३-१४—**पथके दावेदार** (क्रान्तिकारी उपन्यास)

१५—**अनुराधा, महेश, पारस,** (कहानियाँ) **नारीका मूल्य,** (बड़ा निबन्ध)

१६-१७—**गृहदाह** (उपन्यास)

१८—**दत्ता** (उपन्यास)

१९—**ग्रामीण समाज** (उपन्यास)

२०-२१—**शेष प्रश्न** (उपन्यास)

२२—**श्रीकान्त** चतुर्थ पर्व (उपन्यास)

२३-२४—**विप्रदास** (उपन्यास), **सती** (कहानी), **तरुणोंका विद्रोह** (निबन्ध)

२५—**शरत्-पत्रावली** (चिट्ठियाँ)

२६—**जागरण, आगामी काल,** (अधूरे उपन्यास), **रसचक्र, भला बुरा, आनेकी आशामें** (अपूर्ण कहानियाँ), **अरक्षणीया,** (उपन्यास)

२७-२८-२९—**चरित्रहीन**, (उपन्यास)

३०—**बिराजबहू** (उपन्यास), **बचपनकी कहानियाँ** (कहानियाँ)

३१—**शरत्-निबन्धावली** (निबन्ध-संग्रह)

३२-३३—**देना-पावना, नया विधान** (उपन्यास)

३४-३५—**शेष परिचय** (उपन्यास)

३६—**शुभदा** (उपन्यास)

३७-३८—**शरत्-प्रतिभा** (सम्पूर्ण शरत्-साहित्यकी समालोचना), लेखक—डॉ० प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त

३९—**विजया** (नाटक)

नोट—प्रत्येक भागका मूल्य डेढ़ रुपया है और प्रत्येक भागमें लगभग १५० पृष्ठ हैं।

सूची

१	बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र	१
२	शरत्साहित्यकी भूमिका	२२
३	शरत्साहित्यमें नारी : रमणीका प्रेम	३५
४	शरत्साहित्यमें नारी : जननीका स्नेह	६४
५	शरत्साहित्यमें पुरुष	७४
६	शरत्साहित्यमें शिशु	९४
७	समस्याकी खोजमें	१०६
८	छोटी कहानियाँ	१३३
९	नाटक	१५३
१०	शरत्साहित्यमें नीति	१७०
११	शरत्साहित्यमें हास्यरस	१८२
१२	गठन-कौशल	१९३
१३	रचनारीति या शैली	२०८
१४	साहित्यिक विचार	२२९
१५	‘ शेष परिचय ’	२३९

शरत्-प्रतिभा

१—बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र

उपन्यासमें मानव-जीवनकी एक लम्बी कहानीका चित्रण हुआ करता है। उपन्यास गद्यमें लिखा जाता है। इससे इसकी कहानीमें वास्तव जीवनकी तुच्छ घटनाओंको भी छोड़ देनेकी जरूरत नहीं होती और कहानीके आरम्भसे अन्त तक सभी उल्लेखयोग्य घटनाओंका वर्णन दिया जा सकता है।

इस बारेमें मतभेद है कि उपन्यासमें कौन-सा उपादान श्रेष्ठ है। किसीके मतसे आख्यानभाग या प्लाट ही मुख्य है; चरित्रोंकी सृष्टि और अन्यान्य उपादान अपेक्षाकृत गौण हैं। प्राचीन कालके समालोचक और कहानीलेखक कहानीको ही प्रधान मानते थे। किन्तु आधुनिक समयमें चरित्र-सृष्टि ही मुख्य मानी जाती है। एक आधुनिक श्रेष्ठ अँगरेज उपन्यास-लेखकने उपन्यासका लक्षण बताते हुए कहा है कि उपन्यास है चरित्रकी सृष्टि। उन्होंने उपन्यासके अन्यान्य उपादानोंको अग्राह्य कहा है। योरपके और एक श्रेणीके समालोचकों और लेखकोंका मत है कि उपन्यास (और नाटक भी) सामाजिक जीवनके यथार्थ चित्रको अंकित करेगा और सामाजिक अन्यायके विरुद्ध बहस करेगा। एक अति आधुनिक श्रेणीके उपन्यासलेखक कहते हैं कि उपन्यासका उद्देश्य न कहानी कहना है, न चरित्रकी सृष्टि और न किसी मतवादका प्रचार। सचेतन और अवचेतन आत्मा (मन) के ऊपर बाहरकी घटनाओंके आघातसे जो सब निगूढ़ अनुभूतियाँ जागती हैं, उनकी अभिव्यक्ति करना ही

उपन्यासका काम है। वर्जीनिया उल्फ, जेम्स जॉयेस् आदि लेखक इसी श्रेणीके उपन्यास लिखकर यशस्वी हुए हैं।

इन सब तर्कों और आलोचनाओंको छोड़कर, एक सहज बात स्मरण करनेसे ही उपन्यासका स्वरूप पकड़में आ जायगा। उपन्यास मनुष्यके हृदयका चित्र है। मनुष्यके धर्म है, समाज है, राजनीति है, सचेतन और अवचेतन आत्मा है। ग्रन्थकार किसी भी एक लक्षणको अपनी दृष्टिमें रख सकता है; किन्तु उसे यह स्मरण रखना होगा कि मनुष्यके स्वरूपकी अभिव्यक्ति ही उसका आदर्श है; किसी एक विशेष लक्षणको समग्र व्यक्तित्वसे विच्छिन्न अथवा अलग करनेपर वह चित्र सजीव नहीं रहता।* केवल समाज-बन्धन, केवल धर्म, केवल राष्ट्रनीति, केवल बाहरकी घटना या केवल डूबे हुए चैतन्यको लेकर उपन्यास लिखनेसे वह एकदेशदर्शी होगा, एकांगी चित्र होगा, सम्पूर्ण नहीं। लेखककी रुचिके अनुसार इनमेंसे कोई एक उपादान प्रधानता प्राप्त कर सकता है; किन्तु वह अगर अन्य सब उपादानोंको फीका या निष्प्रभ कर दे तो काम न चलेगा।

१

बंग-साहित्यमें पहला उपन्यास कौन है, इसका विचार करना होगा। प्राचीन साहित्यकी जो सब पोथियाँ हमारे हाथ आई हैं, उनमें उपन्यासत्व नहीं पाया जाता। जान पड़ता है, उपन्यास विशेष रूपसे आधुनिक कालकी सृष्टि है। कहानी कहनेकी प्रवृत्ति सनातन है। अतएव बंग-साहित्यका जब प्रारम्भ हुआ होगा, तब कहानियाँ लिखी गई होंगी। किन्तु चाहे जिस कारणसे हो, वे सब कहानियाँ स्थायी नहीं हो सकीं। उपन्यास लिखकर साहित्यकी सृष्टि करनेकी चेष्टा वर्त्तमान युगमें ही विशेष कर प्रचलित हुई है।

कोई कोई मानते हैं कि 'आलालेर घरेर दुलाल' बंगसाहित्यका पहला उपन्यास है। इसमें कहानी है, सामाजिक चित्र है, वास्तवता या यथार्थता भी

* अति आधुनिक लेखक चेतनाका सूक्ष्मतम विश्लेषण करते समय मनुष्यके समग्र व्यक्तित्वकी बात भूल जाते हैं। इसीसे उनकी रचनामें कृतित्वका अभाव न रहनेपर भी पाठकको जान पड़ता है कि मनुष्य कोई सजीव पदार्थ नहीं है, वह एक दर्पणमात्र है, जिसके ऊपर नाना प्रतिबिंब पड़ते हैं और हट जाते हैं।

है। किन्तु इसमें उपन्यासका मौलिक उपादान नहीं है--मानव-हृदयके गोपनतम प्रदेशका चित्र नहीं है। यह ग्रन्थ लिखा गया था बोलचालकी भाषाको साहित्यका वाहन बनानेके लिए और इसका विषय है नीतिशिक्षा, व्यंग और विद्रूप। इसके भीतरसे कोई एक सुविन्यस्त या सुगठित कहानी भी नहीं तैयार हुई। केवल कुछ बिखरे हुए चित्र एकसाथ गूँथ दिये गये हैं। उनमें परस्पर जो कुछ योगका सूत्र है, वह भी अकिंचित्कर या साधारण है।

असलमें, बंगसाहित्यमें उपन्यासका प्रचलन पहले पहल स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जीने किया। बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंपर 'आलालेर घरेर दुलाल' ने कुछ प्रभाव डाला हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। परन्तु अगले युगके उपन्यासोंपर बंकिमचन्द्रका प्रभाव असीम है। बंकिमचन्द्र ही बंगसाहित्यमें उपन्यासकी सृष्टि करनेवाले हैं और उनकी प्रतिभा ऐसी असाधारण है कि उन्होंने केवल पथप्रदर्शन ही नहीं किया; उनकी रचनामें पहले पहल लिखनेवालेकी अपूर्णता या भीरुताका भी परिचय नहीं मिलता। वह बंगालके प्रथम उपन्यास-लेखक हैं, और जान पड़ता है, वही सर्वश्रेष्ठ उपन्यासलेखक हैं। उनके उपन्यासमें कहानी है, चरित्रसृष्टि है--मानव-हृदयके गोपन रहस्यका पता भी उन्होंने दिया है।

उनके उपन्यासोंको प्रधान रूपसे तीन श्रेणियोंमें बाँटा जाता है। 'राजसिंह' बृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है। 'कृष्णकान्तका विल', 'विषवृक्ष' आदि उपन्यासोंमें सामाजिक और गृहस्थ-जीवनके चित्र हैं। 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपालकुण्डला', 'मृणालिनी' आदिमें इतिहास है, पारिवारिक जीवनका चित्र भी है; लेकिन तो भी ये उपन्यास ठीक ऐतिहासिक उपन्यास या गृहस्थ-जीवनकी कहानी नहीं हैं। कारण, इनके भीतर कल्पनाका एक ऐसा ऐश्वर्य है, जो पारिवारिक जीवनकी वास्तविकताको नाँघ गया है; और जिसने इतिहासके दावेको भी सम्पूर्ण रूपसे स्वीकार नहीं किया। कल्पनाकी यह जो समृद्धि है, वह केवल इन तृतीय श्रेणीके उपन्यासोंमें ही नहीं पाई जाती, उनके सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासोंमें भी देख पड़ती है। बंकिमचन्द्रके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें अतीत कालके युद्ध-विग्रह या सामाजिक जीवनके सिलसिलेवार और वास्तव चित्र नहीं दिये गये। उनके ऐतिहासिक उपन्यास थैकरेके 'हेनरी एसमण्ड' सरीखे उपन्यासोंसे सम्पूर्ण विभिन्न हैं। उनकी

कल्पनाने इतिहासको विचित्र रंगसे रंग दिया है। जिस देशमें जेबुन्निसा और मुबारक, आयेशा और जगत्सिंह वास करते थे, वह वास्तव जगत्की तसवीर नहीं है—वह कल्पनाका स्वर्ग या अमरावती है। रोहिणीकी मृत्यु, कुन्दनन्दिनीका स्वप्नदर्शन, नगेन्द्रनाथ और सूर्यमुखीका अकस्मात् मिलन – इन सब कहानियोंमें प्रतिदिनके जीवनकी तुच्छता नहीं है। ये अप्रत्याशित, आकस्मिक और अनन्य साधारण या अनुपम चित्र हैं।

यदि किसी एक ही श्रेणीमें बंकिमचन्द्रके सभी उपन्यासोंको श्रेणीबद्ध करनेकी चेष्टा की जाय, तो इसी लक्षणको उसका मापदण्ड बनाना होगा। बंकिमचन्द्रके प्रत्येक उपन्यासमें अतिशय कल्पनाकी समृद्धि पाई जाती है। वह प्रधानतः रोमान्सकी रचना करनेवाले लेखक हैं। इस रोमान्सने कभी इतिहासमें और कभी सामाजिक जीवनके चित्रमें अपना सुन्दर प्रकाश डाला है। यहाँ यह प्रश्न होगा कि रोमान्सका विशिष्ट धर्म क्या है? रोमान्स शब्द हमारे यहाँ पश्चिमसे आया है। इसके अर्थको लेकर योरपके अनेक देशोंके साहित्यमें बहुत आलोचना हुई है। उस तर्कके काँटोंसे घिरे क्षेत्रमें प्रवेश न करके निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि जिन सब काव्यों और उपन्यासोंमें कल्पना अत्यन्त समृद्धिको प्राप्त है, जहाँ आख्यायिका या चरित्र हमारे मनमें विस्मयका संचार करता है, वही रोमान्सके लक्षणसे युक्त है। आर्ट (कला) सत्य और सुन्दरकी सृष्टि है। जो हुआ नहीं, शिल्पी या कलाकार उसीकी उद्भावना करता है। अनेक समय वह असम्भव व्यापारका भी वर्णन करता है। किन्तु वर्णनकी चातुरीसे वह असम्भवको भी सम्भावनाकी सीमामें ले आता हैं; पाठकके मनमें उठ रहे अविश्वासको निरस्त करनेकी चेष्टा करता है और, यद्यपि वस्तुतांत्रिक (यथार्थवादी) आर्टमें कोई कदर्य कहानी लिखी जाय, तो भी प्रकट करनेके माधुर्यसे -- वर्णनशैलीसे उसे भी सुन्दर बना दिया जाता है। गणिकावृत्ति कुत्सित है, यह सभी मानते हैं; किन्तु 'मिसेज वारेन्स प्रोफेशन' (Mrs. Warren's profession) नाटक सुन्दर है। रोमान्स और वस्तुतान्त्रिक रचनामें प्रभेद यह है कि रोमान्स सत्यको सुन्दरकी सहायतासे पाता है और वस्तुतान्त्रिक साहित्य सत्यकी मार्फत सुन्दरकी खोज करता है।

बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें आख्यायिका, चरित्रसृष्टि और वर्णनशैली या

प्रकाशभंगी, सभी बातें श्रेष्ठ रोमान्सका परिचय देती हैं। बंकिमचंद्रकी रचनाओंमें अलौकिक घटनाओंका प्रभाव नहीं है। उनके अनेक उपन्यासोंमें साधु-संन्यासी और ज्योतिषी मिलते हैं। किसी किसी स्थानपर यह अलौकिकता अत्यन्त अधिक हो गई है। वह हमारी अविश्वासी बुद्धिको निरस्त नहीं करती, बल्कि और भी जगा देती है। किन्तु इसे बाद देनेपर भी हम देख पाते है कि जो एकदम साधारण है, जो विशेष भावसे मनुष्य-जीवनकी कहानी है, उसकी आड़में एक विराट् शक्ति मौजूद है, जिसकी अदृश्य उँगलीके इशारेसे पार्थिव घटनाएँ नियन्त्रित होती हैं। उस विराट् शक्तिको हम नहीं पहचानते, उसका प्रकाश अस्पष्ट है; किन्तु उसके अस्तित्वके संबंधमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं, और उसके निर्देशका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। युद्धके समय दलनी बेगम, जो दुर्दशामें जा पड़ी, उसका कारण तकीकी नृशंसता और विश्वासघात है; लेकिन हम देख पाते हैं कि पहलेसे ही यह निश्चित रूपसे ठीक हो चुका है और नवाबने इसका आभास भी पा लिया है। मुबारककी मृत्युके मूलमें कुछ ऐसी घटनाओंकी परंपरा है, जिन्हें पहले सोचा भी न गया था। किन्तु जिस ज्योतिषीको उसने हाथ दिखाया था, उसके निकट घटनाओंकी यह अचिन्तित-पूर्व परम्परा चिह्नित थी। श्रीने सुना था कि वह अपने प्रियके प्राण लेनेवाली होगी। किस तरह यह असंगत कार्य उसके द्वारा सिद्ध होगा, इस विषयमें उसकी कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं थी; किन्तु जिस नियति या भवितव्यताने यह निर्देश दिया था, उसे कुछ भी अज्ञात नहीं था। इस अलौकिक शक्तिकी प्रेरणा सबसे अधिक प्रबल है 'आनन्दमठ' और 'देवी चौधरानी' में। जिन सब उपन्यासोंमें अपेक्षाकृत वास्तविक चित्र अंकित किये गये हैं – जैसे 'रजनी', 'विषवृक्ष', 'कृष्णकान्तका वसीयतनामा'—उनमें भी रोमान्सका यह उपादान मौजूद है। 'युगलांगुलीय' को स्वयं बंकिमचन्द्रने ही फलित ज्योतिष कहा है। 'रजनी' फलित ज्योतिष न होनेपर भी, उसके भीतर संन्यासीकी शक्तिका जो परिचय है, वह अलौकिक है। 'विषवृक्ष' के प्रथम दृश्यमें कुन्दनन्दिनीके स्वप्नमें उपन्यासकी सारी कहानीका संक्षिप्त सार विद्यमान है। 'कृष्णकान्तका विल' एकदम गार्हस्थ्य चित्र है। इसके भीतर अलौकिकको स्थान नहीं है। तो भी भ्रमरने जब गोविन्दलालसे कहा था—"तुमसे और मुझसे फिर भेंट होगी...तुम फिर आओगे—फिर भ्रमर कहकर पुकारोगे—

मेरे लिए रोओगे, ” तब जान पड़ता है, उसने भविष्यका चित्र स्पष्ट रूपसे देख लिया था। उसकी यह उक्ति खण्डिताका अभिशाप नहीं है, मनस्तत्त्वविद् या मनोविज्ञानके ज्ञाताका विचार नहीं है; यह सत्यद्रष्टाकी भविष्यवाणी है। भ्रमर जैसे क्षणभरके लिए भविष्यके अन्धकारमय पर्देको चीर कर उसके भीतर प्रवेश कर गई थी और उपन्यासके उत्तरार्द्धमें वर्णन की गई घटना जैसे इस भविष्यवाणीको सार्थक करनेके लिए ही संघटित हुई थी।

बंकिमचन्द्रने जो सब चरित अंकित किये हैं उन सबमें रोमान्सके असाधारणत्वकी छाप है। सबसे पहले प्रकृतिपालिता पुत्री कपालकुंडला और रहस्यमयी मनोरमाका खयाल आता है। ये रक्त-मांसकी बनी स्त्रियाँ हैं; इनकी प्रकृति भी स्त्रीजनसुलभ या रमणीजनोचित है। तथापि जान पड़ता है, ये धरतीकी धूलसे बहुत ऊपर, बहुत दूर हैं। ये दैनंदिन जीवनमें दूसरेके चित्तमें विभ्रमका संचार कर सकती हैं, लेकिन कभी नित्यकी सम्पत्ति होकर नहीं रहेंगी। प्रफुल्ल, सत्यानन्द, जयन्ती—इनके साथ प्रकृतिका सम्बन्ध कम है; ये सब रहस्यसे ढके हुए भी नहीं हैं। किन्तु ये भी साधारण नर-नारियोंके क्षेत्रसे बहुत दूर हैं। साधारण मनुष्यके जीवनको ये अपने आदर्शसे अनुप्राणित करना चाहते हैं, किन्तु ये स्वयं संसारमें डूबे रहकर भी सम्पूर्ण रूपसे अपने व्यक्तित्वको लुप्त नहीं करते—अपना आपा नहीं खोते। इनका व्यक्तित्व मानवके कार्यमें लगा है, किन्तु उसने अपनी स्वतन्त्रता नहीं खोई। माधवाचार्य, चन्द्रचूड़, भवानी पाठक, राजसिंह—ये सत्यानन्द या देवी चौधरानीकी अपेक्षा कम चमकते हैं; किन्तु इन लोगोंका व्यक्तित्व भी अनन्य साधारण और अतिमानवीय है। ये एक विराट् आदर्शके द्वारा अनुप्राणित हुए हैं और उसी आदर्शके लिए इन्होंने और सब कामनाएँ तज दी हैं।

इन सब विराट् अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंको छोड़कर अपेक्षाकृत नीचेके स्तरके, साधारण जीवनके साधारण नर-नारियोंके चरित्रकी आलोचना करने पर भी हम इसी विशेषताका परिचय पाते हैं। बंकिमचन्द्रने जिन जिन नायक-नायिकाओंके चरित्र अंकित किये हैं, वे सभी कुछ कुछ अनन्य-साधारण या कुछ विशेषता लिये हुए हैं। इसका कारण यह है कि प्रायः प्रत्येक चरित्र ही एकएक आदर्शके द्वारा अनुप्राणित या सजीव हुआ है, और अवि-

चलित दृष्टिसे, अदम्य तेजके साथ, उसने उसी आदर्शका अनुसरण किया है। बंकिमचन्द्र स्वयं प्राचीन हिन्दू आदर्शपर निष्ठाके साथ विश्वास करते थे और यही अकुंठित निष्ठा तथा अविचलित एकाग्रता उनके द्वारा सृष्टि किये गये नर-नारियोंमें मौजूद है। प्रताप, सूर्यमुखी, भ्रमर--इन सबके मनमें कभी कोई दुबिधा नहीं आई, अनुसरण किये गये आदर्शके सम्बन्धमें कभी सन्देह या जिज्ञासा नहीं हुई। यह तो हुई नायक-नायिकाओंकी बात। प्रतिनायकों और प्रतिनायिकाओंके चरित्रमें भी बंकिमचन्द्रकी यह एकदेशदर्शिता देखनेको मिलती है। रोहिणी बिलकुल ही पापिन है। कुन्दके प्रति उसके स्रष्टाको करुणा है, किन्तु उसकी प्रणयकी आकांक्षाके सर्वथा घृणाके योग्य होनेमें उसे कोई सन्देह नहीं है। इस तरह बंकिमचन्द्रके प्रधान चरित्रोंकी आलोचना करनेसे देखा जायगा कि वे किसी एक गुण या दोषके प्रतीक हैं, और इसी बातने उनको सजीव बना दिया है। उनके चरित्रोंका प्रधान गुण—नानाप्रकारकी प्रवृत्तियोंका समावेश नहीं, किसी एक प्रवृत्तिका ऐश्वर्य है।

केवल दो-एक चरित्रोंमें उन्होंने साधारण मनुष्यका चित्र खींचा है। पहले नगेन्द्रनाथ या गोविन्दलालका खयाल आता है। इनके मनमें सत् और असत् प्रवृत्तियाँ समान भावसे काम करती हैं। हम इन्हें कभी अति नीच नहीं समझ सकते; मगर ये महामानव भी नहीं हैं। किन्तु उपन्यासमें इनकी एक ही प्रवृत्तिको बड़ा करके दिखाया गया है। काम मनुष्यको कितना उन्मत्त कर सकता है, इसका चित्र इनके माध्यमसे अंकित हुआ है, और जब इनके मनमें पछतावा आया है, तब वह सीमाको नाँघ गया है। ये साधारण मनुष्य हैं; किन्तु साधारण मनुष्य किसी प्रबल प्रवृत्तिकी उत्तेजनामें कैसा असाधारण बन जाता है, इसका परिचय इनकी कहानीमें पाया जाता है। व्रजेश्वर अवश्य ही एकान्तभावसे बिलकुल ही साधारण आदमी है और उसके भीतर किसी एक प्रवृत्तिका बाहुल्य या जोर नहीं है। इस हिसाबसे व्रजेश्वर बंकिमचन्द्रके अन्यान्य नायकोंसे कुछ भिन्न है। मगर यह भी मानना होगा कि उसे उपन्यासमें देवीचौधरानीके प्रयोजनसे लाया गया है। उपन्यास उसकी कहानी नहीं है। उसका चरित्र खूब सजीव होकर खिल उठा है; किन्तु तो भी यह बात न भूलनी चाहिए कि वह

अप्रधान या गौण चरित्र है। नायिकाके जीवनमें उसने भवानी पाठककी अपेक्षा भी छोटा स्थान अधिकृत किया है।

बंकिमचन्द्रकी प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें भी उनकी सृष्टिकी विशेषता है। उन्होंने शक्तिके संघर्षका चित्र आँका है, नर-नारीके हृदयकी नाना प्रवृत्तियोंके द्वन्द्व या संघर्षका सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। यह बात नहीं है कि रोमान्समें इस प्रकारका विश्लेषण असम्भव हो। शेक्सपियरके नाटकोंकी विशेषता ही हृदयमें नाना प्रवृत्तियोंका संघर्ष है। किन्तु बंकिमचन्द्र उस तरफ गये ही नहीं। उन्होंने एक एक प्रवृत्तिको समग्र भावसे देखा है और उस प्रवृत्तिके अत्यधिक अनुशीलनके फलाफलकी आलोचना की है। भ्रमर अपने स्वामी गोविन्दलालको मन-वाणी-कायासे कितना ही प्यार क्यों न दे, जो नियति (विधाताका विधान) गोविन्दलालकी रोहिणीके प्रति आसक्तिका रूप रखकर आती है, उसे वह किस तरह रोक सकती है ? अथ च नियति आकाशविहारी अदृष्ट देवताका खयाल भर नहीं है, इसकी जड़ पार्थिव घटना-चक्रके विवर्त्तन और मनुष्यकी आकांक्षाके भीतर है। प्रत्येक व्यक्तिका जीवन अपने नियमसे चलता है। जीवनमें ट्रेजिडी यह है कि एक मनुष्यका सुख दूसरे मनुष्यके ऊपर निर्भर करता है। अथ च वह द्वितीय व्यक्ति अपने स्वाधीन मार्गपर चलना चाहता है। भ्रमर गोविन्दलालको लेकर सुखी होती है; किन्तु गोविन्दलाल रोहिणीको चाहता है। शैवलिनीको छोड़नेके लिए ऐसा कोई काम नहीं जो प्रतापने न किया हो। वह जलमें डूबा, शैवलिनीको उसने कसम धराई, शैवलिनीको छोड़ दिया, किन्तु किसी तरह उसे छुटकारा नहीं मिला। लाखों शैवलिनियाँ अपने पैरोंपर पड़ी पानेपर वह क्या करता, इसकी आलोचना उक्त उपन्यासके रामानन्द स्वामी करें; किन्तु प्रतापने देखा है कि एक शैवालिनीका प्रेम ही नियतिकी तरह दुर्वार है—उसका निवारण वशकी बात नहीं है; वह नियतिकी तरह ही विचारविहीन है। मुबारकका जीवन दो रमणियोंके असीम प्रेमके ऐश्वर्यसे समृद्ध हुआ है; किन्तु सीमाहीन प्रेम केवल उसके जीवनका श्रेष्ठ ऐश्वर्य ही नहीं है, वह चरम अभिशापमें भी दिखाई दिया है। बादशाहजादीके प्रणयके साथ उसका दम्भ और मर्यादा-बोध जड़ित है, और दरिया बीबीके अतुल प्रेमके भीतर उसकी अनिवार्य जिघांसा छिपी हुई है।

बंकिमचन्द्रको हृदयकी प्रवृत्तियाँ केवल प्रवृत्तिमात्र नहीं जान पड़ीं। उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको विराट् शक्ति माना है; जैसे इन प्रवृत्तियोंकी एक स्वतन्त्र सत्ता है। नर-नारीके हार्दिक द्वंद्वका चित्र खींचते समय उन्होंने इन प्रवृत्तियोंको सुमति और कुमति नाम दिया है। जैसे उनका एक निजस्व व्यक्तित्व है, जैसे अन्यान्य शक्तियोंकी तरह वे भी अपने गतिके वेगकी प्रबलताके साथ आगे बढ़ती हैं। उन्होंने हृदयकी प्रवृत्तियोंको समग्र भावसे देखा है, इसीसे उन्होंने उनका खण्ड खण्ड करके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। उनकी प्रतिभाका लक्षण कल्पनाकी विशालता है, विश्लेषणका पंखानुपंख भाव नहीं। नगेन्द्रनाथ और गोविन्दलाल प्रथम जीवनमें स्नेहपरायण स्वामी थे, एकाएक वे अन्य स्त्रीपर असक्त हो गये। इस परिवर्तनकी उनके उपान्यासोंमें मनस्तत्त्वमूलक व्याख्या नहीं है। बाहरकी किस किस घटनासे यह परिवर्तन साधित हुआ—इसका चित्र है; किन्तु मनमें धीरे धीरे किस तरह आदर्शसे गिरना हुआ, इसका आभास रहने पर भी विस्तृत चित्र नहीं है। प्रसादपुरमें रोहिणी और गोविन्दलालका सम्पर्क या मिलना-जुलना खूब सहज था और उनका जीवन खूब सुखमय था, ऐसा नहीं जान पड़ता। ऐसा न होता तो रोहिणी रासबिहारीकी कमलदल-सी विशाल आँखोंकी बात क्यों सोचती और गोविन्दलाल ही क्यों कोई बात न सुनकर पिस्तौलका सहारा लेता? किन्तु रोहिणीके जीवन-नाटकके चतुर्थ अंकका कोई उल्लेख योग्य चित्र हम नहीं पाते, अथ च इस श्रेणीके चरित्रकी आलोचनामें चतुर्थ अंक ही मुख्य है।

डाक्टर श्रीकुमार वंद्योपाध्यायने कहा है कि पापके प्रति बंकिमचन्द्रमें सहज वितृष्णा या घृणा थी। वर्त्तमानकालके यथार्थवादी साहित्यिकोंकी तरह वह पापका विश्लेषण करना पसंद न करते थे, यह कार्य उनको प्रिय न था। इस कथनमें कुछ सत्यांश है; किन्तु बंकिमचन्द्र किसी भी जगह, बालकी खाल निकालना जिसे कहते हैं, ऐसा विश्लेषण पसंद नहीं करते थे। शैवलिनीका प्रायश्चित्त और परिवर्तन अलौकिक उपायसे कराया गया है। प्रफुल्ल जो देवी चौधरानीके रूपमें बदल गई है, सो भी एकदम पार्थिव व्यापार नहीं है। कारण, प्रफुल्ल वही शक्ति है, जो—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

[अर्थात् साधुजनोंकी रक्षा, दुष्कर्मियोंके विनाश और धर्मकी सम्यक् स्थापनाके लिए मैं प्रत्येक युगमें जन्म लेता हूँ।]

—श्रीमें भी जो परिवर्त्तन आया है, वह भी जैसे बाहरकी घटनाका परिवर्तन है। सीतारामका पतन खूब विस्मयजनक है; किन्तु वह सत्य और सजीव नहीं हो सका। हम इस परिवर्त्तनको सहजमें नहीं मान पाते। यह हमें अविश्वसनीय लगता है।

२

बंकिमचन्द्रकी मृत्युके उपरान्त बंगलाके उपन्यास-साहित्यमें बहुत परिवर्त्तन हुआ है। अवश्य ही उनके प्रभावसे यह साहित्य कभी मुक्त न हो सकेगा। उनकी मृत्युके उपरान्त ऐतिहासिक उपन्यासोंकी रचना एकदम बंद हो गई या लुप्त हो गई है, यह कहा जा सकता है। बंकिमचन्द्रके जीवन-कालमें और उनकी मृत्युके कुछ समय बाद भी किसी किसीने ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेका प्रयास किया है। इन लोगोंमें रमेशचन्द्र दत्तका नाम विशेषरूपसे उल्लेख योग्य है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रथम दो उपन्यास 'बहू ठाकुरानीकी हाट' और 'राजर्षि' ठीक ऐतिहासिक उपन्यास तो नहीं हैं; पर उनके भीतर इतिहास है। आधुनिक बंग-साहित्यमें स्वर्गीय हरप्रसाद शास्त्री और स्वर्गीय राखालदास बंद्योपाध्यायने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। किन्तु ये कोई श्रेष्ठ औपन्यासिकके आसनका दावा नहीं कर सकते। जान पड़ता है, भारतवर्षके इतिहासकी और सामाजिक जीवनकी ऐसी एक विचित्रता है कि एकपर दूसरेका प्रभाव नहीं पड़ा। इसीसे यद्यपि बंकिमचन्द्रने कई उपन्यासोंमें इतिहासका सहारा लिया है, तथापि उन्होंने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास केवल एक 'राजसिंह' लिखा है। उनकी अपनी रायमें भी केवल राजसिंह ही उनका एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।

बंकिमचन्द्रके उपरान्त रवीन्द्रनाथकी प्रतिभाने वंगसाहित्यको सबसे अधिक समृद्ध किया है। वह प्रधान रूपसे कवि होनेपर औपन्यासिक भी हैं। और, विस्मयकी बात यह है कि रवीन्द्रनाथकी काव्य-प्रतिभा उनके प्रथम युगके श्रेष्ठ

उपन्यासोंकी सहजगतिमें बाधा नहीं डाल सकी। उपन्यासमें—विशेषकर सामाजिक उपन्यासमें—वास्तवके साथ अपेक्षाकृत प्रत्यक्ष परिचय रहना चाहिए। इसके सिवा प्रत्येक उपन्यास एक कहानीका आश्रय लेकर गठित होता है, अतएव उसमें बाहरकी घटना या प्लाटको प्रधानता दी जाती है। गीति-कविकी रचनामें उपन्यासके ये दोनों उपादान होंगे, इसकी प्रत्याशा नहीं की जाती। किन्तु रवीन्द्रनाथके प्रथमयुगके उपन्यासोंमें इन दोनों उपादानोंका अभाव नहीं है। उनके उपन्यासोंमें बंगालके सामाजिक जीवनका जो चित्र हमें मिलता है, वह इस बातका साक्षी है कि उनको वास्तव जीवनका गहरा परिचय था। रवीन्द्रनाथके इन सब उपन्यासोंमें घटनाओंका दैन्य या कमी भी नहीं है। रवीन्द्रनाथने बहुत पैनी और सूक्ष्म दृष्टिसे हमारे पारिवारिक जीवनको अच्छी तरह देखा-परखा और तिल तिल करके विश्लेषण करते हुए उसका वर्णन किया। इन सब चित्रोंमें रोमान्सकी सुदूरता नहीं है। ये उनकी प्रत्यक्ष-गोचर अभिज्ञतासे उत्पन्न हुए जान पड़ते हैं। इनमें कवि-प्रतिभाकी अपेक्षा यथार्थवादी लेखककी पर्यवेक्षण और विश्लेषणकी शक्तिका परिचय अधिक मिलता है।*

* रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंमें कविप्रतिभाका परिचय न हो, यह बात नहीं है। उन्होंने भी एक नये ढंगके रोमान्सकी सृष्टि की है, और इस रोमान्सकी पूर्ण अभिव्यक्ति उनकी पिछली अवस्थाके उपन्यास 'चतुरंग,' 'शेषकी कविता,' 'मालञ्च,' 'चार अध्याय' आदिमें हुई है। इन सब उपन्यासोंमें रोजमर्राके जीवनकी बातें काव्यके कल्पनामय कल्पलोकमें उन्नीत होकर बहुत ही सुन्दर हो गई हैं। जिन सब नर-नारियोंकी बातें इनमें लिखी गई हैं, वे असाधारण नहीं हैं। उनके जीवनमें अलौकिक घटनाओंका समावेश नहीं हुआ। किन्तु उन सबकी अनुभूति इतनी तीव्र है, कल्पना इतनी रंगीन है और बुद्धि इतनी सूक्ष्म है कि उनकी जीवनचर्याको वास्तव जीवनकी प्रतिच्छवि माननेको जी नहीं चाहता। इन सब उपन्यासोंमें जो आख्यानभाग या प्लाट है, उसमें वह परिपूर्णता नहीं है, जिसे उपन्यासका अपरिहार्य अंग माना जाता है। ये जैसे जीवनकी कुछ कवित्वमय घड़ियोंकी समष्टिमात्र हैं, इनमें काव्य और उपन्यासके भेदको मिटा डालनेकी चेष्टा की गई है। इनमें धीमी चालका धीरे धीरे होनेवाला विश्लेषण नहीं है; केवल कल्पनाके भीतरसे बीचबीचमें एक प्रकारका तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टिका परिचय पाया जाता है। इस प्रकारका उपन्यास खालिस उपन्यास कहा जा सकता है कि नहीं, इस प्रश्नको लेकर तरह तरहके संदेह उठाये गये हैं। डाक्टर श्रीकुमार बंद्योपाध्यायने इन सब उपन्यासोंके गुण बतलाये हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि

आशा(करुणा), महेन्द्र(कुंज) और विनोदिनी (माया)की कहानीके साथ भ्रमर, गोविन्दलाल और रोहिणीकी कहानीका मौलिक सादृश्य है; किन्तु उसकी प्रकाशभंगी या वर्णन करनेकी शैलीमें महान् अन्तर है। गोविन्दलाल जो रोहिणीके प्रेममें पड़ा सो ठीक एक घड़ीभरके दर्शनसे नहीं, तथापि यह प्रेम एक सहसा उत्पन्न हुआ मोहमात्र है। यह आकर्षण कितना दुर्निवार और जबरदस्त था, यह बंकिमचन्द्रने दिखाया है, किन्तु किस प्रकार अनेक द्वन्द्वोंके बीच इस मोहने गोविन्दलालके चित्तको ढँक लिया, उसके विवेकपर पर्दा डाल दिया, इसका विस्तृत विश्लेषण उपन्यासमें नहीं है। रवीन्द्रनाथका चित्र और तरहका है। महेन्द्रको जो विनोदिनीने उद्भ्रान्त किया, सो उसे सहसा देखनेका फल नहीं है। तरह तरहकी छोटी-मोटी चातुरी और तुच्छ घटनाओंके भीतरसे यह आकर्षण उत्पन्न हुआ, सजीव हो उठा। रोहिणीके साथ भेंट होनेके पहले गोविंदलाल और भ्रमर सुखपूर्वक समय बिता रहे थे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसका कोई विस्तृत वर्णन नहीं है। 'चोखेर बाली' (आँखकी किरकिरी) में रवीन्द्रनाथने महेन्द्र और आशाके मिलनका पंखानुपंख वर्णन दिया है। इसमें माताका रुठना, चारुपाठका पढ़ना, कालेज जानेमें नागा करना और परीक्षामें फेल होना, सब कुछ है। यहाँ तक कि वर्षाके दिनको रात और पूर्नोकी रातको दिन माननेकी आकाश-कुसुमकी कल्पना भी नहीं छूटी है।

चरित्रकी सृष्टिमें भी रवीन्द्रनाथकी कल्पना वास्तव-प्रिय ही प्रमाणित होती है। भ्रमरमें एक अलौकिक तेज और महिमा है; किन्तु आशा साधारण घरकी अति साधारण स्त्री है। यह भी वह अच्छी तरह नहीं समझ पाती कि क्या करके किस तरह उसका सर्वनाश किया जा रहा है। अन्यान्य उपन्यासोंकी आलोचना करनेपर भी यह निपुणता दिखाई देगी। गोराको पहले महामानव

"इन उपन्यासोंमें विश्लेषण और सांकेतिकताका समन्वय बिलकुल ही सन्तोषजनक नहीं जान पड़ता।" इन सब उपन्यासोंमें गुण-अवगुण चाहे जो भी क्यों न हो, रवीन्द्रनाथके बादके उपन्यास-लेखक इस तरहके आर्टका अनुशीलन कर पावेंगे, ऐसा नहीं जान पड़ता। ऐतिहासिक उपन्यास जैसे बंकिमचन्द्रके बाद ही लुप्तप्राय हो गये हैं, वैसे ही शायद इस श्रेणीके उपन्यास भी रवीन्द्रनाथके बाद और न लिखे जायँगे। यह उपन्यासका आर्ट केवल अभिनव ही नहीं, अननुकरणीय भी है।

समझनेकी भूल हो सकती है* । किन्तु उपन्यासमें अधिक दूर आगे बढ़ते-न-बढ़ते ही देखते हैं कि वह एक साधारण मनुष्य है; और उसमें जो कुछ असाधारणता है, वह भी भित्तिहीन है। उसका जन्म हुआ था म्यूटिनी (गदर) के समय। वह लालित-पालित हुआ था एक हिन्दूके घरमें। इसीसे उसकी अति उग्र निष्ठा अर्थहीन है, वह एक प्रकारका विकारमात्र है। इसके बाद देशसेवामें उग्र उत्साह रहने पर भी उसके कामोंमें कोई अनन्यसाधारणता नहीं है। सबके अन्तमें उसके जन्मके रहस्यको प्रकट करके सुचरिताके साथ उसे मिलाकर रवीन्द्रनाथ उसे एकदम साधारण मनुष्यकी श्रेणीमें ले आये हैं। 'नौका डूबी' उपन्यासमें रमेश और कमलाका मिलन थोड़ा अति-नाटकीय है; किन्तु उनकी सम्मिलित जीवनयात्राका चित्र अनेक छोटी-मोटी मामूली बातोंके विवरण द्वारा अंकित किया गया है। कमलाके ब्याहके बारेमें सत्य बात जान लेनेपर रमेशने अतिनाटकीय कुछ नहीं किया, उसने इस जटिल समस्याका सहज सरल समाधान करनेकी चेष्टा की।

रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंका और एक प्रधान लक्षण यह है कि उन्होंने चिर-प्रचलित नीतिको मान कर उसके माहात्म्यका कीर्तन या बखान करनेके लिए उपन्यासोंकी रचना नहीं की। नीतिके सम्बन्धमें उनका यह पक्षपातशून्य होना उनकी प्रतिभाकी मौलिकताका परिचय देता है। बंकिमचन्द्रने चिरकालसे आचरित नीतिको मान लिया है और अपने उपन्यासोंमें भली और बुरी इन दोनों प्रकारकी शक्तियोंके संघर्षका चित्र अंकित किया है। रवीन्द्रनाथके उपन्यासोंमें, 'नौका डूबी' में प्रचलित रीतिके प्रति श्रद्धा दिखाई गई है; किन्तु 'चोखेर बाली' (आँखकी किरकिरी) में यह झुकनेकी स्वीकृति नहीं है। 'चोखेर बाली' ने बंगसाहित्यकी उपन्यास-धाराको नया मोड़ दिया है, नई राह दिखाई है। 'दुर्गेशनन्दिनी' के बाद अगर कोई ग्रंथ उपन्यासके क्षेत्रमें नया युग लानेका दावा कर सकता है तो वह 'चोखेर बाली' है। 'चोखेरबाली' में विधवाके प्रेमकी आकांक्षाका चित्र अंकित हुआ है; किन्तु

---

* 'चार अध्याय' उपन्यासके इन्द्रनाथके सम्बन्धमें भी यह भूल हो सकती है। किन्तु कविने दिखाया है कि उसकी उग्र स्वादेशिकता (स्वदेशभक्ति) व्यर्थकाम वैज्ञानिकके मनका विकारमात्र है। वह महामानवताकी सहज स्फूर्त्ति नहीं है।

रवीन्द्रनाथने कहींपर विनोदिनीको कोड़े नहीं मारे, बुरा-भला नहीं कहा। उसकी आकांक्षाको रमणीकी सहजात स्वाभाविक आकांक्षाके रूपमें ग्रहण करके उन्होंने उसका विश्लेषण किया है—उसका वर्णन दिया है। उन्होंने इस उद्दाम या प्रचण्ड प्रवृत्तिका जयगान भी नहीं किया; बल्कि यह बतलाया है कि यह उच्छृंखलता कैसा प्रलय मचा देती है। लेकिन चूँकि विनोदिनी विधवा है, इसी लिए उसका किसी पुरुषके प्रति आसक्त होना असंगत होगा—ऐसी बद्धमूल धारणाको लेकर रवीन्द्रनाथ यह उपन्यास लिखने नहीं बैठे थे। बल्कि यही इस उपन्यासका अन्यतम प्रतिपाद्य विषय जान पड़ता है कि उसकी-सी अवस्थामें पड़नेपर महेन्द्र या बिहारीके प्रति आसक्त होना ही उसके लिए स्वाभाविक है। किन्तु अन्त तक वह इस निरपेक्षता या तटस्थताकी रक्षा नहीं कर पाये। इसी कारण उपन्यासके अन्तिम अंशमें विनोदिनीका चरित्र जैसे कुछ अद्‌भुत-सा बन गया है। जान पड़ता है, ग्रन्थकारने ऐसे एक चरित्रकी सृष्टि कर डाली है, जिसकी परिणतिके सम्बन्धमें वह अपने मनको स्थिर नहीं कर सके। लेकिन तो भी उन्होंने प्रचलित संस्कारसे मुक्त होकर नर-नारीके हृदयका चित्र अंकित करनेकी जो चेष्टा की, वही लक्ष्य करनेका विषय है और यही बंग-साहित्यकी गतिका नियामक हुआ। बंकिमका युग नाँघकर हम एक नवीन युगमें पहुँच जाते हैं।

३

'रवीन्द्र-जयन्ती' के अवसरपर शरत्चन्द्रने कहा था कि वह साहित्यमें गुरु-वादको मानते हैं, और प्रसंगवश उन्होंने रवीन्द्रनाथके 'चोखेर बाली' उपन्यासका उल्लेख भी किया था। रवीन्द्रनाथके इस उपन्यासमें संस्कारसे मुक्त होनेका जो परिचय पाया जाता है, उसीका पूर्णतर विकास शरत्चन्द्रके साहित्यमें हुआ है। रवीन्द्रनाथने विनोदिनीको प्रणयाकांक्षाकी स्वाभाविकताको स्वीकार किया है और शरत्चन्द्रने रमा, राजलक्ष्मी, अभया आदिका पक्ष लेकर प्रीतिहीन धर्म और दयाहीन समाजसे प्रश्न किया है कि वह मनुष्यका कौन मंगल कर सके हैं? एक विख्यात अँगरेज समालोचकने कहा है कि बीसवीं सदीके साहित्यकी सबसे पहली बात है एक विराट् जिज्ञासा। इस युगके साहित्यने

सभी विषयोंमें प्रश्न उठाया है। योरपके साहित्यके सम्बन्धमें यह कथन सम्पूर्ण रूपसे लागू हो सकता है कि नहीं, इस बारेमें तर्क उठ सकता है—बहस की जा सकती है। कारण, वहाँ योरपमें अधिकांश साहित्यिक केवल प्रश्न करके ही नहीं रह गये, प्रश्नकी मीमांसा लेकर भी उपस्थित हुए हैं। किन्तु ऊपरकी यह उक्ति शरत्चन्द्रकी रचनाके सम्बन्धमें सम्पूर्ण रूपसे लागू होती है। समाजमें जो लोग उत्पीड़ित और लांछित हैं, उनके जीवनको शरत्चन्द्रने अच्छी तरह सोचा-समझा है, गम्भीर भावसे उनका अनुशीलन और अध्ययन किया है। उनके पर्यवेक्षणमें गहराई है, विश्लेषण उन्होंने पंखानुपंख रूपसे बारीकीके साथ किया है, उनके वर्णनमें वास्तविकता है, और उनकी इन विशेषताओंको सब लोग जानते हैं। यहाँपर भी उन्होंने रवीन्द्रनाथकी चलाई हुई रीतिको ही अपनाया है—उसीका सहारा लिया है। किन्तु उनकी मौलिकता प्रचलित नीतिके विरुद्ध विद्रोह करनेमें अधिक प्रकट हुई है। उन्होंने सामाजिक समस्याकी कोई मीमांसा करनेकी चेष्टा नहीं की, शेष प्रश्नका उत्तर उन्होंने नहीं दिया; किन्तु उन्होंने समाजद्वारा दण्डित प्रपीड़ित जनोंके हृदयमें प्रवेश किया है और उनकी ओरसे प्रश्न किया है कि जो समाज क्षमा करना नहीं जानता, सामंजस्य करना नहीं जानता, उपलब्धि करना या किसीके दुख-सुखको समझना नहीं जानता, उसका गौरव किस बातमें है ? उसके विधि-निषेधके मूलमें अगर कोई शक्ति है, तो वह काहेकी शक्ति है ?

बंकिमचन्द्रने जो जो चरित्र अंकित किये हैं उनमेंसे कोई-कोई शरत्चन्द्रकी रचनामें फिरसे जी उठे हैं, किन्तु उनका स्वरूप बदल गया है। शैवलिनी जो बजरेपर चढ़कर लारेन्स फास्टरके साथ चली गई थी, वह बंकिमचन्द्रके उपन्यासमें एक घटनामात्र है। विराजबहू भी बजरेपर चढ़कर राजेन्द्रके साथ चली गई थी। यहाँ शरत्चन्द्र यह कहना चाहते हैं कि यद्यपि विराजने कुलका त्याग किया था—घरसे निकल गई थी, तथापि वह उसका सचमुचका पाप नहीं। विराजबहू शरत्चन्द्रकी अपरिणत रचनाओंमेंसे है। यहाँ वह साहसके साथ अपना मत प्रकट नहीं कर पाये। अतएव बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचनाओंके अन्तरकी तुलना अगर करनी हो तो शरत्चन्द्रकी अपेक्षाकृत परिणत रचनाओंका आश्रय लेना होगा। प्रताप और देवदासके

जीवनमें थोड़ी-सी समता है। दोनों ही बाल्य-प्रणयके अभिशापसे अभिशप्त थे; दोनोंहीके जीवनकी समाप्ति मृत्युकी ट्रेजेडीमें हुई और वह मृत्यु बाल्य-कालके प्रणयके साथ जुड़ी हुई है। किन्तु इन दोनोंके जीवनकी कहानी और चरित्रमें अन्तर भी बहुत अधिक है। पहले तो प्रताप जितेन्द्रिय है, अतएव शैवलिनीको प्यार करनेपर भी उसने मनको काबूमें कर लिया है और जिस नारीपर उसका अधिकार नहीं है, उसे पानेकी इच्छाको पददलित करके एक रूपसीसे ब्याह कर लिया है और उसे विना संकोचके स्वीकार किया है। किन्तु देवदासकी बात और प्रकारकी है। जो लोग उसके लिए सहानुभूतिका अनुभव करेंगे, उनकी युक्ति यह होगी कि इंद्रियोंको जीतनेमें जो पुण्य होता है, उसका मूल्य कितना है? हृदयके अन्तस्तलको भेदकर जो आकांक्षा जग उठी है, उसका गला घोंटकर या उसे दबाकर कौन महत् उद्देश्य सिद्ध होगा? इसके सिवा दूसरी स्त्रीसे ब्याह करना! देवदासके लिए यही तो यथार्थ पाप है। जिसे प्यार किया, उसे शास्त्रके द्वारा अनुमोदित उपायसे नहीं पाया, तो क्या इसीलिए हृदयसे उसके आसनको कोई रूपसी हटा देगी? और, अगर यह आसन हट गया तो यही तो होगा परले सिरेका विश्वासघात।

यह तो हुई इनके जीवनकी कहानी। इनकी मृत्युका वर्णन भी विभिन्न उपायोंसे किया गया है। प्रतापकी मृत्युके बाद रामानन्द स्वामीने कहा है--"तो फिर जाओ प्रताप, अनन्त धाममें जाओ, जहाँ इन्द्रियोंको जीतनेमें कष्ट नहीं है, रूपमें मोह नहीं है, प्रेममें पाप नहीं है, वहाँ जाओ। जहाँ रूप अनन्त, प्रणय अनन्त सुख अनन्त है, और सुखमें अनन्त पुण्य है, वहीं जाओ। जहाँ पराये दुःखको दूसरे जानते हैं, जहाँ पराये धर्मको दूसरे रखते हैं, पराई जय दूसरे गाते हैं, परायेके लिए दूसरेको मरना नहीं होता, उसी महान् ऐश्वर्यमय लोकमें जाओ। लाखों शैवलिनी पैरोंके पास पाने पर भी तुम उन्हें प्यार करना न चाहोगे।" देवदासके जीवनकी लीला जब समाप्त हुई, तब ग्रंथकारने यह कहकर उसका उपसंहार किया है-"तुम जो कोई कहानीको पढ़ोगे, हो सकता है कि मेरी ही तरह दुखी होगे। तो भी अगर कभी देवदासकी तरह अभागे असंयमी पापिष्ठके साथ परिचय हो तो उसके लिए थोड़ी-सी प्रार्थना करना। प्रार्थना करना कि और चाहे जो हो, उसकी तरह ऐसी मृत्यु किसीकी भी न हो। मरनेमें हानि

नहीं है, किन्तु उस मरनेके समय एक स्नेहमय हाथका स्पर्श उसके माथेको प्राप्त हो—करुणासे आर्द्र स्नेहमय मुख देखते-देखते जीवनका अन्त हो। मरनेके समय आँखोंमें अपने लिए एक बूँद आँसू देखकर वह मर सके।" बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचनाओंमें जो भेद, जो अन्तर है, वह इस स्थानपर सुस्पष्ट रूपसे प्रकाशित हुआ है। बंकिमचन्द्रने संयमका जय-गान किया है और शरत्-चन्द्रने मानव-हृदयकी दुर्बलताको सहानुभूतिसे समझनेकी—उसकी उपलब्धिकी चेष्टा की है।

अन्यान्य चरित्रोंकी भी गंभीर भावसे आलोचना करने पर यह अन्तर देख पड़ेगा। गोविन्दपुरके जमींदारके घरमें विषवृक्षका बीज बोया था हीराने और वह वृक्ष हीराके ही जीवनमें मुकुलित हुआ। हीरा युवती है, सुखकी भूखी है। वह धर्मको नहीं मानती; चित्तके संयममें उसे आस्था नहीं है। अपने सुखके लोभसे उसने बहुत-से पाप किये। अपने प्रेमपात्रकी हत्या कर डाली। जिस प्रेमपात्र प्रणयीने उसके प्रेमका प्रतिदान नहीं दिया—बदलेमें उससे प्रेम नहीं किया, उससे उसने बदला लिया, अपनी प्रतिहिंसा चरितार्थ की। इसके बाद पागलपनकी दशामें भी उसकी जिघांसा-वृत्ति बलवती रही। इस हीराके साथ 'चरित्रहीन' की किरणमयीका सादृश्य है। यहाँ भी हम देखते हैं वही रोके न रुकनेवाली प्रचण्ड प्रणयकी चाह, वही असाधारण कार्यतत्परता, वही धर्म-अधर्मके प्रति उदासीनता, वही प्रतिहिंसा-परायणता और अन्तमें उन्मादग्रस्तता। किरणमयीकी प्रतिहिंसाका उपाय थोड़ा-सा मौलिक है। उसने सुरबालाकी हत्या नहीं की, दिवाकरका सर्वनाश किया। यहींपर बंकिमचन्द्र और शरत्चन्द्रकी रचना-रीतिमें अन्तर है। धर्मके सम्बन्धमें किरणमयी केवल उदासीन ही नहीं है; धर्मके विरुद्ध, परलोकके विरुद्ध बहस करके, लड़ाई करके, व्यंग करके उसका मन परिपुष्ट हुआ है। उपेन्द्रकी स्त्रीकी हत्या करके उपेन्द्रके आदर्शको चोट नहीं पहुँच सकती, उसका अपमान नहीं हो सकता। इसीसे उसने एक ऐसा काम किया, जिससे उपेंद्रका सिर नीचा हो, उनके बहुत दिनोंके संचित स्नेहकी जड़ उखड़ जाय। इसी उद्देश्यसे उसने दिवाकरको लुभाया और उसे सर्वनाशकी सीमा तक पहुँचाकर आप अलग खड़े हो जाना चाहा। समाज और धर्मके विरुद्ध जो उदासीन भाव हम हीरामें देख पाते हैं, वही किरणमयीके हृदयमें तीक्ष्ण विद्रोहके रूपमें बदल

गया है । इस तरहसे देखा जाय तो हीराका विषवृक्ष किरणमयीमें जाकर मुकुलित हुआ है ।

जिन सब नर-नारियोंने समाजके अनुशासनके अनुसार कोई अधिकार पाया है, उनके प्रति शरत्चन्द्र बहुधा ही सम्पूर्ण रूपसे अनुकूल नहीं हो सके हैं। इस जगहपर भी बंकिमचन्द्रकी सृष्टिके साथ शरत्चन्द्रकी सृष्टिके अन्तरको लक्ष्य करना होगा । सुरबालाके निकट किरणमयी पराजित हुई है। सुरबालाके विरुद्ध शरत्चन्द्रको कोई शिकायत नहीं है; लेकिन तो भी सुरबाला पाठकके मनमें श्रद्धा और आदरका भाव नहीं जगा पाती । उसके प्रति हमारे मनमें केवल कौतुक-मिश्रित स्नेहका संचार होता है । परन्तु बंकिमचन्द्रने जिन सब साध्वी पतिव्रता रमणियोंका चित्र अंकित किया है—जैसे भ्रमर, सूर्यमुखी आदि—उनके आचरणसे हम विस्मित होते हैं, श्रद्धासे उनके प्रति हमारा मस्तक नत हो जाता है; कौतुकका अनुभव हमें नहीं होता । हारान बाबू अध्ययन करते हुए उसीमें मग्न रहते थे, स्त्रीके शरीरमें जवानी आनेकी ओर उनका लक्ष्य ही न था; उसके साथ इन्होंने कभी प्यारका—प्रेमका आदान-प्रदान नहीं किया । चन्द्रशेखर भी इसी प्रकारका एक पात्र है । किन्तु हारान बाबू और चन्द्रशेखरका अन्तर या भेद भी साधारण नहीं है । चन्द्रशेखर शान्त, सौम्य, उदार महान् है और बंकिमचन्द्रने उसीको अपने उपन्यासका नायक बनाया है । हारान बाबूमें हम एक निर्जीव ग्रंथ-कीटको देख पाते हैं, जिसकी प्रशंसा की जा सकती है, किन्तु प्यार नहीं किया जा सकता, जिसके पास भी नहीं पहुँचा जा सकता—" शुष्क कठोर मूर्तिमान् विद्याका अभिमान । अपने आसपास विज्ञानका कठिन बेड़ा बाँधकर जो अत्यन्त सतर्क होकर दिन-रात अपने स्वातंत्र्यकी रक्षा करते थे, ऐसे स्वामी ! "

प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें भी शरत्चन्द्रने बंकिमचन्द्रकी चलाई हुई रीतिका अवलम्बन नहीं किया । 'आँखकी किरकिरी', 'गोरा' आदि उपन्यासोंमें जो विस्तृत विश्लेषणका चित्र है, वही शरत्चन्द्रकी रचनामें और अधिक विस्तृत और अधिक सूक्ष्म हुआ है। उन्होंने समाजद्वारा निन्दित पापके सामने संकोचका अनुभव नहीं किया; बल्कि विधवाके प्रसूति-रोगका विस्तारसे वर्णन दिया है । नर-नारियोंके हृदयके भीतर उन्होंने नानाप्रकारकी प्रवृत्तियोंका

द्वंद्व या संघर्ष देखा है। उनके नायक-नायिकाओंके चरित्र किसी एक प्रवृत्तिकी प्रबलतासे ढँक नहीं गये। इसी कारण उनके उपन्यासोंमें मानसिक द्वंद्व और परिवर्त्तनके चित्र बहुत ही सजीव उतरे हैं। जिस बड़ी दीदीने सुरेन्द्रनाथको छोटी बहनका मास्टर होनेके कारण थोड़ा-सा स्नेह, जिसमें कृपा भी मिली थी, दिखाया था और जो बड़ी दीदी मरणासन्न सुरेन्द्रनाथके निकट उपस्थित हुई थी, उसमें कितना बड़ा भेद है! और उस भेदके मूलमें हैं, बहुत दिनोंकी बहुत-सी घटनाएँ और बहुत-सा चिन्तन। एक दिन जो रमा तारिणी घोषालके श्राद्धमें उपस्थित होनेकी बातकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी, एक दिन उसीने यतीन्द्रको रमेशके हाथमें सौंपकर ग्रामीण-समाजसे सदाके लिए बिदाई ले ली। किन्तु यह सब परिवर्त्तन असम्भव नहीं जान पड़ता, क्योंकि यह आया है धीरे धीरे, तिलतिल करके।

बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें मानसिक द्वंद्व और परिवर्त्तनके चित्र बहुत-ही कम हैं। जहाँ मानसिक परिवर्त्तनका चित्र है, वहाँ भी हम देखते हैं कि परिवर्त्तन इतना सहसा संघटित हुआ है कि जान पड़ता है, जैसे एक चरित्र एकाएक दूसरे चरित्रमें बदल गया हैं। जो श्री स्वामीके द्वारा परित्यक्त होकर बागके फूल चुराकर तोड़ती और मनके माफिक माला गूँथकर उसे वृक्षकी डालीमें लटकाकर मनमें सोचती थी कि उसने वह माला अपने स्वामीको पहनाई है, जिस श्रीने अपने गहने बेचकर अच्छी सामग्री खरीदकर अच्छी अच्छी खानेकी चीजें बनाकर मनमें सोचा कि अपने स्वामीको खिलाया, उसी श्रीने एक दिन स्वामीको पूरी तौरसे छोड़ दिया। संन्यासिनीकी आड़में रमणीकी भोग-लिप्सा सम्पूर्ण लुप्त हो गई। स्वामीके द्वारा परित्यक्त भैरवी षोड़शीने स्वामीको एक दिन अचानक फेर पाया, इससे उसके समस्त जीवनमें गहरा परिवर्त्तन आ गया। उसके भीतर सोई हुई अलका फिर जाग उठी; किन्तु षोड़शी भी सोलहों आने मरी नहीं। षोड़शी और अलकाके बीच सामंजस्य करनेमें उसका बाकी जीवन बीत गया, और कोई सामंजस्य सम्भव है या नहीं, यह अन्ततक अनिश्चित ही रह गया। मोतीबीबीके भीतर पद्मावती सम्पूर्ण मर गई थी। वह जिस दिन सहसा फिर जी उठी, उसी दिन मोतीबीबी भी सोलहों आने मर गई—रह गया केवल उसका अकुंठित दर्पसे भरा तेज, उसकी प्रबल अधिकारलिप्सा। पियारीबाईके भीतर राजलक्ष्मीने किस तरह अपनेको बचा रखा था, यह हम

नहीं जानते * किन्तु इस विषयमें सन्देह नहीं कि उसने हृदयके किसी एकान्त कोनेमें अपनी विशेषताको सजीव रखा था। जिस दिन श्रीकान्तके साथ फिर उसकी भेंट हुई, उसी दिन पियारी नहीं मर गई, राजलक्ष्मीके जीवनमें बीच-बीचमें पियारी झाँकती रही है। सिर्फ यही नहीं, जिस राजलक्ष्मीने शिकारपार्टीके डेरेमें श्रीकान्तका अभिवादन किया था और जो राजलक्ष्मी गंगामाटीसे श्रीकान्तको बिदा करनेको राजी हो गई थी—इन दोनोंमें भी कितना अन्तर है! अथ च यह परिवर्त्तन एक ही दिनमें नहीं पूरा हुआ, धीरे धीरे, बहुत-सी छोटी मोटी तुच्छ घटनाओंके बीचसे तिलतिल करके उसके चरित्रमें यह परिवर्त्तन आया है और इसके विश्लेषणमें ही शरत्चन्द्रकी प्रतिभा प्रकट हुई है।

बंग-साहित्यके उपन्यासके प्रारम्भ और परिणतकी आलोचना करके हम देख पाते हैं कि बंकिमचन्द्र ही बंगलामें यथार्थ उपन्यासकी सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने तरह तरहके उपन्यास लिखे हैं। उनका प्रत्येक उपन्यास रोमान्सके लक्षणसे युक्त है। इस रोमान्सका मूल उनकी चरित्र-सृष्टि और वर्णनशैलीमें है। उनके सिरजे हुए चरित्र प्रायः ही महामानव हैं। साधारण मनुष्यके चरित्रमें भी कोई एक प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल हो गई है। बंकिमचन्द्रके आर्टकी आलोचना करनेपर हम देख पाते हैं कि उन्होंने चरित्रका पुंखानुपुंख या सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया; नर-नारीके हृदयको उन्होंने समग्रभावसे देखा है और प्रचलित धर्मके प्रति श्रद्धा और अनुराग दिखाया है।

रवीन्द्रनाथकी मौलिकता चरित्रोंकी सृष्टि और प्रकाशभंगी या वर्णनशैलीमें प्रकट हुई है। उन्होंने महामानवकी बात नहीं लिखी है: साधारण मनुष्योंकी साधारण कहानीको गहराईके साथ सोचा-समझा है। उनकी बात लिखते समय वह उनके हृदयके अन्तस्तलमें पैठ गये हैं और वहाँ अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंका संघर्ष और लुकलुकौअल देख पाया है। उन्होंने किसी भी एक प्रवृत्तिको प्रतीक मात्र नहीं समझा। प्रचलित धर्म और नीतिके विरुद्ध उन्होंने विद्रोह अवश्य नहीं किया, किन्तु उनका जयजयकार भी नहीं किया। उन्होंने मनुष्यको

* श्रीकान्त, चतुर्थपर्वमें इसका आंशिक वर्णन है।

मनुष्यके ही हिसाबसे देखा है और प्रचलित धर्म और नीतिके सम्बन्धमें निरपेक्ष रहनेकी चेष्टा की है।

शरत्चन्द्र रवीन्द्रनाथके दिखाये मार्गपर ही आगे बढ़े हैं। उनके भी नायक-नायिका बहुत साधारण लोग हैं। उन्होंने उनके जीवनको गहरी और पैनी दृष्टिसे गहराई तक देखा है और उनके हृदयके गम्भीरतम प्रदेशमें 'संस्कार' और 'अनुभूति' का जो निरन्तर संघर्ष चलता है, उसका बहुत ही सिलसिलेवार सूक्ष्म विश्लेषण किया है। अनुभूतिकी गहराई और विश्लेषणकी सूक्ष्मतामें उनकी रचना बेजोड़ है। इसके अलावा प्रचलित नीति और धर्मके बारेमें वह निरपेक्ष नहीं रहे। उन्होंने इन चीजोंको अस्वीकार नहीं किया; किन्तु इन्हें कल्याण करनेवाला कहकर शिरोधार्य भी नहीं किया। उनकी रचनामें विद्रोहका सुर है। उन्होंने प्रश्न किया है कि जो धर्म मनुष्यके हृदयके साथ अत्याचार करके तैयार हुआ है, उसका मूल्य कहाँ है—उसका मूल्य क्या है?

२–शरत्-साहित्यकी भूमिका

१

अतीत युगके साहित्यका प्रधान विषय था मनुष्यका व्यक्तिगत सुख-दुःख। यह बात उस समय कोई अच्छी तरह ध्यान देकर नहीं देखता था कि मनुष्य समाजका अंग है, उसके जीवनकी गति-विधि समाजके सहस्रों विधि-निषेधोंके द्वारा सीमाबद्ध है। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थने कुली-मजदूरोंमें महान् जीवनका परिचय पाया—उन्होंने यह विचार करके नहीं देखा कि उनका जीवन कितना दीन है, अत्याचारसे कितना पिसा हुआ है। केवल कुली-मजदूरोंकी ही बात क्या कही जाय, जिनके जीवनमें आर्थिक दीनता कम है, वे ही क्या सब विषयोंमें सम्पूर्ण स्वाधीन हैं? हैमलेटने सोच-सोचकर, चिन्ता करकरके, अपने जीवनको व्यर्थ कर डाला; उसके कर्मपथकी प्रायः सभी बाधाएँ उसकी व्यक्तिगत प्रकृतिसे आईं। किन्तु यही क्या होता है? मनुष्य अपने सभी कार्योंमें समाजका अंग है। उसके मनको स्वाधीन माननेसे कैसे काम चलेगा? उसको जो स्वाधीनता नहीं है, वह क्या उसके मनको रह सकती है?

मनुष्यकी इस अधीनताकी बात विशेषकरके वर्त्तमान युगके साम्यवादके प्रभावसे अभिव्यक्त हुई है। गत सौ वर्षोंमें अर्थनीति-विज्ञानकी आलोचना बहुत अधिक हुई है। और, उस आलोचनाके फलस्वरूप साहित्यमें खास करके मनुष्यकी आर्थिक और पारिपार्श्विक आवेष्टनीके ऊपर जोर दिया गया है। मनीषी स्वर्गीय ट्राटस्कीने कहा है कि साहित्य अर्थनीतिकी चिन्ताका प्रकट चित्र है। हम सुनते थे कि कांट, हेगेल आदि दार्शनिक विद्वानोंका तथ्य ही साहित्यको

रसद जुटाता है। अतीत कालके साहित्य या समालोचनामें यह बात बहुत कम हमें मिलती है कि साहित्य मनुष्यकी अर्थनैतिक अवस्थाका—व्यष्टि (व्यक्ति) के साथ समष्टि (समाज) के संघात या टक्करका—चित्र है। किन्तु वर्त्तमान युगके साहित्यकी सबसे बड़ी बात यही धारणा है। अर्थनीति और समाजतत्त्वके साथ मनुष्यके कर्म-जगत्का निकट-संबन्ध है। इसीसे वर्तमान युगका साहित्य एकदम वस्तुतांत्रिक अथवा यथार्थवादी है। वह मनुष्यकी पारिपार्श्विक अवस्था और मानव-मनके ऊपर उसकी प्रतिक्रियाकी परीक्षा करता है। पहलेके युगके नीतिज्ञ लोग मनुष्यके चरित्रका संस्कार करते थे। किन्तु वर्त्तमानकालके नीतिज्ञ कहते हैं कि नीतिका मूल है सामाजिक अवस्थाके भीतर। अतएव नीतिको बदलनेके लिए पहले समाजका मूलसे संस्कार करना होगा। महाभारतके समयसे हम सुनते आ रहे थे कि नीति ईश्वरकी दी हुई वस्तु है। वह धर्मका अंग है। समाज उसे खुशी खुशी मान लेगा और जो कोई उसे न मानेगा उसे वह पापी समझकर दण्ड देगा। किन्तु इसके भीतर एक भारी धोपा है। पहाड़की चोटी परसे उतरकर मूसा पैगंबरने जिन दस अनुशासनोंका प्रचार किया था, उनके साथ भगवानका सम्बन्ध तो बहुत कम है; इस लोकके साथ बहुत है। पराये धन या वस्तुका अपहरण करनेसे स्वर्गमें सुखसे विराजमान ईश्वरकी हानि तो बहुत थोड़ी है, किन्तु मेरे इस लोकके पड़ोसीकी हानि बहुत अधिक है। पड़ोसीकी स्त्रीकी ओर कुदृष्टि डालनेसे भगवानका कुछ न बिगड़ेगा, किन्तु मेरे पड़ोसीकी क्षति न हो, नींदमें बाधा यथेष्ट होगी। किन्तु हजरत मूसाने इन बातोंको भगवानकी वाणी या आदेश कहकर चलाया। इसी तरह सब देशों और सब कालोंमें धर्मके साथ नीतिका सम्बन्ध जुड़ गया है। वर्तमान युगके समाज-संस्कारकोंने देखा कि समाजका आमूल परिवर्त्तन किया जाय तो पहले महाभारतमें कही गई नीतिकी बातोंपर खिंचाव पड़ेगा। उन्होंने दिखाया कि नीतिकी नींव समाजकी सुविधा-असुविधामें है; उसके साथ पारलौकिक ऋत (सच्चाई) का कोई सम्बन्ध नहीं है। पहले मनुष्य नीतिका अनुगामी होता था, इन दिनों नीति मनुष्यकी अनुगामिनी है।

इस आविष्कारके साथ साथ साहित्यका रूप भी बदल गया है। इस युगके साहित्यने व्यक्तिके ऊपर समाजशक्तिके विचारशून्य पीड़न और मंगलहीन नीतिके विरुद्ध मनुष्यके मनका विद्रोह दिखाया है। वर्तमान युगके श्रेष्ठ लेखक

अनातोल-फ्रांसकी रचनामें इस बातकी अभिव्यक्ति हास्यसे उज्ज्वल व्यंगके माध्यमसे हुई है। उनका अंकित श्रेष्ठ चरित्र Jerome Coignard है। इस मजेके आदमीने दिखाया है कि नीतिके साथ भगवान्का कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखकके इस पात्रने संसारकी सारी अनीति या दुर्नीतिके लिए धर्मकी दोहाई दी है; अपने सभी कुकर्मोंमें भगवान्का इशारा देख पाया है। यही वर्त्तमान युगके साहित्यकी नैतिक अवनतिकी मूल बात है। शेक्सपियरकी रचनामें अश्लीलता है। प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें भी अश्लीलता है। किन्तु इन सब जगहोंमें अश्लीलताको अश्लीलता ही मान लिया गया है। वर्तमान कालके साहित्यका उद्देश और प्रकारका है। आजकलकी अश्लीलताने श्लीलताके मर्मस्थलपर चोट की है, उसका मूलोच्छेद करनेकी चेष्टा की है। वर्तमान युगके लेखकोंने दिखाया है कि जिसे हम नीति कहते हैं, उसके मूलमें शक्तिशालीका प्रचण्ड लोभ मौजूद है। ब्राह्मणकी श्रेष्ठता बनाये रखनी होगी, इसीलिए शूद्रका अपने लिए कोई दावा करना ही दुर्नीति है। शक्तिमान् पुरुषने नारीके शरीरपर अपना अचल प्रभुत्व चाहा था, इसीलिए सतीत्व नारीके इहलोक और परलोकका एकमात्र धर्म है, और पुरुषका व्यभिचार साधारण अपराध मात्र है।

वर्तमान युगके साहित्यकी यही प्रधान धारा है। इसमें मनुष्यके हृदयके आवेगकी बात नहीं है—इसमें रोमान्सका अत्यन्त अभाव है। इसमें पारिपार्श्विक आवेष्टनके साथ मानवके मिलन और संघर्षकी बात तथा चिर कालसे चली आ रही नीतिकी भित्तिहीनताके ऊपर कटाक्ष है। किन्तु अनेक लोगोंने प्रश्न किया है कि इसे लेकर क्या साहित्य बनता है? साहित्यका विषय है मनुष्यके सुख-दुःख और अनुभूतिकी बात। समाजशक्तिका कोई रूप नहीं है। अथ च साहित्य है 'सुन्दर' का चित्र। सुंदर अपनेको रूपमें प्रकट करता है, वह रूप-हीमें पाया जा सकता है। इसीसे रूपहीन शक्तिको लेकर साहित्य नहीं होता। फिर समाजशक्तिको बाद देकर व्यक्तिका जो खंडरूप रह जाता है, उसमें सौन्दर्य रह सकता है, किन्तु वह सौन्दर्य मिथ्या है। सत्यसे हीन साहित्य लेकर क्या होगा? यही आजकलके साहित्यका सबसे कठिन प्रश्न है। जो शेक्सपियरके साहित्यके उपासक हैं, वे बर्नार्ड शाके साहित्यमें सुन्दरका अभाव देखेंगे, और जो बर्नाड शाके हैं, वे कहेंगे कि शेक्सपियरके नाटकोंका रूप मूल्यहीन है। कारण, उनकी नींव मिथ्या है।

२

इस द्वंद्व (विवाद) का फैसला करनेकी चेष्टा न करके, केवल एक विशेषताके ऊपर ध्यान देना ठीक होगा। वर्तमान युगके साहित्यमें ही हम अक्सर देख पाते हैं कि जो सत्य है, वह सुन्दरमें घुल-मिल गया है। शायद इससे दोनोंके गौरवकी हानि हुई है, शायद इससे सत्यकी तीक्ष्णता कुछ कम हो गई है, अथवा सुन्दरकी महिमा नष्ट होगई है; किन्तु तो भी हम उसमें व्यष्टि और समष्टिकी. व्यक्तिके हृदयके आवेग और रूपहीन समाजशक्तिके गतिवेगका एकत्र समावेश देख पाते हैं। शरत्चन्द्र इसी श्रेणीके साहित्यिक हैं। उनके सिरजे हुए साहित्यके रसकी उपलब्धिके लिए यह याद रखना होगा कि वह वर्तमान युगके साहित्यिक हैं। समाजशक्तिके विरुद्ध जो प्रचंड अभियोग विदेशी साहित्यमें आन्दोलित हुआ है, उसकी गूँज शरत्चन्द्रकी रचनामें भी पहुँची है। उनकी रचनाकी एक प्रधान विशेषता यह है कि समाजशक्तिके पीड़नसे व्यक्तिका व्यक्तित्व क्षुण्ण नहीं हुआ।

और यह भी ध्यानमें रखना होगा कि शरत्चन्द्रने समाजशक्तिपर चोट की है प्रधानतः उसकी नीतिकी ओरसे, अर्थनीतिकी ओरसे उतना आघात नहीं किया है। हमारा देश दारिद्र्यसे पीड़ित है और इस दैन्यका हाहाकार उनकी रचनाओंमें प्रकट न हुआ हो, यह बात भी नहीं है*। किन्तु उनकी रची हुई

* 'बिराज बहू', 'अरक्षणीया', 'महेश', 'शेष प्रश्न', 'हरिलक्ष्मी', 'अभागिनीका स्वर्ग'—इन रचनाओंमें दारिद्र्यका चित्र है; किन्तु इनमें शरत्चन्द्रकी प्रतिभाकी विशेषता खूब स्पष्ट नहीं है। और कमलकी तथा हरिलक्ष्मीकी मँझली बहूकी दरिद्रता (गरीबी) उन्हें म्लान नहीं कर सकी। उनका दारिद्र्य विजयी हुआ है। खैर, वह चाहे जो हो, शरत्चन्द्र दारिद्र्यका निर्दोष निपुण चित्र खींच सकते हैं, इसका प्रमाण ऊपर लिखित कहानियों और उपन्यासोंमें मौजूद है। किन्तु उनके प्रधान उपन्यासोंमें दारिद्र्यका अभाव नहींके बराबर है, यह कहना कुछ असत्य न होगा। इस सम्बन्धमें बर्नार्ड शॉका कथन है—

"Shakespeare's characters are mostly members of the leisured classes. The same thing is true of Mr. Harris' own plays and mine. Industrial slavery is not compatible with that freedom of adventure, that personal refinement and intellectual culture which the higher and subtler drama demands."

बर्नार्ड शॉने जिस युक्तिकी अवतारणा की है, वही शरत्चन्द्रके मनमें भी उठी होगी।

अधिकांश प्रणय-कहानियोंमें दारिद्र्यके पीड़नका परिचय नहीं है। 'ग्रामीण-समाज' उपन्यासमें इन सब पीड़नोंकी ध्वनि अवश्य है, किन्तु रमा और रमेशके हृदयके आदान-प्रदानके निकट वह गौण है। शरत् बाबूने जिन नर-नारियोंका चित्र अंकित किया है, वे सभी धनवान् हैं। गुरुचरणके अवश्य धन नहीं है, लेकिन उसके लिए शेखरकी दराज (मेजकी) कभी खाली नहीं होती। गिरीन्द्रकी प्रकृतिमें जैसे परोपकार करनेकी प्रवृत्ति प्रबल है वैसे ही उसके पास धन भी यथेष्ट है। ललिता और शेखर, विजया और नरेन्द्र, सावित्री और सतीश—इनको प्रेमके अदानप्रदानका अवकाश बहुत था। कारण, जिस दैन्य या गरीबीके साथ जूझनेमें मानव-जीवनका सारा माधुर्य नष्ट हो जाता है, उसके पीड़नने कभी उन्हें सताया नहीं। इस दैन्यका आभास केवल किरणमयीके जीवनमें देखा गया है। वह जो अनंगमोहन डाक्टरके निकट अपनेको बेचने बैठी थी, उसके भीतर उसकी प्रेम पानेकी उत्कट अभिलाषा तो थी ही, पर उसके साथ डाक्टरके ऊपर उसकी एकान्त निर्भरशीलता भी थी। यह अधीनता या विवशता किस तरह मानव-जीवनको प्रतिहत करती है—निकम्मा बना देती है, इस विषयकी रत्तीभर भी समालोचना या चर्चा शरत्चन्द्रने नहीं की। उपेन्द्रके प्रकट होनेके साथ ही साथ किरणमयी और उसकी सासकी आर्थिक चिन्ता मिट गई, हारान बाबूकी चिकित्साका अच्छा प्रबन्ध हो गया और अनंग डाक्टरके साथ किरणमयीका जो प्रेमका अभिनय चल रहा था, उसका अन्त हो गया। वास्तवमें शरत्चन्द्रकी रचनाओंमें यह पहलू प्रायः छूट गया है।

जान पड़ता है, इसका भी एक कारण है। समाजके जटिल प्रश्न ही अगर उनकी दृष्टिमें मुख्य होते, वह अगर पुलीसकोर्टके विचार, सूदखोरके अत्याचार और श्रमिकोंकी हड़ताल आदि विषयोंके ही निरूपणमें लगे रहते, तो फिर रूप-हीन नाना शक्तियोंके द्वन्द्वके बीच नर-नारीके हृदयका माधुर्य लुप्त हो जाता। उनके साहित्यमें वर्त्तमान युगकी यह विशेष छाप नहीं है। उन्होंने केवल चिरकालसे चली आ रही सामाजिक नीतिके पहलूसे ही समाजका निरीक्षण किया है। यहाँ उनकी एक विशेषता बतलानी होगी। योरपके साहित्यमें एक प्राणहीन जड़ पिण्डके रूपमें समाजशक्ति प्रकट हुई है। उसके द्वारा मानवका मन पीसा जा रहा है और वह उसके विरुद्ध विद्रोही हो गया है। किन्तु यह प्राणहीनके साथ प्राणवान्का संघर्ष है। शरत्चन्द्रकी विशेषता यह है कि उनकी रचनामें समाज-

शक्ति नर-नारियोंकी अन्तरात्माके भीतर आश्रय पाकर सजीव हो उठी है। यह रूपहीन निर्जीव शक्तिमात्र नहीं है। यह मानवके हृदयकी वस्तु है और उसकी अनुभूतिके रससे प्राणवान् है। नीतिके वचन बहुत स्थूल हैं, उनका सभीके सम्बन्धमें प्रयोग होता है। अथ च साहित्यमें नायक-नायिकाके हृदयकी बातें ध्वनित होती हैं—साहित्यका उपजीव्य उनके व्यक्तिगत जीवनका सुख-दुःख है। जो सर्वसाधारणके ऊपर प्रयोज्य या लागू होता है, वह इतना व्यापक है कि उसके भीतर रूपग्राह्य सौन्दर्यके लिए स्थान नहीं है। शरत्चन्द्रने इस अस्पष्ट रूपवाली शक्तिको, जहाँतक सम्भव है, व्यक्तिगत अनुभूतिमें रँगकर सजीव कर दिया है।

३

समाज-शक्ति अनेक समय चिरकालसे चले आ रहे संस्कारके भीतरसे अपनेको प्रकट करती है। संस्कार किन्तु एकदम बाहरकी चीज नहीं है। उसका आसन हम लोगोंके मनमें ही है। मानव-मनकी जटिलता अनन्त है। मनुष्यके बुद्धि है, अनुभूति है। कुछ अनुभूतियोंने संस्कारके साथ घुलमिलकर उसे प्राण दिया है। फिर अनेक लोगोंके मनमें बुद्धिने भी संस्कारको ही मजबूतीसे पकड़ रखा है। जैसे 'चरित्रहीन' की सुरबाला। उसकी सारी अनुभूति और बुद्धि जन्मसे अर्जित संस्कारके आश्रित है। किन्तु अधिकांश आदमियोंका मन इतना सहज और सरल नहीं होता। उनका एक संस्कार है और वे संस्कारको बाहरकी चीज भी नहीं मानते—वह उनके अन्तरात्माका ही एक अंग है। फिर बुद्धिके साथ अनुभूति जड़ित है—चिपकी हुई है। बुद्धि हृदयको नियंत्रित, संयत करना चाहती है; किन्तु हृदयके जिस गम्भीरतम तलदेशमें—जिस गहराईमें अनुभूति संचारित और संजीवित होती है, वहाँतक बुद्धि सदा ही नहीं पहुँच पाती। मनुष्यकी धर्म-बुद्धि, विवेक, संस्कारका अनुगमन—समाज इन चीजोंको हृदयका आवेग मानकर चलता है, तभी तो वह संगठित हो पाया है। दूसरी ओर अन्तरात्माकी हृदय-कंदरामें होनेवाली अनुभूति सम्पूर्ण भावसे समाजशक्तिमें मिल नहीं गई, इसीसे तो मनुष्यके हृदयकी गति इतनी विचित्र है, और इस विचित्रतामें ही प्राणशक्तिका श्रेष्ठ ऐश्वर्य है।

अतएव देखा जाता है कि हमारे मनमें दो स्तरोंकी चेतना है। एक अनुभूति हम लोगोंकी बुद्धि, संस्कार और समाजसे पाई हुई है, और दूसरी गंभीरतर स्तरकी अनुभूतिकी प्रेरणा हृदयके अन्तरतम प्रदेशसे आती है। शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका श्रेष्ठ विकास इसी परस्परविरोधी शक्तिके संघर्षके चित्रणमें हुआ है। उनके अंकित नारी-चरित्रोंकी विशेषताको सभी लोग मानते हैं। इसका भी कारण है। पुरुष बुद्धिजीवी है। उसके निकट संस्कार प्रधानतः बुद्धिके मार्गसे आता है और साधारणतः वह संस्कार बुद्धिको नाँघकर हृदयके गंभीरतम प्रदेशमें आघात नहीं करता। पर, नारीके निकट हृदयके आवेगका मूल्य बहुत अधिक है। वह समस्त अभिज्ञता और संस्कारको ही अनुभूतिसे रँग देता है। इसीसे समाज-शक्ति उसके निकट आकस्मिक प्रवृत्तिकी विरोधी बाहरी शक्ति मात्र नहीं है, यह उसके भीतरकी ही चीज है। इसे भी उसने अपनाकर ग्रहण कर लिया है। जिस द्वद्व या संघर्षकी बात ऊपर कही गई है, वह विशेष करके नारीके मनमें ही दिखाई देता है। इसी कारण शरत्-साहित्यमें नारी-चरित्रका स्थान इतना ऊँचा है।

नारीके चरित्रमें प्रवृत्तिके साथ सचेतन संस्कारकी इस टक्करको ही शरत्-चन्द्रने बड़ा करके देखा है। प्यार या प्रेमका आकर्षण चुम्बकके आकर्षणकी तरह प्रबल होता है, और उसको ठुकरानेकी शक्ति भी पर्वतसे निकले हुए प्रवाहकी तरह दुर्निवार है। इस द्वंद्वकी कोई मीमांसा नहीं है—इसमें कोई कल्याण नहीं है। यही तो सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। हमारे देशके प्राचीन साहित्यमें ट्रेजेडी नहीं है। योरपके साहित्यमें ट्रेजेडी मरणके बीच होकर आती है। डेस्डिमोना, कार्डेलिया, हैमलेट अगर न मरते तो कोई ट्रेजेडी न होती। किन्तु शरत्चन्द्रने जिस ट्रेजेडीका चित्र अंकित किया है, उसमें मृत्युके लिए स्थान नहीं है। जिस मीमांसा-हीन द्वन्द्वमें नारी जीवनका सारा ऐश्वर्य, सारी महिमा निःशेष नष्ट हो जाती है, वही सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। मृत्युमें गौरव है, इसीसे ट्रेजेडीका प्राण जो विफलता या व्यर्थता है, वह मृत्युके गौरवसे ऐश्वर्यशालिनी हो जाती है। किन्तु ऐसी अवस्था आ सकती है, जब जीवनका सारा ऐश्वर्य लुप्त हो जाता है, अथ च यह जो अपव्यय है, प्राणशक्तिका यह जो क्षय है, उसका एक परमसुन्दर माधुर्य भी है। सावित्री अथवा राजलक्ष्मीके जीवनकी आलोचना करनेसे यही चीज विशेष रूपसे नजर आती है। सावित्री सतीशको प्यार करती थी, उसके भले-बुरेके लिए

अपनेको जिम्मेदार समझती थी, सौ बार अपमानकी चोट खाकर भी उसीके पास आकर उपस्थित होती थी। सब बातोंमें वह उसका प्रियतम था – उसकी चिर-आकांक्षाका पात्र था। किन्तु इस आकांक्षाकी तृप्ति नहीं है, यह प्यास जीवनको सुखा डाले, तो भी इसका बुझना संभव नहीं। जो आकर्षण सावित्रीको सतीशके पास खींच लाता था, वही आकर्षण दूर ढकेल देता था। प्रार्थित जनको पाकर भी सफल न हो सकनेवाली यह आकांक्षा, पूर्ण होकर भी वैसे ही रिक्त रहनेवाली यह शून्यता ही तो जीवनकी चरम वेदना है। सावित्री सोचती थी कि जो देह कीचमें सन गई है, उस देहसे आराध्य जनकी पूजा नहीं हो सकती। किन्तु हम जानते हैं कि उसकी देह भी उसके मनकी ही तरह पवित्र थी। उसे कोई कालिख छू नहीं गई थी और जिसको उसने सोलहों आने अपना हृदय अर्पण कर दिया, जिसे अपने तईं पूरी तौरसे सौंप दिया, उसे क्या देह ही अदेय है – भले ही वह पंकिल हो, भले ही वह निकृष्ट हो ? इसके सिवा जिस परिपूर्ण मिलनके लिए वह उन्मुख हुई थी, उसके आगे देह तो बहुत ही तुच्छ चीज है। असलमें सावित्रीकी दुर्बलता और ही जगह थी। सतीशके प्रति उसका हृदय और मन बहुत गहराईके साथ आकृष्ट हुआ था। यह प्रेमकी पुकार हृदयके गूढ़ प्रदेशसे उठी थी। किन्तु हिंदू विधवाके ब्रह्मचर्यके संस्कार और नारीकी एकनिष्ठताकी शिक्षाने बारबार उसे रोककर कहा कि यह भूल है, यह अन्याय है। इसीसे सावित्री पास आकर भी हट गई है; आघात पाकर भी आगे बढ़ी है; आगे बढ़कर भी पीछे हट गई है। उसका मन निश्चय करके यह नहीं कह सका कि सतीश और उसके प्रेममें कल्याणके सिवा और कुछ नहीं है। केवल देहकी मलिनताका सहारा लेकर भीतरकी इतनी बड़ी आकांक्षा व्यर्थ नहीं हो सकती थी। किन्तु सावित्री यह नहीं जानती थी कि उसकी दुर्बलता कहाँ है – वह आप ही नहीं समझ पाई कि उसकी बेखबरीमें, उसीके मनमें कितना बड़ा संस्कार, समाज-शक्तिका कितना प्रबल प्रभाव जड़ जमा बैठा था। इसीके कारण उसका जो प्रेम एक आदमीके निकट परिपूर्ण सार्थकता नहीं पा सका, उसे दस आदमियोंको बाँट देनेके लिए वह तैयार हो गई। समाजशक्तिके इस समवेदना-हीन अलक्षित पीड़नसे उसके प्रेमका सारा गौरव व्यर्थ हो गया। समाजने बाहरसे उसपर

आक्रमण नहीं किया; उसने उसके मनके भीतर बैठकर उसकी बुद्धिको, उसके संस्कारको कड़ा करके बाँध दिया था।

यह द्वन्द्व—यह संघर्ष सबसे अधिक राजलक्ष्मीके चरित्रमें प्रकट हुआ है। राजलक्ष्मी हिन्दू घरकी विधवा है; किन्तु उसका अगर कोई यथार्थ विवाह हुआ हो तो वह श्रीकान्तके ही साथ हुआ था। वह मिलन हुआ था एकान्तमें, उसे किसीने नहीं जाना। जब उसने पियारीबाई बनकर नया जीवन आरम्भ किया, तब उसके हृदयमें एक गम्भीर प्रेमने इस तरह अपनी छाप डाली थी कि उसे मिटा देनेकी शक्ति उसमें नहीं थी। किन्तु जब उसी कामनाकी वस्तु प्रियतमसे भेंट नसीब हुई, तब राजलक्ष्मी समझ पाई कि उसके मनके भीतर ही और एक शक्ति संचित हो उठी है। उसका वेग भी कम प्रबल नहीं है। वह शक्ति पहले मातृत्वके गौरवमें दिखाई दी। अन्तको वह उसके और श्रीकान्तके समाजसे डरनेमें दिखाई दी। बाहरकी शक्तिको मान लेनेपर भी शरत्चन्द्रने अपनी श्रेष्ठ रचनाओंमें उसे कभी ऊँचा स्थान नहीं दिया। "पृथ्वीपर केवल बाहरकी घटनाओंको ही पास-पास लम्बी-लम्बी रखकर सभी हृदयोंका पानी नहीं मापा जा सकता।" श्रीकान्तके द्वितीय पर्वके अन्तमें समाजको प्रतिकूल दृष्टिके बीच श्रीकान्तने 'राजलक्ष्मी' को स्वीकार कर लिया। हमने सोचा कि सब बाधा दूर हो गई—बंकु भी हट गया, समाजकी बाधाकी तुच्छता भी प्रमाणित हो गई। वे जब गंगामाटी गाँवमें गये, तब हमने समझा कि अबकी सारी बाधाओंकी शृंखला टूट गई, अब परिपूर्ण मिलन आरम्भ होगा।

किन्तु राजलक्ष्मीके भीतर जो धर्मबुद्धि अत्यन्त सचेत हुई, उसे किसी तरह निरस्त नहीं किया जा सका—उसके हृदयसे नहीं निकाला जा सका। राजलक्ष्मीके मनमें दो विराट् शक्तियोंका मिलन और टक्कर चलने लगी। हिन्दूके चिरकालसे चले आ रहे धर्म और विधवाका जमा हुआ संस्कार—इन दोनोंको उसने श्रद्धा की है, हृदयसे प्यार किया है। राखाल पंडित और शिबू पण्डितके निकट विवाहके मन्त्रोंका कोई अर्थ नहीं है। श्रीकान्तके निकट भी वे निर्जीव हैं। किन्तु राजलक्ष्मीके निकट वे मन्त्र प्राणवान हैं—जीते-जागते हैं। इन मन्त्रोंकी सहायतासे उसने श्रीकान्तको नहीं पाया, इसीसे वह अपने मनमें सोचती थी कि उसका सारा प्रेम व्यर्थ है, सारी आकांक्षा कलंकित है। इसीसे चलने लगे उपवास,

व्रत-पार्वण और सुनन्दाके निकट शास्त्र-चर्चा। इससे भी मनको शान्ति नहीं मिली। कारण, इससे आकांक्षाकी तृप्ति नहीं। इसीलिए व्रत-पार्वण और भोज-निमन्त्रणके शोरगुल तथा कामके दिनकी सारी व्यस्तताके बीच भी राजलक्ष्मी श्रीकान्तके लिए अपने हाथसे रोगीके खानेकी सामग्री तैयार किये विना नहीं रह सकी। वह तीर्थयात्रा और तीर्थदर्शनके लिए जाकर भी वहाँ भगवानके दर्शन नहीं कर सकी — उसे श्रीकान्तका लक्ष्यहीन उदास चेहरा ही देख पड़ा। श्रीकान्तके साथ उसका जो सम्बन्ध है, वह हिन्दूधर्म-संगत नहीं है। लेकिन तो भी राजलक्ष्मीने समझा कि धर्मके ऊपर भी धर्म है, और श्रीकान्तको छोड़कर वह अगर पूजा-पार्वण करे, तो उसकी स्वर्गकी सीढ़ी ऊपरकी ओर न जाकर नीचेकी ओर ही जायगी। इन दोनों प्रतिकूल धारणाओंकी जो टक्कर है, उसीको लेकर उसकी ट्रेजेडी है। इस ट्रेजेडीमें मरण नहीं है; किन्तु इसमें जीवनका समस्त ऐश्वर्य, सारा गौरव और महिमा निःशेष क्षय हो जाती है। यह क्षय ही तो ट्रेजेडी है और इसके मूलमें है सामाजिक शक्तिका विचार-बुद्धि-हीन निपीड़न। राजलक्ष्मीने स्वयं ही समाजके विरुद्ध यह प्रश्न उठाया है, और अभयाने इस समाजको नहीं माना है। उसने कहा है कि उसका प्रेम अवैध हो सकता है; किन्तु उसमें मिथ्याकी ग्लानि नहीं है। किरणमयीने समाजनीतिका उपहास किया है, भगवान्के अस्तित्वको अस्वीकार किया है, उपेन्द्रके ऊपर प्रतिहिंसा चरितार्थ करनेके फेरमें पड़कर दिवाकरको बलिका बकरा बनाया है। इससे उसका अपना जीवन मरुभूमिके समान उजाड़ ऊसर हो गया है, और यह सब हुआ है उस पतिके कारण जो समाजने उसे दिया था और उपेन्द्रके उस विवेकके कारण जिसे समाजने उपेन्द्रके मनमें जगा दिया था।

४

राजलक्ष्मीके मनमें जो प्रश्न उठा अभयाने जिसे अग्राह्य किया, किरणमयीने जिसका उपहास किया, उस प्रश्नकी सच्ची अथवा यथार्थ कोई मीमांसा नहीं हुई। मनुष्यके हृदयका जो अन्तरतम आत्मा है, वह उसकी अपनी खास व्यक्तिगत वस्तु है। वह बिलकुल ही अकेली है, अथच समाजका नियम है सम्मिलित गोष्ठीके लिए। वह व्यक्तिविशेषकी खबर नहीं रखता; वह

समाजके स्वाथ्यको बनाये रखता है। जो नियम समष्टिके लिए निर्धारित हुए हैं, वे स्थूल हैं। मानव मनकी सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म आकांक्षा और प्रवृत्तिके साथ वह कैसे मेल खा सकेंगे ? अन्नदा दीदी, अभया, राजलक्ष्मी, इन चार महिलाओंके साथ श्रीकान्तका परिचय हुआ था। समाजके अनुभूतिहीन स्थूल नियमके साथ इन सभीका संघर्ष हुआ है। किन्तु इनमेंसे हरएकका मन इतना स्वाधीन है, इतना एकाकी है कि ऐसा कोई आईन ही नहीं हो सकता, जिसके द्वारा इन सभीके जीवनका माधुर्य और गौरव अक्षुण्ण रह सकता। अन्नदा दीदी जो कर सकी थी, वह अभयाके द्वारा संभव न होता; निरू दीदी जिस प्रलोभनमें पड़ गई थी, राजलक्ष्मी उसकी अवहेला करती। समाज और सृष्टिके मूलमें ही इतनी गल्ती है कि इसके लिए किसी व्यक्तिविशेषको जिम्मेदार ठहरानेसे काम नहीं चलेगा। इसके मूलमें है एक समवेत शक्ति, जिसका कोई रूप नहीं है, जिसमें विचार-बुद्धि नहीं है, समवेदना नहीं है। और यह जो गहरी उपलब्धिकी अक्षमता है, इसके लिए केवल समाजको दोष देनेसे भी नहीं चलेगा। मनुष्यकी सचेतन बुद्धि हृदयकी अली-गलीका पता नहीं रख सकती। देवदासने जब पार्वतीको लौटा दिया था और कहा था कि वह पिता-माताका अवाघ्य नहीं हो सकेगा, तब वह नहीं जनता था कि उसके संज्ञाहीन अंतःकरणमें पार्वतीने जो आग जला दी है, वह तिलतिल करके उसे जलावेगी। सौदामिनी जब पतिके लिए अपनी साससे लड़ी-झगड़ी थी, तब वह नहीं जानती थी कि नरेन्द्र उसके मनके एक एकान्त कोनेमें बैठा हँस रहा है। नरेन्द्र जब उसे ले गया तब भी वह नहीं समझ सकी कि पति और संस्कारको वह कितना प्यार करती है। कुसुमने जब हिन्दूके संस्कार, शिक्षा और बड़े आदमीकी लड़कियोंके संसर्गको मजबूतीसे पकड़े रहकर वृन्दावनका परित्याग किया था, तब वह नहीं जानती थी कि उसके मनमें मातृत्व और नारीत्वकी आकांक्षा कितनी तीव्र है। फिर जब उसने वृन्दावनकी माताके पास अपना कड़ा लौटा दिया और चरनको पालने-पोसने लगी तब वह समझ नहीं सकी कि उसका पहलेका संस्कार कितना दृढ़ है।

अपने बारेमें यह जो अनभिज्ञता है, सो सबसे अधिक अचलाके चरित्रमें प्रकट हुई है। वास्तवमें हरएकके चरित्रमें एक दुर्ज्ञेय रहस्य छिपा हुआ है।

इसीसे हमारे प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धमें व्यवधानका बीज छिपा हुआ है; इसीसे हमारे समस्त प्रेम-मिलनमें व्यर्थताका सुर बज उठता है। मनुष्य कभी अपनेको सम्पूर्ण दान नहीं कर सकता। कारण, वह तो अपनेको पूर्णरूपसे पहचान ही नहीं पाता। उसकी आत्मा स्थूल इंद्रियग्राह्य पदार्थ नहीं है कि उसे हाथ पकड़कर दान करे। सभी प्रेमोंके भीतर इस ट्रेजेडीके बीज निहित रहते हैं। अचला महिमको सम्पूर्ण मनसे प्यार करती थी और सुरेशको सम्पूर्ण मनसे घृणा करनेकी चेष्टा करती थी। किन्तु क्रमशः महिमकी चुप्पी और आवेगका अभाव लक्ष्य करके और मृणालके साथ उसके गोपन सम्बन्धका सन्देह करके महिमके प्रति उसके मनमें प्रबल वितृष्णा उत्पन्न हुई और सुरेशके प्रति अनजानमें ही एक आकर्षण पैदा हो गया। किन्तु इसे परिपूर्ण प्रेम नहीं कहा जा सकता। अचला जब अपने बीमार पतिको लेकर हवा बदलनेके लिए बाहर जा रही थी, तब सुरेशने जो कुछ किया वह उसकी अत्यन्त विश्वासघातकता और पाशव-नीचताका परिचय देनेवाला है—इसमें सन्देह नहीं; किन्तु यह जो विश्वास-घातकता है, उसके मूलमें एक दुर्दमनीय प्रेमकी चाह है। दुर्निवार जलका प्रवाह जैसे पत्थरके पाँवपर पछाड़ खाकर सिर फोड़ता है, वैसे ही यह प्रेम अचलाके ऊपर आकर फूट पड़ा। अचलाका हृदय तो पत्थर नहीं है। वह इस दुर्दमनीय प्रेमका प्रतिदान नहीं दे सकती थी; किन्तु इसको वह समझ गई थी। इसके ऊपर उसे अपार करुणा थी। इसी कारण सुरेशके विरुद्ध उसने किसी दिन विद्रोह नहीं किया—उसे सहन ही किया है। उसके अनजानमें उसके मनमें सुरेशके प्रति एक गहरी सहानुभूति छिपे छिपे रह रही थी—खिंचावके पड़ते ही वह जाग उठी। जीवित रहते पतिके जिस मिथ्या गौरवका दावा सुरेशने किया था, उसके विरुद्ध अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा; किन्तु सुरेशकी मृत्युके बाद उसने शरीरका दाहकर्म करके उसके अमंगलका बोझा नहीं बढ़ाया। महिमको उसने श्रद्धा की है, प्यार किया है। सुरेशपर उसने श्रद्धा नहीं की, उसे वह सम्पूर्ण हृदयसे प्यार भी नहीं कर सकी। किन्तु उसके मनको वह समझ पाती थी, उसके प्रति उसकी गहरी सहानुभूति थी, साथ ही एक अलक्षित आकर्षण भी था। यह जो उसकी भीतर छिपी हुई सहानुभूति थी, वह कितनी रूपहीन, कितनी छिपी हुई, कितनी गहरी थी, यह वह आप ही नहीं समझती थी, और यह जो छिपी हुई संज्ञाहीन प्रीति थी, वही उसके जीवनका प्रधान दुर्दैव या दुर्भाग्य था। इसी

लिए उसने पतिको पाकर भी गँवा दिया और उसे गँवाकर फिर नहीं पाया। यही जीवनकी गहरीसे गहरी ट्रेजेडी है। कारण, इसके क्षय करनेकी, ध्वंस करनेकी शक्ति हृदयके भीतरसे आती है। अथ च इसमें समाजके विरुद्ध एक छिपा हुआ विद्रोह मौजूद है। यह ट्रेजेडी दिखा देती है कि समाजकी नीति कितनी स्थूल है, मानव-मनका भला-बुरा विचार करनेका उसका अधिकार कितना कम है। अचलाको क्या हम असती या कुलटा कहकर गाली देंगे? अथ च उसने तो कभी अपने मनके धर्मके साथ प्रवंचना नहीं की। यह जो प्रणयकी आकांक्षा है, जिसकी गति इतनी विसर्पित है, जिसकी जड़ हृदयके अत्यन्त गुप्त प्रदेशमें है, उसके सम्बन्धमें कोई स्थूल आईन लागू नहीं होता। इसे समझना होगा, इसे सहानुभूति देनी होगी, इसे स्वीकार करना होगा। शायद यह कभी किसी दिन समाजशक्तिके वशीभूत न होगी, शायद कोई भी आईन इसकी अपनी खास गतिको नियन्त्रित न कर सकेगा। किन्तु इस दुर्ज्ञेय रहस्यको बाद देकर, न समझकर, जो समाजशक्ति संगठित हुई है, उसका यथार्थ मूल्य कितना है?

३—शरत्-साहित्यमें नारी

रमणीका प्रेम

शरत्चंद्रने मनुष्यके मनके संघर्ष और द्वंद्वका चित्र खींचा है। वर्तमान युगके साहित्यका उपजीव्य समाजका प्रभाव है। किन्तु शरत्-साहित्यकी विशेषता यह है कि उसमें समाजशक्तिका प्रभाव भी बाहरी शक्तिके रूपमें नहीं दिखाई देता। वह भी उसके मनमें ही अपना निवासस्थान बनाये हुए है। मनुष्यके मनमें प्रणयकी आकांक्षा उसकी अपनी खास सम्पत्ति है और धर्मबुद्धिकी जड़ उसके संस्कारमें है। नारीके चित्तमें इन दोनों शक्तियोंका जो निरन्तर संघर्ष चलता है—टक्कर होती रहती है, उसीको शरत्चन्द्रने स्पष्ट करके दिखाया है। मेघकी आड़को फोड़कर बाहर प्रकट होनेके कारण ही तो बिजली इतनी चमकती है; पथरीले रास्तेको तोड़कर आना होता है, इसीसे तो सरितामें इतना वेग होता है। इसीसे मानव-हृदयका माधुर्य उसी जगह अधिक प्रकट हुआ है, जहाँ उसे प्रबल प्रतिकूल शक्तिके विरुद्ध संग्राम करना पड़ा है। यह प्रतिकूल शक्ति जितनी अन्तर्निहित होगी—भीतरकी गहाराईमें होगी, उतनी ही उसकी गति दुर्ज्ञेय और रहस्यसे ढकी होगी, उसकी क्षमता उतनी ही असीम होगी।

संस्कारकी शक्ति दो तरफसे आती है। मनुष्य उसे समाज, सभ्यता और धर्मसे प्राप्त करता है; किन्तु वह आश्रय ग्रहण करती है उसके मनमें। और प्रेम-लालसाके साथ इसका अधिक संघर्ष होता है नारीके हृदयमें। पुरुषकी प्रणयकी आकांक्षा उसकी बहुत-सी प्रवृत्तियोंमेंसे एक है। पुरुषके अधिकांश काम बाहरके जगत्से सम्बन्ध रखते हैं। बाहर वह धन चाहता है, क्षमता

चाहता है। उसकी राजनीति, उसकी अर्थनीतिसे उसके प्रेम-प्यारका कोई लगाव नहीं रहता। किन्तु नारीके पक्षमें यह बात लागू नहीं होती। उसकी सारी चेष्टाओंके मूलमें प्रेम और स्नेह मौजूद है। राजलक्ष्मीकी क्षमताकी लालसा श्रीकान्तको पाकर चरितार्थ हो गई थी, और सावित्रीकी अधिकारकी भूख सतीश तक ही सीमित थी। किन्तु पुरुषके लिए यह बात सच नहीं है। इसीसे गंगामाटी ग्राममें श्रीकान्तके दिन नहीं कटते थे। राजलक्ष्मीने खुद ही कहा है—" गंगामाटीके अन्धकूपमें नारीका काम चलता है, मर्द-मानुसका नहीं चलता। यहाँका यह कामकाजसे खाली, उद्देश्यहीन जीवन तो तुम्हारे लिए आत्महत्याके समान है।" यहाँ प्रश्न होगा कि आजकलकी नारी तो सभी क्षेत्रोंमें पुरुषके समान अधिकारका दावा करती है? किन्तु यह अत्यन्त आधुनिक समयकी बात है। शरत्-साहित्यमें इस नये युगकी नारीका परिचय नहीं है। उनके साहित्यमें नारी केवल स्नेह और ममता जानती है और उनके उपन्यासोंका क्षेत्र राजनीतिका क्षेत्र भी नहीं है। वह है माया-ममताका क्षेत्र और उसमें नारीका अचल कर्तृत्व या हुकूमत है। इसीसे श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके संबंधमें सारा जोर राजलक्ष्मीकी ओरसे आया है। श्रीकान्त उस ज्वारके प्रबल स्रोतको लौटा नहीं सका, और भाटाके खिंचावको भी रोक नहीं पाया। सतीश था खूब शक्तिशाली पुरुष, किन्तु सावित्रीको देखते ही उसकी सारी शक्ति गायब हो जाती थी। यदुनाथ कुशारी तर्कालंकार अध्यापक पण्डित आदमी थे; किन्तु अपनी स्त्री सुनंदाके निकट वह नगण्य थे। गिरीशका छोटा भाई रमेश जितना निकम्मा है, उसकी स्त्री शैलजा उतनी ही होशियार और निपुण है। प्रायः सभी उपन्यासोंका यही ढंग है। अवश्य 'ग्रामीण समाज' का रमेश एक पुरुष-सिंह है; किन्तु उसका असल कर्मक्षेत्र ऐसी जगह है, जहाँ रमाके साथ उसका संसर्ग कम है। सामाजिक मामलेमें जहाँ इनका संघर्ष हुआ है, वहीं रमेश रमासे हारा है। शरत्-साहित्यमें केवल एक पुरुष है, जिसके मनमें रमणी अपनी प्रधानताकी छाप नहीं छोड़ पाई। वह है 'शेष प्रश्न' उपन्यासका राजेन्द्र। राजेन्द्र घोर विप्लवी है। प्रलय करनेवाले आग्नेय अस्त्रोंको लेकर उसका कार-बार है। इसीलिए कुसुमायुध कामदेवके साथ उसका संस्रव नहीं है। इसके सिवा प्रायः अन्य सभी क्षेत्रोंमें शरत्चन्द्रने प्रणयके चित्र खींचे हैं, और उनमें

विशेषकरके रमणीका मन चित्रित हुआ है उसकी सारी शक्ति और सारी दुर्बलताके साथ।

नारीके मनको उन्होंने एक संघर्षके बीच देखा है, जहाँ उसकी स्वतः उठी हुई आकांक्षाकी धारा चिरागत संस्कारकी पत्थरकी दीवालसे बाधाको प्राप्त हुई है। इस प्रकारके उपन्यासका प्रधान दोष यह है कि अक्सर अनेक मिथ्या बाधाओंको सचमुचकी बाधा मान लेनेका भ्रम होता है, और उससे हृदयका आवेग अनावश्यक रूपसे उच्छ्वसित हो उठता है। अनुभूति मनुष्यकी बड़ी भारी सम्पत्ति है; किन्तु यदि वह साधारण कारणसे ही उमड़ पड़े तो उसका अकिंचित्कर होना ही प्रमाणित होता है। आँसुओंकी उपमा मोतियोंसे दी गई है; किन्तु साधारण किरकिरी पड़ने या पलक हिलनेसे ही जो आँसू बरसते हैं, वे नकली या झूठे मोतियोंके समान ही मूल्यहीन होते हैं। हरएक बहुमूल्य वस्तु दुर्लभ होती है, यह बात अर्थनीतिके जाननेवाले स्वीकार करेंगे और साहित्यमें भी यही बात लागू होती है। समुद्रके अतल जलमें गोता लगानेपर ही तो असली मोती मिलेंगे। गोता लगाये बिना ही जो मोती मिल जाते हैं, वे नकली होते हैं। बुद्धि और संस्कारके साथ हृदयके आवेगका जो द्वन्द्व होता है, उसीको शरत्-चन्द्रने भाषा दी है। लेकिन बहुत जगहोंपर आघातकी अपेक्षा व्यथा अधिक हुई है और उसी जगह सत्साहित्यके बदले हमने सेंटिमेंटल साहित्य पाया है।

यही जैसे 'स्वामी' (उपन्यास)। बचपनमें सौदामिनी और नरेन्द्रनाथके बीच प्रेम उत्पन्न हुआ था। किन्तु उस प्रेममें कोई गहराई थी, ऐसा नहीं जान पड़ता। एक दिन सौदामिनी बागमें फूल चुनने गई थी और उस समय नरेन्द्रनाथ कोई एक हरकत कर बैठा - बस इतना ही। यह शैवालिनी और प्रतापके प्रेम जैसा नहीं है; पार्वती और देवदासके प्रेमकी तरह भी नहीं है। ब्याहके बाद सौदामिनीने स्वयं ही कहा है—"पहले जो मैंने सोचा था कि नरेन्द्रके बदले और किसीका घर बसाना पड़ा तो उसी दिन मेरा हृदय फट जायगा, सो देखा कि भूल थी। फटने-चिरनेका तो कोई लक्षण ही नहीं नजर आया।" ससुरालमें जाकर पतिका पक्ष लेकर वह अपनी सौतेली साससे झगड़ रही थी कि उसी समय वहाँ नरेन्द्रनाथ आया। उसने मुँहसे कहा कि वह शिकार करने आया है; किन्तु उसका यह धावा सौदामिनीके शिकारके लिए ही था,

पक्षियोंके शिकारके लिए नहीं। पराई स्त्रीपर लुभाये हुएकी इस निर्लज्जतासे सौदामिनीका मन उसके प्रति गहरी नफरतसे भर गया। किन्तु अन्तको वह नरेन्द्रनाथके साथ ही भाग गई। उसकी यह दुर्बुद्धि क्यों हुई, यह कहना कठिन है। शायद उसकी सौतेली सासने उसके पतिके ऊपर जो अन्याय किया था, उसे देखकर शिक्षित रमणीका मन गहरे विरोधके भावसे भर उठा और वह इसी कारण इस तरह भाग खड़ी हुई। किन्तु पतिके लिए उसकी स्नेहहीन विमाताके साथ कलह करके पतिके त्यागका यही यथेष्ट कारण नहीं हो सकता। बल्कि स्वाभाविक तो यह है कि यह अविचार-अन्याय उसे और भी अधिक पतिकी ओर आकृष्ट कर दे। सौदामिनीके हृदयमें नरेन्द्रके प्रति यथार्थ आसक्ति बहुत ही कम थी, उसकी सारी प्रेरणा ही एकदम बाहरसे आई थी। बाहरी शक्तिके साथ द्वन्द्वको लेकर साहित्यकी सृष्टि न हो सके, यह बात नहीं है। ग्रीक ट्रेजेडी दैवके निर्मम पीड़नकी कहानी है। शेक्सपियरके नाटकोंमें भी दैवकी बात न हो, ऐसा नहीं है। किन्तु शरत्चन्द्रकी प्रतिभाने इसका सहारा नहीं लिया। उन्होंने बाहरकी एक शक्तिको ही बड़ा करके देखा है; वह है समाजका नीति-धर्म और उस नैतिक आदर्शने भी नारी-चित्तके संस्कारके भीतरसे रस ग्रहण किया है। सौदामिनीके मनमें पतिके प्रति श्रद्धा और भक्ति यथेष्ट थी और नरेन्द्रके प्रति आकर्षण भी बहुत कम था। पतिके आश्रयको छोड़कर जानेका कोई उपयुक्त कारण उसके मनके भीतर न था। इसीसे शरत्चन्द्रने बाहरसे कुछ कारणोंकी सृष्टि की है। जैसे सौतेली सासका संदेह, छिपकर आड़से देखना और बातें सुनना, उसके पतिके साथ दुर्व्यवहार, उन लोगोंका घर जल जानेकी खबर उसके पतिको ठीक समय पर न देना। किन्तु मनके भीतर जिसकी जड़ नहीं है, उसपर बाहरसे पानी सींचकर क्या लाभ होगा? उपसंहारमें सौदामिनीने कहा है— "इतना रोना जान पड़ता है, जीवनमें कभी नहीं रोई।" इस उपन्यासमें रोना-धोना बहुत है, पर यथार्थ वेदना बहुत कम है। इसीसे कला या शिल्पकी दृष्टिसे भी यह निकृष्ट कोटिका उपन्यास है। इसमें उच्छ्वास है, किन्तु गहरी अनुभूतिका कोई चिह्न नहीं है।

'ग्रामीण समाज' में भी बाहरकी शक्तिको ही प्रधानता दी गई है। रमा रमेशको बचपनमें प्यार करती थी। उनमें ब्याह होनेकी बात भी हुई थी। इसके बाद रमेश गाँव छोड़कर शिक्षा-लाभके लिए बाहर चला गया, और रमा

ब्याहके छः महीने बाद ही विधवा हो गई। शिक्षा समाप्त करके पिताकी मृत्युके बाद गाँव लौटकर रमेशने देखा कि जमींदारीको लेकर रमा और उसके मृत पिताके बीच बहुत-से मुकद्दमे हो गये हैं। दोनों घरोंमें मेल-मोहब्बत बिल्कुल ही नहीं रह गई है। गाँवमें आकर रमेशने ग्रामसमाजके अनेक संकीर्ण विचारों और दलबंदीके बीच देशसेवामें अपनेको लगा दिया और इस दलबंदीके बीच उसके साथ सबसे अधिक शत्रुता जिन्होंने की, उनमें रमा प्रधान थी। अथ च रमा उससे प्रेम भी बहुत रखती थी। यही है रमाके जीवनकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी कि प्रतिकूल अवस्थाकी ताड़नासे उसने अपने एकान्त प्रेमपात्रके साथ शत्रुता की है। रमेशके गाँवमें आकर पहुँचते-न-पहुँचते ही उसने उसके विरुद्ध आचरण किया है। रमेशके पिताके श्राद्धका उल्लेख करके उसने पहले ही वेणी घोषालसे कहा है—"मैं तारिणी घोषालके घर जाऊँगी?" इसके कुछ दिन बाद तालाबकी मछलियोंके हिस्सा-बाँटको लेकर उसने आवश्यकतासे अधिक रुखाईके साथ रमेशके नौकरको दुतकार दिया है। अथ च इसके बाद ही उसने अपने भाई यतीन्द्रसे जैसे स्नेहके साथ रमेशके संबंधमें पूछताछ की, उससे समझमें आ गया कि वह रमेशको कितना प्यार करती है। अतएव रमेशके प्रति इस अकारण कठोर आचरणका एक कारण निश्चय ही यह है कि इस कठिन कवचसे वह अपने हृदयकी गहरी प्रीतिको छिपा रखना चाहती है। इसके साथ थी समाजकी शक्ति, यदु मुखर्जीकी लड़की होनेका गौरव और तारिणी घोषालके प्रति शत्रुता। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"उसके सुस्थ समयमें रमेश जब उसकी सम्पत्ति ग्रहण करनेमें असहमति प्रकट करता, तब वह कह उठती कि "मुखर्जी-वंशका दान ग्रहण करनेमें घोषालवंशको लज्जा नहीं होती।" रमेशके साथ सबसे बड़ा शत्रुताका काम उसने रमेशके विरुद्ध गवाही देकर किया था और यह काम उसने समाजके कलंकके भयसे ही किया था। अतएव उसके जीवनकी गहरी ट्रेजडीके मूलमें बाहरकी समाज-शक्ति और दलबंदीका दबाव था। किन्तु इन दोनों बातोंका असल जोर कितना थोड़ा था? और यह जो मुखर्जी-वंशका गौरव है, सो रमाकी मौसीके लिए ही सोहता है; रमा-जैसी स्त्रीके लिए कितना तुच्छ है! इसके सिवा जिस समाजशक्तिके भयसे उसने रमेशको अग्राह्य किया, जेल भेजा, उसीका मूल्य कितना है? उसने आप ही अपनेसे प्रश्न किया है—"जिस समाजके भयसे मैं इतना बड़ा

गर्हित काम कर बैठी, वह समाज कहाँ है? वेणी आदि कई एक समाजके मुखियोंके स्वार्थ और क्रूर प्रतिहिंसाके बाहर कहीं क्या उसका अस्तित्व है?" अतएव देखा जाता है कि जिस शक्तिके विरुद्ध रमाको लड़ना पड़ा, वह यथार्थमें प्रबल नहीं थी, अथ च उसीके आगे उसने अपने एकमात्र प्रेमपात्रकी बलि दे दी। इससे उसके प्रेमका ही मूल्य क्या है? अन्तको रमाने बहुत आँसू बहाये, रमेशसे क्षमा माँगी, उसे अपने भाई यतीन्द्रका अभिभावक बनाया; किन्तु इस उपन्यासमें आघातकी तुलनामें व्यथा अधिक हुई है और व्यथाकी तुलनामें रुदन अधिक है।

ऐसे ही और भी दो-एक उपन्यास हैं, जैसे 'बड़ी दीदी,' 'पथ-निर्देश' और 'पंडितजी'। बड़ी दीदी माधवीका प्रेम सुरेन्द्रनाथके ऊपर उत्पन्न हुआ था उसका अद्भुत चरित्र देखकर। वह किसी बातका कोई खयाल न रखता था। ऐसे खयाली आदमी ही स्नेह और कृपाके पात्र होते हैं। विधवाके ऊसर हृदयमें सुरेन्द्रनाथने स्नेहका झरना खोल दिया। माधवीके हृदयमें पहले थोड़ा-सा माताका-सा स्नेह जगा था; उसके बाद वह स्नेह ही प्रेमके रूपमें बदल गया। उसने अपने पितासे कहा था—"पिताजी, प्रमीला जैसी है, उसका मास्टर भी वैसा ही है .. दोनों ही बच्चे हैं।" किन्तु क्रमशः उसी बच्चेके-से स्वभाववाले सुरेन्द्रनाथके प्रति कृपाने ही प्रेमका रूप धारण कर लिया। यह पहले-पहल उसकी कृतज्ञताकी आकांक्षामें देखा गया। माधवीने मास्टर साहबको चश्मा खरीद दिया, अथ च मास्टरने किसी प्रकारकी कृतज्ञता इसके लिए नहीं प्रकट की। इससे माधवी कुंठित और पीड़ित हुई, प्रमीलासे खोद-खोदकर तरह तरहके प्रश्न करके उसने देखा, मास्टरने इसके लिए किसी तरहका आनन्द या कृतज्ञता प्रकट की है या नहीं। यह नहीं कि उसने केवल प्रेम ही दिया हो, अनजानमें उसके मनमें प्रेम पानेकी आकांक्षा भी जाग उठी है। अपनी सखी मनोरमाको उसने एक चिट्ठी लिखी और उसमें उसने अपनेको प्रकट कर डाला। उसने लिखा—"सुनती हूँ, उसके मा-बाप हैं, किन्तु मुझे जान पड़ता है, उनका हृदय पत्थरकी तरह कठिन है। जान पड़ता है, मैं तो ऐसे आदमीको आँखोंकी ओट न कर पाती।" इस आखिरी पंक्तिमें ही माधवीके मनकी बात मनोरमाकी पकड़में आ गई। अन्तमें कृतज्ञता जब नसीब नहीं हुई, तब वह काशीको चल दी—सुरेन्द्रनाथ समझ ले कि माधवीके न रहने पर उसे कितनी

असुविधा, कितना कष्ट होता है। माधवींके मनमें यह क्रमशः प्रेमके संचारका चित्र खूब स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है और यही शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका अपना खास क्षेत्र है। किन्तु यहाँ भी शरत्चन्द्रने बाहरी शक्तिको लाकर इस उपन्यासके माधुर्यको नष्ट कर दिया है। बाहरकी जो शक्ति मनुष्यके मनके भीतर रूप नहीं ग्रहण कर सकी, उसकी वर्णनामें कहीं भी उनकी प्रतिभाका विकास नहीं हुआ। माधवीने सुरेन्द्रनाथको एक तरहसे भगा ही दिया था, किन्तु वह नहीं जानती थी कि सुरेन्द्रनाथ अब फिर लौटकर नहीं आवेगा, और वह फिर न मिल सकेगा। इसीसे उसकी यह जो आकस्मिक भूल है, जिसका समर्थन उसके अन्तर्यामीने कभी नहीं किया, वही उसका सबसे बड़ा बोझा हो गई। हिन्दू विधवाके जन्मार्जित संस्कारके साथ नारीकी प्रणयाकांक्षाका चित्रण ही शरत्चन्द्रकी विशेषता है। माधवीके मनमें भी वही संघर्ष हुआ होगा; किन्तु शरत्चन्द्रने अपनी इस कहानीमें उसी चीजको एकदम छोटा करके देखा है। घड़ी-भरकी आकस्मिक भूल या भ्रांति ही इस ट्रेजेडीकी जड़ है।

इस तरहकी आकस्मिक भूलको ट्रेजेडीका अंग अवश्य ही बनाया जा सकता है। डेसडिमोनाने रूमाल खोकर अपने जीवनमें कितना अनर्थ करा दिया था! दलनी बेगमके दुर्भाग्यके मूलमें भी एक आकस्मिक भूल थी। भ्रमर अगर अभिमान करके, रूठकर, अपने मायके न चली जाती, तो शायद वह इस तरह पतिको न खो बैठती। किन्तु वर्त्तमान युगके साहित्यमें, विशेषकर शरत्चन्द्रके साहित्यमें, आकस्मिक घटनाके लिए स्थान बहुत ही कम है। मनुष्य जिसके विरुद्ध संग्राम करता है, वह है समाजकी संघबद्ध शक्ति। उसमें आकस्मिक या अनिश्चित कुछ नहीं है। शरत्चन्द्रकी प्रतिभाका विकास हृदयके आवेगके साथ बुद्धिके संग्रामका चित्र खींचनेमें हुआ है। राजलक्ष्मीने श्रीकान्तको पाकर भी नहीं पाया, सतीश जब सावित्रीके निकट गया तभी सावित्रीने उसे दूर ठेल दिया। परिपूर्ण प्रेमकी जो यह अपरितृप्ति है, इसीकी वेदना शरत्के साहित्यमें व्यक्त हुई है — खिल उठी है। किन्तु माधवीके सारे दुःखका मूल एक आकस्मिक भूल बन गई। यह तो वह सोच ही नहीं सकी कि सुरेन्द्रनाथ उसके कहनेसे—उसकी बातसे—सचमुच चला

जायगा, और चले जानेपर वह फिर नहीं मिल सकेगा। और जब उसे पाया गया, उस समय वह माधवीका आश्रय छोड़ गया था—वह फिर नहीं आया, और माधवी भी उसके पास नहीं गई। माधवीका यह जो न जाना है, हिन्दू-विधवाका यह जो प्रलोभनको रोकना है, उसकी ओरसे यही सबसे बड़ी बात है। किन्तु शरत्चन्द्रने इसे बिल्कुल गौण कर दिया। सुरेन्द्रनाथको जब जमींदारी मिली, तब उसके शिथिल शासनमें उसके अमला लोग प्रजापर तरह तरहके अत्याचार करने लगे और उनके उस अत्याचारका शिकार बड़ी दीदी माधवी भी हुई। इस उत्पीड़नके साथ माधवीके हृदयका कोई लगाव नहीं है। सुरेन्द्रनाथने भी यह उत्पीड़न जानकर नहीं कराया और इस अत्याचारमें बहुत-सी विधवाएँ और अनेक माधवियाँ दलित हो गई हैं। यह सामाजिक चित्र यहाँपर अवास्तव है। कारण, जमींदारका विचारहीन अत्याचार अथवा उसके कर्मचारियोंका अत्याचार इस कहानीका विषय नहीं है। यह मानव-मनकी कहानी भी नहीं है। कारण, इसके सब आघात बाहरसे, घटना-परम्पराके आकस्मिक मेलसे आये हैं। मृतशय्यापर सुरेन्द्रनाथ जो रक्त वमन करने लगा, उसका कारण भी वही पहलेका आघात था, जिसके लिए माधवी केवल अंशतः जिम्मेदार है। "सुरेन्द्रनाथने माधवीसे कहा 'बड़ी दीदी, उस दिनकी बात याद है, जिस दिन तुमने मुझे भगा दिया था? उसीका बदला आज मैंने लिया है। तुमको भी मैंने भगा दिया—क्यों, बदला चुक गया न?' दम भरमें माधवीने चैतन्य खोकर अपना लुंठित मस्तक सुरेन्द्रके कन्धेके पास रख दिया। जब उसे होश आया, उस समय घर भरमें रोनेका हाहाकार उठ रहा था।"—प्रेम-कथाका यह जो करुण उपसंहार हुआ, इसके मूलमें बाहरकी घटनाका समावेश विद्यमान है। अथ च ग्रीक ट्रेजेडीमें, शेक्सपियरके नाटकों अथवा बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंमें 'दैव' की जिस विशालता, उसके जिस दुर्दमनीय प्रभावका हम अनुभव करते हैं, उसका यहाँपर कोई चिह्न नहीं है। मानव-मनकी अनन्त जटिलता, समाज-शक्तिका अनतिक्रमणीय प्रभाव और हृदयकी अजेय आकांक्षाका इस कहानीमें सुस्पष्ट परिचय नहीं है। यह करुण-रसात्मक कहानी है – इसमें ट्रेजेडीकी गहराई नहीं है।

'पथ-निर्देश' भी बहुत-कुछ इसी तरहका है। गुणीन्द्रके साथ मिलनेके लिए हेमनलिनीके मनमें जो आकांक्षा जाग उठी थी, उसके प्रतिकूल कोई शक्ति

उसके अपने मनके भीतर नहीं थी। हिन्दू-रमणीका संस्कार उसके मनमें जड़ नहीं जमा पाया था। यह बात उसने सच कही थी कि उसका रक्षक गुणीन्द्र उसका भक्षण करना चाहता है; किन्तु यह निःसंशय होकर नहीं कहा जा सकता कि यही उसका यथार्थ मत है। विधवा होकर वह इस तरह गुणीन्द्रके निकट आकर उपस्थित हुई कि गुणीन्द्र उसके हावभावको देखकर यह समझ ही नहीं सका कि उसपर कितनी बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। उसमें सद्यो विधवाके वैराग्य या उदासी और गहरी वेदनाका कोई चिह्न ही न था। उसने अपने पतिकी मृत्युकी खबर और अपनेको बहुत भूख लगी होनेकी बात एक साथ ही अपने गुणीन्द्र दादाको बता दी और इसीके साथ यह भी कहा कि वह उस परिवारसे कुछ भी नहीं लाई, जो उनका खाया है उससे कहीं अधिक दान कर दिया है। वह यही समझाना चाहती है कि पतिके घरके साथ उसका कोई सच्चा योग नहीं था; पतिकी मृत्युके बाद उसे जैसे जान पड़ा कि उसके सिरसे एक बोझ उतर गया है और वह बंधनमुक्त होकर अपने एकान्त प्रणयास्पद गुणीन्द्र दादाके पास चली आई है। किन्तु अन्तको पतिभक्तिका सहारा लेकर उसने प्रचण्ड धर्म-चर्चा शुरू कर दी और इसीके तेजसे उसने गुणीन्द्रके प्रणय-प्रस्तावको कठोर भावसे अस्वीकार कर दिया। यही है शरत्चन्द्रका खास अपना क्षेत्र नारीके हृदयका यह कठोर संग्राम—एक ओर हृदयका दुर्दमनीय आवेग और दूसरी ओर जगी हुई धर्म-बुद्धि। खालिस ट्रेजेडीकी सृष्टि करनी हो तो इन दोनों शक्तियोंको समान भावसे प्रबल करना होगा। किन्तु हेमनलिनीके मनमें संस्कारका प्रभाव बहुत ही क्षीण है। विवाहके पहले ही उसने ब्राह्म गुणीन्द्रका जूठा भोजन किया है, विवाहमें उसने गहरी आपत्ति जताई है, विवाहके बाद गुणीन्द्रके घरका उल्लेख करके उसने कहा है कि वहाँ जितना पुण्य-संचय हो सकता है, उतना वैकुण्ठमें बैठकर भी नहीं हो सकता। पतिकी मृत्युके बाद भी उसके समस्त आचरणमें पतिके प्रति प्रीतिका अत्यन्त अभाव ही देख पड़ा है। राजलक्ष्मी आदिकी निष्ठाके साथ इसकी तुलना ही नहीं हो सकती। जिस रमणीका विश्वास इतना शिथिल है, वह यदि हिन्दू रमणीके सतीत्वधर्मकी बड़ाई करके अपने प्रियतमका प्रत्याख्यान करे तो यह प्रत्याख्यान बड़ा ही अस्वाभाविक जान पड़ता है। इसमें ट्रेजेडीकी सामग्री क्षीण है, इसीसे इसको ऊँचे दर्जेका आर्ट नहीं कहा जा सकता।

और एक बात है। हेमनलिनी या ललिताके प्रेममें धनकी ओरसे एक एकान्त भरोसा मौजूद है। गुणीन्द्रने हेमनलिनी और उसकी माताको आश्रय दिया था और शेखरकी आर्थिक सहायता ललिताका एक प्रधान अवलंबन था। जिस प्रेमकी जड़ आर्थिक निर्भरशीलतामें है, जो स्वतः-स्फूर्त नहीं है, उसके भीतर थोड़ी-सी नीचता रहेगी ही। वह कभी स्वतः उत्पन्न होनेवाले प्रेमके गौरवका दावा नहीं कर सकता। ललिता और शेखर तथा हेमनलिनी और गुणीन्द्रके प्रेमके साथ नरेन्द्र और विजयाके प्रेमकी तुलना नहीं हो सकती। विजया नरेन्द्रके निकट धनके लिए ऋणी नहीं, बल्कि उसने उसीकी सारी सम्पत्ति कर्ज वसूल करनेके नामसे छीन ली है। नरेन्द्र ऐसा स्वाधीनचेता था कि एक 'माइक्रोस्कोप' तक उसे उपहार देनेका विजयाको साहस नहीं हुआ। विजया नरेन्द्रकी ओर आकृष्ट हुई थी उसकी उन्नत बलिष्ठ देह और उससे भी अधिक बलिष्ठ उसका चरित्र देखकर। राजलक्ष्मीके पास अथाह धन था, किन्तु श्रीकान्तने वह तनिक-सा भी नहीं ग्रहण किया। वह सुदूर बर्माके मुल्कमें अपना पेट पालनेके लिए—जीविकाकी तलाशमें—चला गया। पर-भृत् कोयलके स्वरकी मधुरता नष्ट नहीं होती, किन्तु पराश्रित मनुष्यके जीवनका गौरव घट जाता है। सुरेशने अचलाके पिताका ऋण चुकाकर अचलाको पानेकी चेष्टा की थी; किन्तु इससे अचलाका मन सुरेशके विरुद्ध ही हो उठा था। मनुष्यकी अन्तरात्मा कभी बाजारके सौदेकी तरह बेची नहीं जा सकती। इस अगौरवकी बात हेमनलिनी और ललिताके मनमें कभी नहीं उठी। शेखर और गुणीन्द्रके चरित्रमें प्यार करने लायक कुछ भी न हो, यह बात नहीं है; किन्तु यह बात माननी ही होगी कि उन्होंने ललिता और हेमनलिनीको प्रधानतः अपने ऐश्वर्यसे अपनी ओर आकृष्ट किया था। शेखर जो रूठता था सो वह क्या केवल प्रेम या प्यारका ही दावा था? हेमनलिनीने जो बिगड़कर कहा था कि गुणीन्द्र रक्षक बनकर भक्षक हो रहा है, इस कथनमें क्या कुछ भी सत्य नहीं है? शरत्चन्द्रने इन सब प्रश्नोंकी आलोचना बिल्कुल ही नहीं की; हेमनलिनी और ललिताके मानसिक विश्लेषणमें यह पहलू एकदम छोड़ दिया गया है।

पंडितजी (पंडित मशाई) उपन्यासके संबंधमें ये सब बातें लागू नहीं होती। कुसुमके पास खाने-पीनेका सुभीता नहीं है; वृन्दावन उसकी अपेक्षा

सम्पन्न है। किन्तु कुसुम कभी किसी दिन वृन्दावनके पास नहीं गई। और जिस दिन उसने वृन्दावनका आश्रय चाहा, उस दिन भी रुपए-पैसेकी तंगीके कारण उसने कृपाकी भीख नहीं माँगी। यह ब्याहता स्त्रीके न्याय-संगत अधिकारका दावा है। कुसुमके जीवनकी और एक विशेषता यह है कि उसके ऊपर बाहरका दबाव बहुत कम है। समाजशक्तिका प्रभाव उसकी अपनी शिक्षाके भीतरसे दिखाई दिया है। उसके पति वृन्दावनने उसे छोड़ दिया था। इसके बाद उसका कंठीबदल (कंठी बदलकर होनेवाला वैष्णव बैरागियोंमें प्रचलित एक प्रकारका ब्याह) हुआ। फिर जिसके साथ कंठी-बदलकी रस्म हुई थी वह 'असल बैरागी' भी इस शुभ कार्यके छः महीनेके भीतर ही नित्यधाम (वैकुंठ) को सिधार गया। इसके बाद उसका पति उसे फिर ग्रहण करनेको राजी हुआ और वैष्णव बैरागियोंमें यह बुरा भी नहीं समझा जाता। मगर बचपनसे ही कुसुम ब्राह्मणोंकी लड़कियोंके साथ इतनी बड़ी हुई थी और उन्हींके साथ साथ प्यारी पंडितकी पाठशालामें पढ़ी-लिखी, खेली-कूदी थी। आज भी वे ही सब उसकी संगी-साथिन हैं। इस कारण इस प्रसंगको लेकर घृणा और लज्जासे उसका मन सिहर उठा। किन्तु धीरे धीरे जब पतिके साथ उसका परिचय हुआ तब एक दिन अपनी सौतके बेटेको देखकर उसके हृदयमें नारीत्व और मातृत्व जाग उठा। तब जिस पतिको उसने इतने दिन निर्मम भावसे विमुख लौटाया था, उसीको पानेके लिए उसके मनमें एक प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो गई। लेकिन तो भी वह मिलन अपूर्ण ही रह गया। उसने जब खुद अपने पतिको पति स्वीकार कर लिया, तब फिर यथार्थ बाधा कुछ भी नहीं रह गई थी। और पहले जो बाधा थी उसके मूलमें भी पुस्तकोंमें पढ़ी हुई विद्या ही थी, हिन्दू-विधवाका जन्मसे ही प्राप्त संस्कार न था। उसने जिसे प्यार किया था, वह श्रीकान्त अथवा सतीशकी तरह ऐसा न था जिससे उसका कोई सम्पर्क न हो। वह उसका ही पति है; अतएव उसके साथ मिलनकी राहमें वैसी कोई बाधा नहीं रह सकती, जो नाँघी न जा सके। मिलनमें बाधा पड़ी एक दिनके क्षणिक अभिमानसे जिसके कारण उसने स्नेहमयी सासके दिये हुए आशीर्वादको लौटा दिया—ग्रहण नहीं किया। इसके बाद उसने वारंवार इस गलतीके लिए पश्चात्ताप किया और पतिसे यह अनुरोध किया कि वह उसे ग्रहण कर ले। वृन्दावनने आप उसे ले जाना स्वीकार नहीं किया; उससे

खुद अकेले पैदल जाकर अपनी माताके पास उपस्थित होनेके लिए कहा। अभिमानिनी कुसुमके हृदयको इससे चोट पहुँची। उसने कहा—"मैं कैसे दिन दो पहरको पैदल चलकर एक भिखारिनकी तरह गाँवके भीतर जाऊँ?" और मन ही मन कहा कि "वह आप भी जानते हैं कि मैं ही उनकी धर्मपत्नी हूँ। फिर क्यों वह मेरी इस अनुचित ढिठाईकी परवाह करते हैं? क्यों नहीं जोर दिखाते? क्यों नहीं जबरदस्ती आते? क्यों नहीं मेरे सारे घमंडको पद-दलित करके—चूरचूर करके जहाँ जी चाहे वहाँ खींच ले जाते?" इस तरह कुसुमकी सारी बाधा एक साधारण स्पर्द्धा और घमंडसे आई, जिसे वह आप ही तोड़ डालना चाहती थी। उसके अन्तरतम अन्तःस्तलमें जो आकांक्षा जाग उठी थी, उसके आगे इस बाधा या घमंडका मूल्य क्या और कितना था? वास्तवमें इस ट्रेजेडीके मूलमें कोई गहरा संघर्ष नहीं है। नारीकी पतिके संगकी आकांक्षामें बाधा डाली है पाठशालाकी शिक्षा और क्षणभरके अभिमानने। इनके मिलनको गहरा और ठोस बनानेके लिए कविको 'चरन' की मृत्युकी कल्पना करनी पड़ी है। ऐसा न होता तो यह मिलन एकदम कामेडी होता।

'देवदास' में भी यही एक समस्या है। बचपनमें देवदास और पार्वती, दोनों एक पाठशालामें पढ़ते थे और तभी उनमें गहरा प्रेम उत्पन्न हुआसा था। शरत्चन्द्रके साहित्यमें पाठशाला वाग्देवीका पीठस्थान हो चाहे न हो, लेकिन अनंगदेवकी प्रधान लीलाभूमि अवश्य है। पाठशालामें ही रमाके साथ रमेशकी भेंट हुई थी, पार्वतीने देवदासको पाया था और राजलक्ष्मीने करोंदोंकी माला देकर श्रीकान्तको वरण किया था। वह चाहे जो हो, पार्वती और देवदासका ब्याह नहीं हो सका—जिस तरह सामाजिक कारणसे रमा और रमेशका ब्याह न हो सका। रमा रमेशकी अपेक्षा कुलीन घरकी थी और पार्वतीकी अपेक्षा देवदासका वंश-गौरव अधिक था। किन्तु पार्वतीके निकट इस सब मान-मर्यादाका मूल्य कम था। उसने देवदाससे कहा—"बाप-मासे अवाध्य होकर ब्याह कर लो।" देवदासने कहा—"मैं बाप-माका अवाध्य होऊँ?" पार्वतीने उत्तर दिया—"इसमें दोष क्या है?" पार्वतीमें एक साहस है, जिसकी तुलना केवल अभयासे हो सकती है। बादको मनोरमाका पत्र पाकर वह जब देवदासको लेने आई, तब भी उसने मनोरमाकी आपत्तिका जोरदार शब्दोंमें खण्डन करके

उसे चुप कर दिया। मनोरमाने कहा – " पारो, तुम क्या देवदासको देखने आई हो ? "

पार्वतीने कहा – " नहीं, साथ ले जानेके लिए आई हूँ। यहाँ उनका और कोई अपना आदमी तो है नहीं। "

मनोरमा सन्नाटेमें आकर अवाक् हो गई। बोली—" कहती क्या है ? लाज नहीं लगती ? "

पार्वतीने कहा—" लाज काहेकी ? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊँगी, इसमें लजानेकी क्या बात है ? "

मनोरमाने कहा – " छी, छी, यह कैसी बात करती हो ? कोई नाता, कोई लगाव तक नहीं है—ऐसी बात जबान पर न लाओ। "

पार्वतीने मुरझाई हुई हँसी हँसकर कहा—" मनो दीदी, मैंने जबसे होश सँभाला, तबसे जो बात मनमें बसी हुई है, वह एक आध बार मुँहसे निकल ही आती है। "

पार्वतीमें यह साहस था कि अपनी चीजको अपनी कहकर दावा करे। तो भी वह वैसा नहीं कर सकी। पहली बाधा तो उसका अभिमान ही हुआ। उसने दर्पके साथ देवदाससे कहा था—" तुम्हारे मा-बाप हैं, तो क्या मेरे नहीं हैं ? उनके मतामतकी क्या जरूरत नहीं है ? " इसके अलावा वह हिन्दू घरकी बहू है। उसके लिए समाजको त्याग करनेकी बात कहना जितना सहज है, उतना सहज उसे कार्यरूपमें परिणत करना नहीं। जान पड़ता है, देवदास भी इस कामके लिए राजी न होता। पार्वतीके चरित्रका विश्लेषण करते समय शरत्चन्द्रने इन सब कारणोंकी यथोपयुक्त आलोचना नहीं की। जिस गहरे संस्कारकी दुरतिक्रमणीय शक्तिके निकट हृदयकी सारी आकांक्षाओंकी बलि देनी होती है, उसने पार्वतीके मनपर कितना प्रभाव डाला था, इसका अच्छी तरह विचार नहीं किया गया। शरत्चन्द्रकी शुरूकी रचनाओंमें यह उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है। इसमें उनकी प्रतिभाका आभास है, किन्तु उसका विकास नहीं हुआ।

२

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें बाहरकी शक्तियोंको यथासम्भव गौण बनाकर सारे संग्राम या संघर्षको मनके भीतर ही केन्द्रीभूत किया गया है। दुर्निवार प्रेमकी आकांक्षा और धर्म-बुद्धि, इन दोनों प्रतिकूल जानेवाली शक्तियोंमें निरन्तर जो घोर संघर्ष होता रहता है, वही उन्होंने चित्रित किया है। धर्मबुद्धि नामकी कोई मौलिक वृत्ति है या नहीं, इसमें सन्देह है। हम जिसे नीति और धर्म कहते हैं, वह है समाजसे पाया हुआ। किन्तु इसका विकास मनुष्यके मनमें होता है। शरत्चन्द्रकी रचनामें बाहरी समाज-शक्तिके प्रभावकी बात अधिक दिखाई गई है, किन्तु उस शक्तिकी क्रीड़ाभूमि है मनुष्यका मन, जहाँपर उसे बाधा पहुँचाई है नारीकी जन्मजात प्रणयकी आकांक्षाने। इसमें उच्छ्वास नहीं है, अति नहीं है, अतिशयोक्ति नहीं है। इसकी जड़ अन्तःकरणकी भीतरी तहमें है। यह मानव-जीवनके चरम दुर्भाग्य और श्रेष्ठ सम्पत्तिकी बात जता देती है। श्रीकान्तको बुखारकी हालतमें, जब वह बेहोश था, राजलक्ष्मी पटना ले आई और असीम यत्नसे सेवा शुश्रूषा करके जब चंगा कर दिया तब फिर आप ही उसे बिदा करनेको उद्यत हो गई। यह बाहरकी ताड़ना या दबाब न था। समाजने प्रत्यक्ष भावसे उसे बाधा नहीं दी। वहाँ कोई ग्रामीण समाज न था। उसकी प्रणयाकांक्षामें बाधा था उसका मातृहृदय। "उसकी असंयत कामना और उच्छृंखल प्रकृति उसे नीचे गिरानेके लिए चाहे जितना ठेलना चाहे, किन्तु वह यह बात भी नहीं भूल सकती कि वह एक लड़केकी मा है और उस सन्तानकी भक्तिसे झुकी हुई दृष्टिके सामने उसकी माका तो वह किसी तरह भी अपमान नहीं कर सकती।" श्रीकान्त और राजलक्ष्मीमें व्यवधान स्पष्ट हो गया—एकाएक बंकूकी मा अभ्रभेदी हिमालयके शिखरकी तरह राह रोककर राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके बीच खड़ी हो गई। राजलक्ष्मीने श्रीकान्तके पाससे अपनेको छीन लिया और श्रीकान्त अपने शयनकक्षमें निद्राहीन रात्रि बिताने चला गया। बहुत रात बीते राजलक्ष्मीने गुप्त रूपसे श्रीकान्तके शयनकक्षमें घुसकर, बाहरकी खिड़कियाँ बन्द करके, रोशनी बुझाकर, उसके देहकी गर्मीका अनुभव करके, उसके कपड़े ठीक कर दिये। अन्तको मसहरीके छोर अच्छी तरह बिछौनेके

नीचे दबाकर अत्यन्त सावधानीसे किवाड़े भेड़कर बाहर निकल गई। चुपचाप छिपकर एकान्तमें आनेवालीका यह गोपन करस्पर्श, उसकी यह छुपी हुई एकाग्र सेवा, इसका माधुर्य अभिव्यक्त हुआ है निकटवर्ती वियोगकी म्लानताके भीतरसे। राजलक्ष्मीने बुद्धिके द्वारा जिसे दूर कर दिया था, उसीके निकट गोपन आवेगके द्वारा आत्म-निवेदन किया। श्रीकान्तने आप ही कहा है,—" जो गुप्त रूपसे आई थी; उसे मैंने गुप्त रूपसे ही जाने दिया। किन्तु इस सुनसान आधी रातमें—निर्जन निशीथमें—वह मेरे पास अपना कितना छोड़ गई, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। "

इसके कुछ समय बाद श्रीकान्त फिर बर्मा जानेका और ब्याह करनेका प्रस्ताव लेकर हाजिर हुआ। राजलक्ष्मी श्रीकान्तकी एकान्त शुभचिन्तिका है। अतएव श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावमें वह आग्रह प्रकट करके उसमें अगुआ बने, यह स्वाभाविक है। वह उत्साहके साथ कह उठी -- " इससे मैं न सुखी होऊँगी तो और कौन होगा ? " किन्तु वह श्रीकान्तके लिए शुभचिन्तिकाकी अपेक्षा भी बहुत अधिक है। उसका समस्त मन और हृदय श्रीकान्तको पानेके लिए उन्मुख हो रहा है और उसीके जोरसे वह श्रीकान्तके हृदयपर अचल कर्तृत्व या अधिकार चाहती है। इसीसे श्रीकान्तके ब्याहमें उसकी बुद्धि साथ दे सकती है—उसका अनुमोदन या समर्थन कर सकती है; किन्तु उसकी अन्तरात्मा कैसे सहमत हो सकती है ? तब शुभानुध्यायिनीकी आड़को तोड़कर प्रणयिनीके हृदयकी वेदना फूट पड़ी। इस खबरको पहले तो अग्राह्य करके राजलक्ष्मीने उड़ा दिया; पराई चिट्ठी नहीं पढ़ेगी, यह कहकर उपेक्षाके साथ उस चिट्ठीको रख देनेकी चेष्टा की किन्तु अन्त तक उस चिट्ठीको अपने हाथकी मुट्ठीमें ही पकड़े रही। कुछ देर बाद चिट्ठी पढ़कर उसने बिल्कुल ही लापरवाहीके साथ पात्रीके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करनेकी चेष्टा की; किन्तु जिस ब्याहके साथ उसकी सारी आशा-आकांक्षा विजड़ित है, उसके सम्बन्धमें वह निर्विकार कैसे रहे ? बाहरसे वह जितना ही उदासीनताकी भान करने लगी, उतना ही उसका मन आशंकासे कंटकित हो उठा। मुँहसे वह जितना ही उत्साह प्रकट करने चली, उतना ही उसका हृदय विषादसे भरने लगा। अन्तको वह समझ पाई कि उसने प्रेम केवल दिया ही नहीं, पाया

भी है। उसके निन्दित जीवनकी कलुषकालिमा संचित रहने पर भी, उसका प्रेमपात्र उसीके लिए सब कुछ छोड़नेको प्रस्तुत हुआ है। उसका सारा संदेह और आशंका दूर हो गई, उसका कलंक-लिप्त जीवन अपूर्व गौरवसे मण्डित हो उठा। हतभागिनीके सारे दुर्भाग्यको तोड़-भेदकर आनन्दकी बाढ़ आ गई। इसका वर्णन देते हुए श्रीकान्तने कहा है--" पलभरके लिए दोनोंकी चार आँखें हो गईं और तुरन्त ही वह तकियेमें मुँह छिपाकर छातीके बल पलँगपर पड़ गई। केवल उमड़ी हुई रुलाईके आवेगसे उसका सारा शरीर काँप-काँपकर फूल उठने लगा। सिर उठाकर मैंने देखा। सारा घर गहरी नींदमें बेखबर है—कहीं कोई जाग नहीं रहा है। केवल एक बार जान पड़ा, अंधकारमें रात्रि जैसे अपने कितने ही उत्सवोंकी प्रिय सहचरी पियारीबाईके इस मर्मभेदी अभिनयको अत्यन्त परितृप्तिके साथ देख रही है। " जो रुदन पियारीबाईके सारे उत्सव-ऐश्वर्यकी आड़में इतने दिनसे जमा हो उठा था, आज अपनी झूठी नकाब उतार फेककर वह पूरे जोरसे निकल पड़ा। अनेक बाधाओंको नाँघकर प्रकट हुआ है, इसीसे तो यह रोना इतना वेदनामय, इतना मधुर है।

'देवदास' आदि उपन्यासोंकी ट्रेजेडीके मूलमें घड़ी भरका अभिमान या क्षणिक भ्रान्ति है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीकी कहानीमें भी मान-अभिमान अवश्य है; किन्तु ट्रेजेडीका मूल हृदयकी सबसे भीतरी तहमें है। वह मान-अभिमानसे परे है। अभिमान और ईर्ष्यासे इसका संचित माधुर्य और भी अधिक छलक पड़ता है, बस। राजलक्ष्मीके घर आकर श्रीकान्तने देखा कि दरभंगेके महाराजके नातेदार पुर्निया जिलेके जमींदार रामचन्द्रसिंह वहाँ अपने दलबलके साथ उपस्थित हैं। श्रीकान्तके अकस्मात् आपड़नेसे राजलक्ष्मी चौंक उठी। इसके बाद श्रीकान्त सचमुच ही उसे चाहता है कि नहीं, यह जाँच लेनेके लिए राजलक्ष्मीने उसके मनमें एक प्रबल ईर्ष्याका भाव जगानेकी चेष्टा की। ईर्ष्या तो प्यारकी कसौटी है। उसकी इस चेष्टाके भीतरसे उसकी शंका, उसका प्रेम और अनुनय फूट उठा। उसने जितना ही यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की कि वह श्रीकांतको एक साधारण मेहमानके सिवा और कुछ भी नहीं समझती, उसके सुख-स्वाच्छन्द्याका कुछ भी खयाल नहीं करती, उतना ही उसके अनजानमें उसकी बातचीतसे, उसकी सैकड़ों छोटी-मोटी हरकतोंसे—आचरणसे—

उसके हृदयकी गुप्त बात ही जाहिर हो पड़ी। उसकी उदासीनता या लापर्वाहीकी आड़में था करुण आग्रह, उसके दिये हुए आघातकी आड़में थी अत्यन्त-दीन प्रेमकी भिक्षा। झूठी बदनामीके भयसे श्रीकान्त उसे प्रयाग ले जानेको राजी नहीं है, यह देखकर राजलक्ष्मी रोषसे, अभिमानसे, बदला लेनेके लिए उसी दिन बग्घीमें बैठकर बाहर चली गई। श्रीकान्तको वह दिखाना चाहती है कि यह ऐश्वर्यमय जीवन उसने श्रीकान्तके लिए ही त्याग दिया था और इच्छा करे तो फिर उसे शुरू कर सकती है। किन्तु इस रोष-दीप्त दृप्त अभिमानके भीतरसे उसकी अत्यन्त दुर्बलता ही प्रकट हो पड़ी। वह किसीकी जर-खरीद दासी नहीं है, यह उसने श्रीकान्तके आगे अहंकारके साथ ही कहा था। किन्तु श्रीकान्तके साधारण गरम पड़नेपर उसका सारा अभिमान सारा दर्प पल भरमें कपूरकी तरह बिलकुल बिला गया।

इन सब चित्रोंमें शरत्चन्द्रकी शिल्प-निपुणताका चरम विकास वहाँपर हुआ है, जहाँ अर्धचेतन प्रेम-वेदना सचेतन संस्कार और अनुभूतिके बाँधको तोड़कर बाहर निकल पड़ी है। यहाँ राजलक्ष्मीके चरित्रकी एक और विशेषताकी बातका उल्लेख करना होगा। उसमें एक असाधारण शक्ति और एक असीम दुर्बलताका अति सुन्दर समावेश हुआ है। उसकी शक्तिका अन्त नहीं है, उसकी आकांक्षाकी समाप्ति नहीं है। उसने बहुत धन कमाया है, बहुत कुछ अवहेलाके साथ त्याग कर दिया है। श्रीकान्तको पानेके लिए उसने सारी सम्पत्तिका त्याग कर दिया है, और इस अशेष शक्तिशालिनी रमणीने अपनी अधिकार-लालसाको भी भी एकदम विसर्जन कर देनेकी चेष्टा की है। इसीसे जिस दिन उसकी दृष्टिमें इस लोकका सब पावना तुच्छ हो गया, उसी दिन उसने श्रीकान्तको त्याग करन चाहा। गहरी निराशासे श्रीकान्तने स्वयं ही कहा है—" राजलक्ष्मीमें असीमा शक्ति है। इस विपुल शक्तिको लेकर वह पृथ्वीपर जैसे केवल अपनेहीको लेकर खेलती चल रही है। एक दिन इस खेलमें मेरी जरूरत हुई थी। उसकी उस एकाग्र वासनाके प्रचण्ड आकर्षणको रोकनेका बूता मुझमें नहीं था, हार मानकर—सिर झुकाकर आया था। ..आज इसका चित्त इस लोकके सभी पावनों (प्राप्य) को तुच्छ करके आगे बढ़नेको उद्यत हुआ है। उसकी राहको रोककर खड़े होनेको जगह नहीं है। अतएव अन्यान्य आवर्जना (कूड़े-कचरे)

की तरह मुझे भी राहके एक किनारे अनादरके साथ पड़ा रहना होगा, उसमें चाहे जितनी वेदना हो, उसे अस्वीकार करनेका कोई उपाय नहीं है।"

चतुर्थ पर्वमें राजलक्ष्मीके साथ कमललताकी भेंट हुई। कमललताकी कहानी आश्चर्यजनक है। उसका माधुर्य सहजहीमें पाठककी दृष्टिको अपनी ओर खींचता है। कमललताका चरित्र कलंक-लिप्त होने पर भी उसमें उदारता, महत्ता और त्यागशीलताका अभाव नहीं है। लेकिन तो भी यह चित्र शरत्चन्द्रकी शिल्पकलाका खरा नमूना नहीं है। कारण, इस रमणीके चरित्रपर शरत्चन्द्रकी नायिकाओंकी विशेष छाप नहीं है। कमललता विधवा है। घरके एक कर्मचारीके साथ अवैध प्रणयसे वह एक सन्तानकी जननी हो गई और इस कलंकको स्वीकृत कर लेनेके लिए वह वैष्णवी हो गई। किन्तु हम देखते हैं कि इस नये धर्मकी दीक्षा लेकर भी सन्तानको जन्म देकर वह फिर अपने पहलेके प्रेमीको ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हुई, यद्यपि उसके नवीन धर्मके मान लेनेपर यही आदमी उसका स्वामी कहा जाना चाहिए। उसे प्रत्याख्यान करनेका कारण उपन्यासमें स्पष्ट नहीं हुआ। जान पड़ता है, इस आदमीके चरित्रकी बर्बरताने ही कमललताको उसके प्रति श्रद्धाहीन या उससे विमुख कर दिया है। किन्तु प्रवृत्ति और बुद्धिके बीच जो द्वन्द्व या संघर्ष शरत्चन्द्रकी अन्यान्य नायिकाओंकी विशेषता है, उसका आभास भी कमललतामें नहीं। गौहर गोसाईंने इस रमणीके लिए अपने जीवनको व्यर्थ कर दिया। उसकी अन्तिम रोग-शय्यापर कमललताने ऐसी सेवा की जैसी कोई भी नहीं कर सकता। किन्तु इस सर्वत्यागी प्रणयीको कमललताने क्यों ग्रहण नहीं किया, इसका भी कोई कारण खोजे नहीं मिलता। श्रीकान्तके ऊपर उसे अनुराग है। शायद यह अनुराग प्रेमके रूपमें बदल जाता, किन्तु दोनोंके बीचमें राजलक्ष्मी मौजूद है। किशोर अवस्थाके वैधव्यसे आरम्भ करके द्वारिकादास बाबाजीके आश्रमसे निकाले जाने तक कमललता बहुत-सी अद्भुत अभिज्ञताओंके बीचसे गुजरी है। इससे उसके चित्तको दारुण पीड़ा पहुँची है, उसका चित्त उच्छ्वसित हुआ है, किन्तु उसके अन्तस्तलमें जो रहस्य मौजूद है, उसे ग्रन्थकारने सम्पूर्ण रूपसे नहीं खोला।

राजलक्ष्मीके साथ सावित्रीकी बहुत कुछ समानता है। दोनों ही विधवा हैं, दोनोंमें ही हिन्दू विधवाके जन्मसे ही उपार्जित या प्राप्त संस्कारोंके साथ नारी-

हृदयकी स्वतः प्रकट होनेवाली प्रणयकी आकांक्षाका संघर्ष हुआ है । किन्तु आर्टकी दृष्टिसे सावित्रीका चित्र बहुत कुछ निकृष्ट उतरा है – उसमें वह वेदना, वह तीव्रता नहीं है । इसका कारण यह है कि सावित्रीके जीवनकी व्यर्थताका सूत्र बाहर है । सरोजिनी सतीशको खूब ही प्यार करती थी । यह बात नहीं है कि सतीश सरोजिनीको प्यार न करता हो; किन्तु उसके प्रति सतीशके मनमें गहरा स्नेह होनेका ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं है । सावित्री अगर चाहती तो सतीशसे उसका मिलन, जान पड़ता है, सम्पूर्ण सार्थक हो सकता । सावित्रीको पाना संभव न होनेसे ही सती सरोजिनीके प्रेमको स्वीकारकर, बदलेमें प्रेम देकर, उससे ब्याह करनेको राजी हुआ । दूसरेके प्रेमपात्रको चाहनेमें—प्रेम करनेमें एक गहरी व्यर्थता है । इस हिसाबसे सरोजिनीका जीवन एक ट्रेजेडीमें समाप्त हो सकता था । किन्तु कविकी दृष्टि उधर नहीं गई । अपेक्षाकृत उथला प्रेम सफलतासे मंडित हुआ और सावित्रीका असीम प्यार एकदम व्यर्थ हो गया । जो गौरव पार्वती और राजलक्ष्मीने पाया था, वह उससे भी वंचित हुई । अथ च इस व्यर्थताके लिए उसकी केवल आंशिक या थोड़ी-सी ही जिम्मेदारी है । उसकी भाँति ऐसा सर्वस्व किसने खोया है ? अन्तकी ओर उपेन्द्रने बातोंका जाल बुनकर—उसके जीवनकी शून्यताको भरनेकी चेष्टा अवश्य की, किन्तु यथार्थ व्यर्थता स्नेहके स्तोक वाक्योंसे कैसे भरी जा सकती है ?

अचलाकी समस्या सबसे गुरुतर है । उसका प्रश्न हिंदू समाजके खिलाफ नहीं है । वह हिंदू समाजकी नहीं है । वह ब्राह्मसमाजी है । मृणाल जिस धर्मनिष्ठाकी बड़ाई कर सकती थी, वह उसके प्रभावसे प्रभावित नहीं है । अचलाने जो प्रश्न उठाया है, वह किसी खास धर्मके विरुद्ध नहीं है । वह तो मानव-सभ्यताकी जड़की बातको लेकर उलझन पैदा करता है । पहले मर्दके बहु-विवाह प्रचलित थे; अब भी बहु-विवाह बिल्कुल उठ नहीं गये । किन्तु वर्तमान युगकी सभ्यता और नीतिकी मूल बात यह है कि नारी केवल एक ही पुरुषकी पत्नी हो सकती है । किसी समय द्रौपदी पाँच पतियोंकी पत्नी होकर सती कहलाई थी; परन्तु इस समय ऐसी बातकी कल्पना करना भी बीभत्स है । किन्तु समाजके विधि-निषेधसे सभी नारियोंके मनको बाँध देना सम्भव नहीं है । इसीसे बर्नार्डशाके एक नाटकमें एक रमणीने प्रश्न किया है—
"Oh ! how silly the law is ! why can't I marry them both...

Well, I love them both. ”* अचलाके जीवनकी व्यर्थताका मूल भी इसी स्थानपर है। उसने जिसपर श्रद्धा की उसे सम्पूर्ण हृदयसे प्यार नहीं कर सकी, और जिसपर कभी श्रद्धा नहीं कर सकी उसीके प्रति अलक्षित भावसे उसका मन आकृष्ट हो गया। जिन दोनों बन्धुओं या मित्रोंने उसके जीवन-नाट्यमें इतनी जगहपर अधिकार कर लिया था, वे एकदम परस्पर विपरीत प्रकृतिके थे। एक आदमी पर्वतकी तरह चुप रहनेवाला, अचल और आवेशहीन और दूसरे आदमीकी प्रवृत्ति थी जलके उच्छ्वास या ज्वारकी तरह दुर्निवार—रोके न रुकनेवाली। एक आदमीके मनकी बात वह कभी जान नहीं पाती थी, और दूसरा आदमी प्रत्येक शब्दमें—हर बातमें—अपनेको निःशेष करके निवेदन करता था। अचलाकी सचेतन बुद्धिने जो उसे समझाया, उसके भीतर स्थित अन्तरात्माने अज्ञात रूपसे ठीक उसके विपरीत प्रवृत्तिको प्रेरणा दी, जगाया। सुरेशकी नीचतासे अपनेको छुड़ाकर महिमको पति-रूपमें वरण करके वह अपनी ससुरालमें पतिकी गृहस्थी करने गई। वहाँ वह जब क्रमशः महिमके प्रति खीझ उठी, तब जो स्नेह अलक्षित रूपसे उसके मनमें सुरेशके प्रति संचित हो उठा था, वही प्रकट हो पड़ा। जिस सुरेशको वह घृणा करती थी, उसीसे वह व्याकुल होकर कह उठी—“ मैं तुम्हारे किसी काम नहीं आई सुरेश बाबू, लेकिन तुम्हारे सिवा मुसीबतमें काम आनेवाला कोई बन्धु नहीं है। तुम पिताजीसे जाकर कहो, इन लोगोंने मुझे यहाँ बाँध रखा है; ये मुझे कहीं जाने नहीं देंगे। मैं यहाँ मर जाऊँगी। सुरेश बाबू, तुम लोग मुझे ले जाओ यहाँसे—जिसे मैं प्यार नहीं करती, उसकी घर-गिरस्ती करनेके लिए तुम मुझे यहाँ मत रख जाओ।” लेकिन बादको लज्जा और पछतावेसे उसका मुँह सफेद पड़ गया। पतिको छोड़कर ही उसने समझा कि पतिकी ओर उसका आकर्षण कितना गहरा है। इसके बाद उसने पत्नीके उचित आसनको सेवाके द्वारा फिर लौटा लिया।

किन्तु पतिको वह चाहे जितना निकट और गहराईके साथ पावे, उसका मन प्रेमके भिखारी सुरेशकी ओर भी आकृष्ट हुआ। एक दिन जाड़ोंकी रातमें

---

* ओह! यह कैसा बेवकूफीका कानून है! मैं उन दोनोंसे विवाह क्यों नहीं कर सकती? मैं तो उन दोनोंको प्यार करती हूँ।

सबके सो जाने पर सुरेश चुपकेसे अचलाके कमरेमें गया और अपने ओढ़नेकी चादरसे सोती हुई अचलाकी देहको यत्न और स्नेहके साथ ढककर चुपचाप लौट आया। "आँखें मूँदे उस झुकी हुई प्यासी नजरको जैसे स्पष्ट देखकर वह रोमांचित हो उठी।...इस कदाचारसे उसे असीम लज्जा मालूम हुई। वह इस कामको कुत्सित कहकर, निन्दित कहकर हजारों तरहसे अपमानित करने लगी और अतिथिके प्रति गृह-स्वामीकी इस चौर्य-वृत्तिको वह कभी क्षमा नहीं करेगी—यह कहकर उसने बारंबार प्रतिज्ञा की, लेकिन तो भी उसका मन इस अभियोगमें किसी तरह उसका साथ नहीं दे रहा है, यह भी उससे छिपा नहीं रहा।" यह दो तरहका भाव ही तो अचलाके जीवनकी ट्रेजेडी है। उसने जब महिमको पाया है, तब सुरेशके लिए अलक्ष्य रूपसे उसके हृदयमें आसन प्रस्तुत रहा है और जब सुरेशको अपनी देह दी है, तब उसका मन महिमके लिए प्यासा हो उठा है। वह जब महिमको लेकर वायुपरिवर्तनके लिए जानेको तैयार होने लगी, तब सुरेशके लिए उसका मन अत्यन्त व्यग्र हो उठा। सुरेशको देखकर उसकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये और उसने उससे साथ चलनेके लिए आग्रहके साथ अनुरोध किया। इसके बाद सुरेशने यद्यपि उसे उसके पतिसे छुड़ा दिया तथापि वह सुरेशको नहीं छोड़ सकी। उसी विश्वासघातक, पर-स्त्री-लोलुप, नास्तिक, कापुरुषको सेवा करके बचा लिया और उसकी स्त्री होनेके मिथ्या गौरवका सहारा लेकर ही उसने नये सिरेसे जीवन-यात्रा शुरू कर दी। अगर उसके मनमें छिपे तौरपर सुरेशके लिए सच्ची ममताका अस्तित्व न होता, तो वह एक मिथ्या नामके गौरवका सहारा लेकर इस तरह तिल-तिल करके अपनेको न जला सकती। सौदामिनीको लेकर नरेन्द्रनाथ भागा अवश्य, किन्तु सौदामिनी उसके साथ नहीं रह सकी। इसमें पतिके प्रति आसक्ति तो थी ही, किन्तु उसकी अपेक्षा कहीं अधिक था नरेन्द्रनाथके प्रति सच्ची आसक्तिका अभाव। अचलाकी समस्या इससे कहीं गुरुतर थी। कारण, उसके मनमें अज्ञात रूपसे सुरेशके लिए एक प्रकारकी ममता पैदा हो गई थी। अपने मनके इस दुर्ज्ञेय रहस्यको अचला खुद भी अच्छी तरह नहीं समझ पाई और यही उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य हुआ। उसने अपने प्रति यह कहकर क्षोभ प्रकट किया है कि "जिसे उसने किसी दिन कभी प्यार नहीं किया, वही उसका प्राणाधिक है, क्या केवल इसी मिथ्याको ही सबने जान पाया?"

किसी दिन कभी प्यार नहीं किया !—किन्तु इस सुरेशकी मृत्युकी कल्पना करके ही वह सिहर उठी है। 'सुरेश अब उसे प्यार नहीं करता,' यह बात सुननेके बाद उसे अपना जीवन शून्य या खोखला ही जान पड़ा है। 'सुरेश नहीं है; वह अकेली है'—यह अकेलापन कितना बड़ा है, कैसा अपार है—यह खयाल बिजलीके वेगसे उसके मनके भीतर चमक गया। उसने रुँधे हुए गलेको प्राणपणसे साफ करके कहा—"अब क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते...किसी समय मैं तुमको प्यार करती थी।" अचलाके जीवनमें एक मूलभूत असंगति थी। सुरेशका प्यार उसकी विडम्बना था, उसकी सम्पत्ति था, उसका संबल था। इसमें अगौरव रह सकता है; किन्तु इसमें मिथ्याकी प्रतारणा नहीं है। नारी-हृदयका जो यह विरोध और असंगति है, उसके विश्लेषणमें ही शरत्चन्द्रकी विशेषता है।

'देना-पावना' की षोड़शीमें भी वही द्वन्द्व, वही विरोध और वही एक व्यर्थता है। एक सौ रुपयोंके लोभसे अल्काके साथ ब्याह करके जीवानन्द नवपरिणीता स्त्रीको त्याग करके ब्याहकी रातको ही भाग खड़ा हुआ। इसके बाद बीजगाँवके जमींदारकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होकर उसने बड़ी ही उच्छृंखलताके साथ जीवन-यात्रा शुरू कर दी। प्रजाको सताना, अविरत मद्यपान और स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करना—यही उसका काम हो गया। संसारकी ऐसी विचित्र गति है कि उसीके इलाकेमें चण्डीगढ़ गाँवकी चण्डी देवीके मंदिरकी भैरवी हुई वही अल्का, जिसे वह एक दिन ब्याहकर छोड़ भागा था। भैरवी होनेके बाद अल्काका नाम षोड़शी हो गया। जीवानन्द षोड़शीके पिताको सताकर रुपए पानेकी चेष्टा कर रहा था और इसी अन्यायके विरुद्ध प्रतिवाद करनेके लिए षोड़शी जीवानन्दके पास गई। वहीं जीवानन्दने उससे पहले चाहे रुपए और उसके बाद चाहा उसकी देहपर अधिकार। उसी रातको जीवानन्द खूब असुस्थ हो पड़ा। लाचार होकर उसने षोड़शीको एक सूनी कोठरीमें बन्द कर रखनेका हुक्म दे दिया, कहा—कल इसके सतीपनेका विचार होगा। दूसरे दिन प्रातःकाल एक अद्भुत घटना हो गई। षोड़शीके बापके कहनेसे मैजिस्ट्रेट साहब, बलपूर्वक पकड़ लाकर रोक रखनेके अभियोगकी जाँच करनेके लिए, वहीं आ पहुँचे। षोड़शी चाहती तो उस

समय आसानीसे इस नृशंस पशुसे बदला ले सकती थी। किन्तु मैजिस्ट्रेटके प्रश्नके उत्तरमें उसने केवल यही कहा कि वह अपनी इच्छासे जीवानन्दके डेरेपर आई है और अपनी खुशीसे यहाँ रात भर रही है।

उसका यह व्यवहार जैसा अकस्मिक है वैसा ही अद्भुत। जिस पाजीने उसे ब्याहकर त्याग दिया, नारीके आँसुओंसे जिसके मनमें करुणा नहीं उत्पन्न होती, पति-पुत्रवतीके सतीत्व धर्मका नाश करनेमें जिसे कुछ भी संकोच नहीं होता, जिसने उसे नारीकी चरम लांछनाके लिए कैद कर रखा था, उसे बचानेकी लालसा उसके मनमें क्यों जगी? और क्या केवल इतना ही? यह तो केवल निःस्वार्थ परोपकार नहीं है। यह मिथ्या स्वीकारोक्ति है—यह उसी घड़ी उसे बदनामीकी बहुत गहरी दलदलमें डुबा देगी, सभी जानेंगे कि चण्डी देवीकी यह भैरवी कुलटा है, धर्म त्यागनेवाली है। किन्तु षोड़शीके लिए इसके सिवा और कोई उपाय ही न था। बहुत दिनोंकी सोई हुई अलका उस दिन जाग उठी थी। वह संन्यासिनी है, किन्तु नारी है। उसके निपीड़ित जीवनका रूखापन, उसकी उजाड़ी हुई प्रवृत्तिकी शून्यता और शुष्कताकी आड़में यह रमणीहृदय एकान्तमें आत्मरक्षा कर रहा था। धीरे-धीरे आदान-प्रदानके द्वारा उसके हृदयमें प्रेमका संचार होनेकी कोई संभावना नहीं थी। कारण, वह संसार-त्यागिनी संन्यासिनी है। समस्त संभोगोंसे उसने जोर करके अपनेको अलग कर लिया है। इसीसे उसके हृदयकी वृत्ति पुरानी स्मृतियोंके मन्थनसे जाग उठी। वह हिन्दू-रमणी है और भैरवी होनेकी एक शर्त यह थी कि उसे सधवा होना चाहिए। अतएव संन्यासिनी होने पर भी अलक्ष्य भावसे पतिके प्रति उसके मनमें एक आकर्षण रहेगा ही और इस अर्धलुप्त सम्बन्धकी पुकारसे ही उस दिन उसने अपनी हानि करके अपने पतिको बचाया। संन्यासिनीके जीवनमें प्रेमका अवकाश नहीं रह सकता, किन्तु सधवा भैरवीके मनसे पतिकी स्मृति कैसे दूर हो?

षोड़शीके झूठ बोलनेके भीतर ये दोनों परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। वह हिन्दू स्त्री है। इसीसे पतिके अमंगलकी कामना वह कभी नहीं कर सकती। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जिस पतिका संग उसे नसीब नहीं हुआ, जो पहली ही रातमें उसे छोड़कर चला गया, जिसने अपनी उच्छृंखल असंयत वृत्तिको चरितार्थ

करनेके लिए उसे कोठरीमें बन्द कर रखा था, उस पतिके प्रति उसके मनमें घृणा और वितृष्णा होना ही स्वाभाविक है। उस लम्पटका उपकार करनेकी इच्छा होनेका कोई संगत कारण नहीं रह सकता। किन्तु मानव-मनकी गति विचित्र है। जिन्होंने मनुष्य-चरित्रकी आलोचना की है, वे कहते हैं कि यौन आकर्षण बिल्कुल ही व्यक्ति-निरपेक्ष (Impersonal) होता है। यह आकर्षण घृणा, वितृष्णा, डाह आदि सभी वृत्तियोंके साथ मिलकर रह सकता है। प्रत्येकके जीवनकी गति एक खास दायरेमें सीमा-बद्ध है। इसलिए कल्पलोकका चित्र भी पार्थिव जगतके अनुरूप होता है। अलका और अन्नदा दीदी—ये दोनों हिंदू-स्त्री हैं। पतिके साथ इनका जो सम्बन्ध हुआ, उसे इन्होंने भगवानका दिया बन्धन मानकर ही ग्रहण किया। अतएव इनकी प्रेमकी आकांक्षा पतिसे ही लिपटी रहेगी—वह पति चाहे जितना घृणाके योग्य हो, चाहे जैसा दुश्चरित्र हो। इसके अलावा षोड़शी सब कुछ त्याग देनेवाली संन्यासिनी है। अतएव त्याग करनेकी, छोड़ देनेकी प्रवृत्तिका अनुशीलन उसने धर्मकी तरह किया है। अपमानित, उपद्रव-पीड़ित, क्षतविक्षत नारी-हृदयका एक चरम वैराग्य होता है, जिसका परिचय हमने 'गृह-दाह' के उपसंहारमें अचलामें पाया है। वही वैराग्य था संन्यासिनी षोड़शीके हृदयमें। उसने जीवानन्दका स्पर्श किया कि उसीके साथ उसके भैरवी-जीवनकी भी समाप्ति हो गई। निजन कोठेमें बंद रहकर उसने जीवानन्दकी बात सोची, अपनी बात सोची, पिता तारादासकी बात सोची। सब कुछ विचारकर देखा, किन्तु उसका कोई कूल-किनारा नहीं पाया। उसने जिधर नजर डाली, उसे केवल घोर अन्धकार ही देख पड़ा; ऐसा अन्धकार, जिसके रूप नहीं है, गति नहीं है, प्रकृति नहीं है। दूसरे दिन उसी अत्यन्त निराशाके बीच—जिसमें आश्वासनका नाम-निशान न था—मैजिस्ट्रेटने जब उससे प्रश्न किया, उस समय उसकी बदला लेनेकी प्रवृत्ति बिलकुल ही गायब हो गई। उस न दूर किये जा सकनेवाले अन्धकारको भेदकर प्रतिहिंसा कौन-से प्रकाशका पता देगी? इस चरम वैराग्यके दिन उसने लाभ-हानिको मिलाकर—लेखा-जोखा करके—नहीं देखा। उसने अपना खयाल बिलंकुल ही छोड़ दिया और जीवानन्दको पूरी तौरसे बचा लिया। उसने स्वयं जीवानन्दसे कहा था—"मेरे जो गुरु हैं, वह अपने हाथमें कुछ

बचाकर दान नहीं करते। इससे आज उन्हींके चरणोंमें इस तरह अपनी बलि देनेमें भी मुझे कोई रुकावट नहीं हुई।"

ये जो दो परस्परविरोधी शक्तियाँ हैं, जिन्होंने मिलकर उसे इस चरम वैराग्यकी राहमें ठेला था, उसका संघर्ष उसके सारे जीवन भर चलता रहा। इसके बाद उसके साथ घनिष्ठ भावसे हैमवती और उसके स्वामी निर्मलका परिचय हुआ। उसने उनकी शान्त, सुनिर्मल जीवन-यात्राका चित्र देखा। जो नारी उसके भीतर गहरी नींदमें सोई हुई थी, वह आज एकाएक आहट पाकर अँगड़ाई लेकर जाग उठी और उसे प्रबल भावसे संसारके सुख-दुःखमय साधारण मार्गमें खींचने लगी। "इतने दिन उसने जीवनको जिस भावसे पाया उसी भावसे ग्रहण किया। भाग्यनिर्दिष्ट उसी खाईके भीतरसे ही षोड़शीके जीवनके बीस वर्ष बहते चले गये हैं। इसे उसने भैरवीका जीवन मानकर ही विना किसी संशयके ग्रहण किया है; एक दिनके लिए भी उसने इसे अपना जीवन नहीं सोचा। चण्डीदेवीकी पुजारिनके रूपमें वह निकट और दूरके बहुत-से गाँवों और जनपदोंके अगणित नर-नारियोंके साथ सुपरिचित है। कितनी ही बेशुमार स्त्रियोंके—जिनमें कोई छोटी है, कोई बड़ी है और कोई हमजोली हैं—कितने ही प्रकारके सुख-दुःख, कितने ही प्रकारकी आशा-ओं, कितनी व्यर्थताओं और कितनी सुंदर आकाशकुसुम-सी असंभव कामनाओंकी वह मौन और निर्विकार साक्षी बनी हुई है! उन स्त्रियोंने देवीकी कृपा पानेके लिए कितने दिनोंसे अपनी कितनी ही बातें एकान्तमें धीमी आवाजसे उसके आगे कही हैं; उन्होंने अपने दुखी जीवनके अत्यन्त गुप्त अध्यायोंको निष्कपट भावसे उसकी आँखोंके सामने खोलकर रख दिया है और प्रसादकी—अनुग्रहकी भीख माँगी है। यह सब उसकी नजरमें पड़ा है, केवल यही नहीं नजरमें पड़ा कि स्त्री-हृदयके किस अन्तस्तलको भेदकर इन सब करुण अभावों और अनुयोगोंका स्वर उठकर उसके कानोंमें पहुँचा है।...षोड़शीने कभी किसी दिन दूसरोंके साथ तुलना करके अपने जीवनको नहीं देखा। उसकी आलोचना करनेकी बात भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। तो भी उसी मनके भीतर गृहिणीपनेकी सब जिम्मेदारियों, सारे बोझ, जननीके सब कर्त्तव्य, सारी चिन्ताओंको जैसे कोई न जाने कब, बहुत निपुण हाथोंसे सम्पूर्ण रूपमें सजाकर रख गया है। इसीसे कुछ

न सीखकर भी वह हैमवतीके सब कामोंको उसीकी तरह निपुणताके साथ कर सकती है—ऐसा उसे जान पड़ा।"

अपने पतिको उसने स्पर्श किया और उसीके साथ उसके संन्यासिनी-जीवनकी समाप्ति हो गई। उसके पतिने अपने उच्छृंखल जीवनको छोड़कर उसके हाथोंमें अपनेको पूर्ण रूपसे समर्पण कर दिया। जीवानन्दके मुखसे अलका नामकी पुकार उसके सारे जीवनको मथकर उसके मर्मस्थलमें प्रवेश कर गई। जीवानन्द इस बातको समझ गया। इसीसे उसने षोड़शीसे कहा—"तुम्हारा जोर मैं जानता हूँ। पुलिस-दलसे लेकर मैजिस्ट्रेट साहब तक एक दिन उसका नमूना देख गये हैं। तुम्हारी मा एक दिन तुम्हें मेरे हाथमें सौंप गई हैं, यह अस्वीकार करना तुम्हारे वशकी बात नहीं है—इतना साहस तुममें नहीं है।" हेम और निर्मलके मधुर दाम्पत्य जीवनका उल्लेख करके उसने आप ही कहा है—"यह जो चण्डीगढ़की भैरवीका पद है, जिसे बटा लेनेके लोभसे आप लोगोंमें नोंच-खसोट चल रही है, और जिसके लिए आप लोगोंने देश भरमें कलंक फैला दिया है, उसे जो मैं आज पुराने जीर्ण वस्त्रकी तरह त्याग किये जा रही हूँ, इसकी शिक्षा मैंने कहाँ पाई, आप जानते हैं? इसकी शिक्षा मैंने इसी जगह पाई है। नारीके लिए यह कितनी बड़ी प्रवंचना है, यह मैंने उन लोगोंको देखकर ही समझ पाया है।" जीवानन्दके विरुद्ध उसने किसानोंको उत्तेजित किया है—भड़काया है; किन्तु इससे जीवानन्दकी क्षति हो सकती है, यह बात मनमें आते ही उसका मुखमण्डल राखकी तरह सफेद हो गया है।

किन्तु इतना करके भी, जीवानन्दकी स्त्री होकर वह संसारमें प्रवेश नहीं कर सकी; क्योंकि वह सर्वत्यागिनी संन्यासिनी है। अलकाको जो प्रयोजन था, वह षोड़शीको नहीं है। जो प्रवृत्ति एक बार उखाड़ डाली गई है, वह फिर संजीवित न हो सकेगी—जो यौवन निरुद्ध हो गया है उसे कौन लौटावेगा? जीवानन्दने व्याकुल होकर प्रश्न किया—"संन्यासिनीके क्या सुख-दुःख नहीं है? पृथ्वीमें ऐसा क्या कुछ भी नहीं है, जिससे वह खुश हो?" षोड़शीने इसके उत्तरमें कहा—"लेकिन वह तो आपके हाथमें नहीं है।"

चण्डीगढ़से बिदा होते समय भी षोड़शीने फिर जीवानन्दसे कहा—"मैं संन्यासिनी हूँ। पृथ्वीपर स्त्रियोंकी कमी नहीं है। लेकिन इसके भीतर तुम

मुझे क्यों लपेटना चाहते हो ?" इस तरह दो परस्परविरोधी शक्तियोंके द्वन्द्वने षोड़शीके जीवनको भर रक्खा है। यह सच है कि बाहरकी घटनाके द्वारा यह परिपुष्ट हुआ है; किन्तु यह बिलकुल ही षोड़शीके हृदयकी चीज है। शरत्चन्द्रने यह भी दिखाया है कि बाहरसे इसकी मीमांसा या निर्णय करनेकी चेष्टा कितनी भ्रान्त है। षोड़शीके मनकी बात न समझकर निर्मल उसकी सहायता करने आया और उसकी वह चेष्टा आप ही आप धूलमें मिल गई। बैरिस्टर साहबकी यह अर्थहीन अनावश्यक चेष्टा इस कहानीकी एकमात्र कामेडी है। जनार्दन राय, शिरोमणि आदिने षोड़शीको वहाँसे निकालकर भगा देनेकी बड़ी कोशिश की। खूब हलचल मची। किन्तु षोड़शीकी यथार्थ हार उसके अपने मनसे ही हुई। उन लोगोंकी सारी चेष्टा केवल एक बड़े भारी तमाशेके रूपमें बदल गई। षोड़शीके जीवनकी सारी व्यर्थता उसके अपने हृदयसे ही आई, जहाँ संसारके लिए उन्मुख रमणीकी आकांक्षा और संन्यासिनीके वैराग्यके बीच एक संघर्ष चल रहा था। इन दोनों विरुद्ध शक्तियोंने एक जगह मिलकर जीवानन्दको बचा लिया और इन्हीं दोनों शक्तियोंके फिर मिलनेपर जीवानन्द षोड़शीका हाथ पकड़कर नई यात्राके लिए आगे बढ़ा।

शरत्चन्द्रकी अधिकांश प्रेम-कहानियोंके मूलमें एक व्यर्थता, एक अतृप्ति मौजूद है। सौदामिनीने अपने पतिके चरणोंमें आश्रय पाया था; कुसुम वृन्दावनसे मिली थी; षोड़शीका हाथ पकड़कर जीवानन्दने अपना नया जीवन आरम्भ किया था; किन्तु इन सब मिलनोंमें परिपूर्ण आनन्द नहीं है। जिसे हैपी एंडिंग (Happy ending) या सुखका मिलन कहा जाता है, वह केवल 'दत्ता', 'चन्द्रनाथ', 'नव विधान' और 'परिणीता' के उपसंहारमें हमें मिलता है। ये उपन्यास शरत्चन्द्रकी अन्यान्य रचनाओंसे कुछ भिन्न हैं। 'परिणीता' की कथाका पहले उल्लेख किया जा चुका है। अब 'दत्ता' की आलोचना करनी होगी। शरत्चन्द्रके अनेक उपन्यासोंके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। किन्तु 'दत्ता' की श्रेष्ठताके बारेमें सभीका एक मत है। इसने लगभग सभी श्रेणियोंके पाठकोंको आनन्द दिया है। 'श्रीकान्त', 'गृहदाह' आदि उपन्यासोंकी आख्यायिकाके साथ इसके कथाभागका सादृश्य नहीं है; किन्तु इसकी नायिकाके मनमें भी वही एक ही प्रकारका द्वन्द्व चलता रहा है,

यद्यपि इस द्वन्द्वमें सामाजिक नीतिका कोई प्रश्न या समस्या नहीं है। विजया नरेन्द्रनाथको चाहती है और अपने प्रेमसे उसको घेर लेना चाहती है। किन्तु अनेक कारणोंसे वह किसी तरह भी इस प्रेमको अच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकती। एक तो सारे संसारको भूला हुआ भोला नरेन्द्रनाथ कुछ समझता नहीं है। इसके सिवा बहुत-सी गड़बड़ी बाहरसे आई है। रासबिहारी और विलासबिहारीके नीच चरित्रसे वह अत्यन्त घृणा करती है। किन्तु भाग्यचक्रके फेरसे रासबिहारी है उसका अभिभावक और विलासबिहारी होगा उसका पति। इन दोनोंकी बातोंमें आकर, इच्छा न रहनेपर भी, उसने नरेन्द्रनाथको गृह-हीन कर दिया। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है कि खालिस बाहरी शक्तिके साथ व्यक्तिके द्वन्द्व या संघर्षका चित्र शरत्चन्द्रने कहीं नहीं चित्रित किया। उनके उपन्यासोंमें बाहरी शक्तिने रूप ग्रहण किया है मानवके मनमें। उसीसे 'दत्ता' में बाहरी शक्तिकी ताड़ना बिलकुल गौण है, मुख्य वस्तु है विजयाके मनका द्वन्द्व। वह नरेन्द्रनाथको समझाना चाहती है कि ऋणकी अदायगीके लिए जो उसकी सम्पत्ति ले ली है, सो और एक संकटमें पड़कर। उसने माइक्रोस्कोप खरीदना चाहा है, किन्तु इसके द्वारा उसने यही बात कहनी चाही है कि यद्यपि उसे माइक्रोस्कोपकी जरूरत नहीं है, पर वह इसकी मार्फत नरेन्द्रनाथके काम आकर अपनेको सार्थक कर लेना चाहती है। वह जो आप न खाकर नरेन्द्रनाथको खिलाना चाहती है, यह साधारण भद्रता या शिष्टाचार भी नहीं है, साधारण स्त्रीजातिका आचरण भी नहीं है। नरेन्द्रनाथके तृप्तिके साथ भोजन करनेमें ही उसके जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता है। एक बार उसने पराये घरमें नरेन्द्रनाथको देखकर भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया—जैसे उसे वह जानती-पहचानती ही नहीं। नरेन्द्रनाथ इस अवहेलाका कारण नहीं समझ सका। किन्तु विजयाने इस प्रकार यही कहना चाहा है कि यह अवज्ञा नहीं है, यह अवहेलना नहीं है; बल्कि नरेन्द्रनाथ जो उसकी अवहेला करके अन्य रमणीपर आसक्त हो रहा है, केवल उसीके विरुद्ध यह दर्पिता, अनादृताका अभियोग है। नरेन्द्रनाथने सब समझ पाने पर कहा था—"सचमुच ही अगर यह असंगत या गलत खयाल तुम्हारे मनमें आया था तो तुमने केवल एक बार हुक्म क्यों नहीं दे दिया?" किन्तु यही तो नारी-जीवनका चरम प्रश्न

और श्रेष्ठ माधुर्य है। हृदयके भीतर गुप्त प्रदेशमें जो आकांक्षा जाग उठती है, उसे वह किसी तरह मुँहसे प्रकट नहीं कर सकती—दुनिया भरका सारा संकोच, सारी लज्जा उसका गला पकड़ लेती है। विजयाके हृदयकी आकांक्षाका संघर्ष उसकी धर्म-बुद्धिके साथ नहीं है—उसकी नारीजनोचित लज्जा, संकोच और दर्पके साथ है। इसमें शक्तिकी छीज नहीं है—बाहरकी और भीतरकी सारी बाधाको पराजित करनेके कारण यह मिलन अपूर्व माधुर्य-रससे भर उठा है।

४—शरत्-साहित्यमें नारी

जननीका स्नेह

शरत्चन्द्रने प्रेमकी अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उन सब चित्रोंकी बात पहले की जा चुकी है। किन्तु इसके अलावा पारिवारिक जीवनके सुख-दुःखकी बातें भी उन्होंने लिखी हैं। जो सब क्रूर कौशलसे काम लेनेवाले धर्मध्वजी लोग सामाजिक और पारिवारिक जीवनमें विष घोल देते हैं, उनके चित्र शरत् बाबूने निपुणताके साथ अंकित किये हैं। बेनी घोषाल, रासबिहारी, जनार्दन राय, स्वर्णमंजरी, दिगंबरी, नयनतारा आदि कितने ही निष्ठुर, कपटी, निर्मम चरित्रोंकी उन्होंने सृष्टि की है। किन्तु इन्हींके पास उन्होंने और एक श्रेणीके नर-नारियोंकी सृष्टि की है, जिनके स्नेह और ममताकी कल्याणमयी किरणोंके पड़नेसे सारा संसार उज्ज्वल हो उठा है। दिगम्बरी नीच प्रकृतिकी और स्वार्थकी खोजमें रहनेवाली नारी है। उसके हृदयमें स्वेह और ममताका लेश नहीं है। किन्तु उसकी कन्या नारायणीके हृदयमें अपार स्नेह है। जनार्दन राय धनी जमींदार हैं। शिरोमणि उनसे भी अधिक दुनियादार ब्राह्मण पण्डित हैं। इन्हींके साथ चण्डी-गढ़में और एक आदमी रहते थे, जो जनार्दन रायकी तरह धनका गौरव तो नहीं कर सकते और शिरोमणिकी तरह वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण भी नहीं हैं। वह एक मुसलमान फकीर हैं। उनका मन बुद्धिसे उज्ज्वल है, स्नेह और करुणासे भरपूर है। रासबिहारी कपट और कूटबुद्धिकी प्रतिमूर्ति है। पर दयालके उतनी बुद्धि नहीं, किन्तु हृदय है। ग्राम-समाजके सारे कूड़े-कचरेका केन्द्र है बेनी घोषाल और अपने सारे माधुर्यका सुधा-कलश हाथमें लिये हुए हैं उसकी माता विश्वेश्वरी।

शरत्चन्द्रने रमणीकी प्रेमकी आकांक्षाको रूप दिया है; किन्तु इसके

साथ उन्होंने नारी-हृदयके वात्सल्यके भी बहुत-से चित्र खींचे हैं। इसमें भी उनकी विशेषता प्रकट हो उठी है। उन्होंने वात्सल्य रसके सहज साधारण चित्र अधिक नहीं अंकित किये। जननीका जो स्नेह बहुत-सी बाधाओं और विघ्नोंको नाँघकर प्रकट हुआ है, उसीको उन्होंने भाषा दी है। एक चीज प्रायः ही देखी जाती है। वह यह कि उनके श्रेष्ठ चित्रोंमें माताका स्नेह अपने गर्भसे उत्पन्न सन्तानके लिए उतना नहीं उमड़ा, जितना कुछ दूरका सम्बन्ध रखनेवाले पुत्रस्थानीय आत्मीयके लिए। नारायणी अपने पुत्र गोविन्दको प्यार न करती हो, यह बात नहीं है; किन्तु उसके चरित्रकी विशेषता यही है कि उसके लिए गोविन्द और राममें कोई भेद नहीं रहा। बेनी, रमेश और रमाके बीच दलबंदीका अभाव न था; किन्तु विश्वेश्वरीके हृदयमें इन सभीने बिना किसी विरोधके जगह पाई है। गोकुल भवानीकी सौतका बेटा है; किन्तु विमाता और सौतके बेटेमें स्नेहका बन्धन ऐसा सुदृढ़ था कि निमाई रायकी सुबुद्धि मिलकर भी उसे शिथिल न कर सकी। मँझली दीदी हेमांगिनीका मातृस्नेह उसकी निष्ठुर बड़ी जिठानीके अभागे भाईके ऊपर वर्षित हुआ है।

प्रणय-चित्रकी तरह इस मातृस्नेहके चित्रणमें भी श्रेष्ठ निपुणता उसी चित्रमें परिलक्षित हुई है, जिसमें अन्तर्निहित प्रवृत्तिसे बाधा उपस्थित हुई है। जहाँ बाहरकी शक्तिने मातृस्नेहमें बाधा डाली है, वहाँ मिथ्या संघर्षके साथ साथ एक मिथ्या उच्छ्वासकी भी सृष्टि है। अमूल्यधनको बिन्दो जैसे प्यार करती थी, अन्नपूर्णा भी वैसे ही प्यार करती थी। बिन्दो जानती थी, उसके जेठ देवतुल्य मनुष्य हैं, और बड़ी मालकिन (जिठानी) के साथ वह चाहे जितना झगड़ा करे, उनपर भी उसकी यथेष्ट श्रद्धा थी। इन लोगोंकी आर्थिक अवस्था पहले चाहे जो रही हो, कहानी जिस समय शुरू हुई है तबसे रुपए-पैसेकी कमीका कोई चिह्न नहीं देखा जाता। अतएव यथार्थ कलह और मनमेलीके लिए कोई अवकाश था, ऐसा नहीं जान पड़ता। अमूल्यधनकी शिक्षाके सम्बन्धमें एक मिथ्या संघर्ष इस बातको लेकर पैदा हुआ कि उसकी शिक्षाकी विधि-व्यवस्था कैसी हो, जिसमें आगे चलकर दस आदमी उसकी प्रशंसा करें—उसका सम्मान करें। अमूल्य धनकी शिक्षाके मामलेमें अन्नपूर्णा तटस्थ या लापर्वाह नहीं हो सकती। अथ च बिन्दोने उनपर यह अद्भुत अभियोग लगाकर कि वह

लड़केका सत्यानाश करने बैठी हैं, एक भारी झगड़ा ठान दिया। बिन्दो अत्यन्त तुनुक मिजाज है, जरामें रूठ जाती है। अतएव क्रुद्ध होने पर उसका आचरण अगर अस्वाभाविक-सा हो जाय तो इसमें विस्मित होनेकी कोई बात नहीं। किन्तु जिस साधारण कारणसे बिन्दो और अन्नपूर्णामें विच्छेद हो गया—लड़ाई हो गई, वह इतना तुच्छ था कि वह बिन्दोके लिए भी अस्वाभाविक जान पड़ता है। और चाहे जो हो, बिन्दो नासमझ नहीं थी। अतएव अमूल्य धनकी मा और अपने परम श्रद्धाभाजन जेठका अपमान करना उसके लिए बिलकुल ही असम्भव था। इस कहानीमें यथार्थ कलह और विच्छेदके लिए अवकाश नहीं है। इसीसे बिन्दोका मातृस्नेह जो बाधाको नाँघकर फूट उठा है, वह एकदम मिथ्या और बेबुनियाद है।

ताई विश्वेश्वरी रमा और रमेशके प्रति अपने मनमें जो स्नेह रखती थीं, उसमें थोड़ी-सी विशेषता है। बेनी उनका इकलौता बेटा है, और उसके लिए उनका मन सदा शंकित रहता है। रमेश कहीं बेनीका असम्मान करके उसे निमन्त्रित न करे, समाजके मुखियाके रूपमें उसे उसके योग्य आसन न दे, इस डरसे उन्होंने रमेशसे अनुरोध किया कि वह बेनी आदि समाजके मुखियोंसे कहकर अपने पिताकी तेरहींके श्राद्धकी व्यवस्था करे। रमेशने जब इस पर अपनी असम्मति जनाई, तब वह उसे रोककर कह उठीं—“लेकिन यह भी तो तुमको जानना चाहिए था रमेश, कि अपनी सन्तानके विरुद्ध मैं नहीं जा सकती।” रमाकी मौसी उनके घर आकर उन्हें हजारों कटु वचन कह गई। उन्होंने उसके जवाबमें कुछ नहीं कहा, इस ख्यालसे कि कहीं इस स्त्रीके मुखसे सबसे पहले उनके अपने बेटेके कलंककी बात ही न निकल पड़े। किन्तु रमा और रमेशके लिए इनका स्नेह अक्षय था। रमेशके साथ बेनीकी चिरन्तन शत्रुता थी और रमाके साथ भी उसका सच्चा सौहार्द नहीं था। इसीलिए बेनीकी मा होनेके कारण रमा और रमेशके साथ विश्वेश्वरीके स्वार्थका लगाव तो था ही नहीं, बल्कि विरोध था। किन्तु वह ग्राम-समाजकी सारी हीनता और संकीर्णतासे बहुत दूर थीं। इसीसे, रमेशके पिताके श्राद्धके मामलेमें रमेशकी कोई सहायता न कर सकेंगी—यह जानकर भी उन्होंने रमेशका सारा काम खुद कराया। रमाकी वह केवल माकी तरह ही

नहीं थीं, यथार्थमें मा थीं। रमेशके ऊँचे आदर्शकी मर्यादा वह समझती थीं। रमाके हृदयकी वेदनाका भी अनुभव करती थीं। किन्तु इस चित्रका एक प्रधान दोष है। वह यह कि विश्वेश्वरीमें मनुष्योचित दुर्बलता नहीं है। केवल एक बार उन्होंने रमेशको स्मरण करा दिया था कि वह वेनीकी मा हैं और वह पुत्रके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकतीं; किन्तु उनके किसी भी आचरणमें सांसारिक संकीर्णताका लेशमात्र नहीं देख पड़ता। उनके मनके भीतर किसी तरहका द्वन्द्व चल रहा है — ऐसा आभास भी कहीं नहीं है। आदर्श स्त्रीके लिए जो सब प्रकारसे वांछनीय है, उसे जैसे वे अनायास ही कर गई हैं। वह अशरीरी देवता जान पड़ती हैं, रक्त-मांसके बने मनुष्यकी कमजोरियोंसे वह परे हैं। शरत्चन्द्र प्रायः कभी आदर्श मनुष्यकी सृष्टि नहीं करते — कोई भी श्रेष्ठ वस्तुतांत्रिक या यथार्थवादी साहित्यिक नहीं करता। कारण, मनुष्यके जीवनका धर्म ही भ्रान्ति और असंगति है। इन्हें बाद देकर कोई श्रेष्ठ यथार्थ चित्र ही अंकित नहीं किया जा सकता। शरत्चन्द्रकी रचनाकी प्रधान विशेषता यही है कि उन्होंने नारी-हृदयकी दुर्बलताको अनन्त अक्षय सहानुभूतिके साथ समझा था। परन्तु विश्वेश्वरीके चित्तमें किसी दुर्बलताका आभास भी नहीं है। वह सभी सद्गुणोंकी प्रतिमूर्ति हैं। उनके आगे हम श्रद्धासे सिर नवाते हैं; किन्तु वैसी ममता उनके प्रति हमें नहीं होती। कारण, साथ-साथ यह बात भी मनमें आती है कि वह पृथ्वीसे बहुत ऊपर हैं; किसी स्वर्गकी रहनेवाली हैं; धरतीकी धूल इन्हें स्पर्श नहीं कर सकती।

'अरक्षणीया'में ज्ञानदाकी चाची खूब साधारण प्रकारके मनुष्योंमेंसे थी। विश्वेश्वरीके साथ उसकी तुलना ही नहीं हो सकती—वह काम करना नहीं पसन्द करती थी, उपन्यास-कहानी पढ़कर गपशप करके उसका सारा समय बीतता था। उसीके सामने उसकी बदनसीब देवरानी और उसकी कन्याके ऊपर जो निष्ठुर लांछना और अपमानकी प्रतिदिन वर्षा होती थी, उसके विरुद्ध उसने थोड़ी-सी भी आपत्ति नहीं की—उन बेचारियोंकी सुख-सुविधाके लिए उसने रत्ती भर क्लेश नहीं स्वीकार किया। उसके चरित्रमें महत्त्वका लेशमात्र नहीं है। किन्तु यह कामकाजमें कुण्ठ, स्वार्थत्यागमें अक्षम, आलसी औरत बिलकुल हृदयहीन नहीं थी। उसके भावी जामाता अतुलने निःसहाय ज्ञानदा और उसकी

माताके साथ जो नृशंस व्यवहार किया था, उसका प्रतिवाद उसीने किया। ज्ञानदाकी करुण प्रेम-भिक्षाको व्यंग्य करके अतुल कह उठा—"सुन लीं छोटी मौसी, इसकी बातें? कैसी घोर लज्जाकी बात है?" स्वर्णमंजरीने खनखनाती हुई आवाज़से कहा—"रत्तीभरकी लड़कीकी ये बातें! यह घोर कलिकाल है।" इन दोनों धूर्तोंके इस निर्लज्ज परिहासको व्यंग्य करके छोटी बहूने कहा—"घोर कलिकाल होनेहीसे तो बचाव है दीदी। नहीं तो और कोई काल होता तो माता पृथ्वी अबतक लज्जासे फट जातीं, अतुल।" स्वर्णमंजरीके अभागिन कुमारी ज्ञानदाको लज्जित अपमानित करनेपर जोर करके मुँहपर प्रतिवाद करनेका सत् साहस उसमें नहीं था, किन्तु छिपकर उसे सान्त्वना देनेकी चेष्टा उसने की है।

ज्ञानदाकी मौसी (पोढ़ाकाठ या जली लकड़ी) का चेहरा विकट था, और उससे भी अधिक विकट उनके उस मुखकी हँसी थी। उनमें किसी तरहकी शिक्षा और सभ्यताका लेश न था। लड़ाई-झगड़ा करनेमें वह असाधारण निपुण थीं। कोई कटु या रूढ़ बात उनके मुँहमें अटकती न थी। किन्तु उनकी विकट देहके भीतर फल्गुनदीकी * गुप्त धाराकी तरह स्नेहकी धारा सदा प्रवाहित रहती थी। अपने कपटी, नीच-हृदय स्वामीके आचरणका उसने तीव्र प्रतिवाद किया है; उसने असहाय विधवा और उससे भी बढ़कर असहाय उसकी कन्याको लांछना और अपमानसे बचानेकी चेष्टा की है। उसने ज्ञानदाकी शौकीनीका तिरस्कार अवश्य किया है; किन्तु इसी निरुपाय लड़कीकी चिकित्साके लिए अपना एक मात्र गहना गिरवी रख दिया है। उसकी हँसी विकट है, किन्तु उसके हृदयके भीतर दो-एक बूँद आँसू भी जमा थे जो उज्ज्वल, मधुर और पवित्र थे।

विश्वेश्वरीको अपने पुत्र बेनी घोषालकी नीचताके साथ जूझना पड़ता था। लेकिन वह ऐसी महत् थीं कि बेनी घोषालका घृणित स्वभाव उनके लिए कोई रुकावट या वाधा नहीं पैदा कर सका। नारायणीके बारेमें भी यही बात लागू होती है। उसकी अपनी मा उसे स्वार्थसिद्धिकी राहमें हर घड़ी ढकेलती थी। इसके अलावा उसका स्वामी श्यामलाल भी बुद्धिमान् और होशियार आदमी

* फल्गुनदी गयाजीमें है।

था। बैमातृ भाईके प्रति अविचार भले ही न करे, गले पड़कर सुविचार करनेकी इच्छा उसकी बिलकुल न थी। इधर राम खुद ऐसा उत्पाती लड़का है कि पूरे तौरपर उसका पक्ष लेना भी कठिन है। किन्तु नारायणीका स्नेह इन सब बाधा-विघ्नोंकी पर्वाह न करके उमड़ पड़ता है। रामके सारे ऊधमोंको उसने स्नेहके आवरणसे ढक रखा है; उसे कड़ी सजा देकर वह बारबार पछताई है; अपनी सगी माकी निर्ममतासे उसने अपने उस शिशु देवरको बचा रखा है। किन्तु अन्तमें रामने जब उसीको चोट पहुँचाकर खाटपर लिटा दिया, तब मौका पाकर श्यामलाल और दिगंबरीने रामको उससे अलग कर दिया। रामने खाया नहीं, यह जानकर रोग-शय्यामें पड़ी हुई नारायणी अपने मुँहमें पथ्य नहीं डाल सकी और अन्तको उसने अपने आप रसोई बनाकर रामको खिला-पिलाकर सारा झगड़ा मिटा लिया।

विश्वेश्वरी, नारायणी, हेमांगिनी आदिकी सारी बाधाएँ बाहरसे आई हैं। श्यामलाल और दिगम्बरीमें स्वार्थबुद्धि बहुत अधिक है। नारायणीको उसका फलका भी भोग करना पड़ा; किन्तु उसके मनमें उसका दाग नहीं पड़ा। बेनीके चरित्रकी नीचता विश्वेश्वरीको छू तक नहीं गई। किन्तु सिद्धेश्वरीके बारेमें यह बात लागू नहीं होती। यद्यपि उसे स्वार्थ खोजनेकी प्रेरणा बाहरसे मिली थी—नयनताराकी सलाहसे—तथापि उसका अपना मन भी विचलित हुआ था। "सिद्धेश्वरीमें एक बहुत बड़ा दोष था, वह यह कि उसके विश्वासमें दृढ़ता नहीं थी। आजकी दृढ़ निर्भरता कल साधारण कारणसे ही कदाचित् शिथिल हो सकती थी।" जिस शैलको उन्होंने पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, जिसकी बुद्धि, विचार और ईमानदारीके ऊपर वह जीवन भर भरोसा करती आई, उसी शैलपर उसे एकाएक सन्देह हुआ कि उसने उनका रुपया-पैसा हड़प कर ठग लिया है। इसीसे वह शैलको कटु बातें कहने लगीं, और शैल भी हालत समझकर उनका आश्रय छोड़कर चली गई। सिद्धेश्वरीके विश्वासकी रीढ़ अवश्य नहीं थी—वह ढुलमुल-यकीन जरूर थीं—किन्तु वह सहृदय थीं। स्वार्थबुद्धिकी आड़को तोड़कर मातृस्नेहका झरना उत्सारित हो उठा है। कन्हाई, पटल, उनकी माँ शैल – इन सभीके लिए उनमें अखण्ड ममता थी और वही ममता अपनी क्षणिक दुर्बुद्धिको नाँघकर या दबाकर उमड़ पड़ी है।

ऊपर जिनके बारेमें आलोचना की गई है, उनमें सिद्धेश्वरी, विश्वेश्वरी, बड़ी-बूढ़ी काकी-मा, बिन्दो, नारायणी, हेमांगिनी, जली लकड़ी ये सभी गृहस्थ घरकी बहुएँ हैं, संसारके साधारण पथपर चलनेवाली हैं। कुसुम और राजलक्ष्मीकी बात जुदी है। इनके जीवनकी गति असाधारण है और इनकी वात्सल्य-वृत्ति प्रणयकी आकांक्षाके साथ मिल जानेसे जटिल हो गई है। कुसुमने अपने स्वामी वृन्दावनके लगावसे अपनेको दूर रखा है। वृन्दावन सैकड़ों उपायोंका सहारा लेकर भी उसे अपने हाथमें नहीं कर सका। ऐसे ही समय बृन्दावन एक दिन चरनको लेकर उपस्थित हुआ और कुसुमके मनमें एक विश्वग्रासी क्षुधाका तूफान उठ खड़ा हुआ। जो सन्तान उसके पैदा नहीं हुई, उसके लिए उसका मातृ-हृदय उमड़ पड़ा। "यह मनोहर सुस्थ सबल शिशु उसका हो सकता था; किन्तु क्यों नहीं हुआ? किसने इसमें बाधा डाली? माताको सन्तानसे वंचित करनेका इतना बड़ा अधिकार संसारमें किसे है? चरणको वह जितना ही अपनी छातीके ऊपर अनुभव करने लगी, उतना ही उसे केवल यही जान पड़ने लगा कि उसके अपने धनको दूसरेने जबरदस्ती, अन्याय करके छीन लिया है।" वह स्त्री-सुलभ प्रेमकी आकांक्षाको दबानेके लिए प्राणपणसे चेष्टा करती थी, किन्तु सन्तानकी भूखको वह कैसे रोके? फिर इन दोनों ही आकांक्षाओंका लक्ष्य एक ही ओर है। जो उसके पेटसे पैदा नहीं हुआ, उस बच्चेके लिए जो स्नेह उसे असह्य पीड़ा दे रहा था, वही दुर्निवार वेगसे उसे ठेलकर उसी पतिके पास ले गया जिसे उसने इतने दिन अति कष्टसे दूर हटा रखा है। किसी किसी दार्शनिकने सन्तानकी लालसा और यौन-प्रवृत्ति नामकी दो स्वतन्त्र मौलिक वृत्तियोंको अलग अलग माना है। किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्यके हृदयमें, विशेष रूपसे स्त्रीके हृदयमें ये दो वृत्तियाँ अलग नहीं रह सकतीं। प्रेमकी परिणति सन्तानकी कामनामें है और सन्तानकी कामनाका मूल यौन-मिलनमें है। कुसुमके मनमें इन दोनों वृत्तियोंने एकत्र जागकर उसकी शिक्षा और अभिमानपर प्रहार किया। रवीन्द्रनाथने कहा है—इन वृत्तियोंका सम्मिलन भारतीय साहित्यकी मूल बात है। शकुन्तला और दुष्यन्तके प्रेमकी परिणति सर्वदमन (भरत) के जन्ममें हुई थी; शकुन्तलाके प्रत्याख्यानकी व्यर्थता इस परिपूर्णताके आगे गौण बात है।

मदन-दहन और पार्वती-उमाकी तपस्याको लीजिए—इसका लक्ष्य था कुमारका जन्म।

राजलक्ष्मी और श्रीकान्तके प्रेममें एक प्रधान विघ्न यह था कि उसमें कुमार-सम्भवकी सम्भावना न थी। राजलक्ष्मीके हृदयमें माता होनेके लिए एक बहुत बड़ी आकांक्षा थी। उस अपरितृप्तिकी दीनताके आगे उसका सारा ऐश्वर्य और धन बेकार था—उसका सारा जीवन व्यर्थ था। उसने आप ही कहा था कि बंकुके पिताके साथ ब्याह होनेके फलस्वरूप अगर वह सन्तानकी जननी होती और उसे भीख माँगकर भी खिलाती, तो इस बाईजी होनेसे कहीं अच्छा होता। हैमवतीके दाम्पत्य जीवनको देखकर षोड़शीने समझा था कि भैरवीके जीवनका 'त्याग' नारीके लिए कितना बड़ा झूठ है। राजलक्ष्मीने अभयाके परिपूर्ण प्रेमकी कहानी सुनकर अपने ऐश्वर्यकी निष्फलता और संयमके दैन्यको जान लिया। उसने पहले सोचा था कि श्रीकान्तकी सेवा करके, उसका संग पाकर ही उसका जीवन सार्थक होगा। क्रमशः उसने देखा कि श्रीकान्तके लिए उसका जो प्रेम है उसे सन्तानकी लालसासे जुदा करना होगा। श्रीकान्त उसके लिए सब कुछ त्याग करने पर भी मान-प्रतिष्ठा छोड़ नहीं सकेगा, और स्वयं उसे भी उसकी मान-मर्यादा, संस्कार और धर्म-बुद्धि रोकेगी। यह प्रेम महत् हो सकता है, किन्तु इसमें तृप्ति नहीं है, परिणति या परिणाम नहीं है। अथ च आकांक्षाकी निवृत्ति नहीं है। इसीसे समस्याका भी निराकरण नहीं हो सकता। श्रीकान्तका मन यह बात सोचकर कण्टकित हो उठा है, "आज उसके परिणत यौवनके बहुत गहरे तलसे जो यह मातृत्व सहसा जाग उठा है, नींदसे तुरन्त जागकर उठे हुए कुम्भकर्णकी तरह उसकी अपरिमित क्षुधाका आहार उसे कहाँ मिलेगा? उसके अपनी सन्तान रहने पर जो सहज और स्वाभाविक हो उठ सकती थी, वह समस्या इस समय उसीके अभावमें अत्यन्त जटिल हो उठी है। उस दिन पटनेमें उसके जिस मातृरूपको देखकर मैं मुग्ध अभिभूत हो गया था, आज उसके उसी मातृरूपको स्मरण करके अत्यन्त व्यथाके साथ केवल यही सोचने लगा कि इतनी बड़ी आग फूँक मारकर बुझाई नहीं जा सकती, इसी लिए आज पराये लड़केको अपना लड़का मानकर बच्चोंके-से खिलवाड़से राज-

लक्ष्मीके हृदयकी प्यास किसी तरह नहीं मिटेगी। इसीसे आज एकमात्र बंकु ही उसके लिए यथेष्ट नहीं है; आज दुनिया भरके जितने लड़के हैं, उन सभीके सुख-दुःख ही उसके हृदयको मथते हैं।" इससे कठिन और प्रश्न नहीं है, इससे बढ़कर ट्रेजेडी भी नहीं है। परिपूर्ण संभोगकी सामग्री हाथके पास है, किन्तु उसके उपभोगकी सामर्थ्य नहीं है। माताकी भूख है, किन्तु उसकी परितृप्तिकी आशा नहीं है। शकुन्तला और पार्वतीका जीवन जैसे सफल प्रेमका चरम आदर्श है, राजलक्ष्मी भी वैसे ही रमणी-जीवनकी व्यर्थताका चूड़ान्त निदर्शन है।

अब तक मातृस्नेहकी जिन सब कहानियोंके बारेमें आलोचना की गई है, उनकी एक विशेषता यह है कि यह मातृस्नेह उमड़ा है प्रायः निःसन्तान स्त्रीमें अथवा जिसके लिए यह स्नेहरस झरा है वह सन्तानस्थानीय होनेपर भी सन्तान नहीं है। माताके अपनी सन्तानके लिए स्नेहके जो सब चित्र हैं, उनमें दुर्गामणि और ज्ञानदाकी बात सबसे पहले याद आवेगी। नाना प्रकारके उत्पीड़नोंसे मातृस्नेह कैसा विषाक्त हो जाता है, इसका तीव्र विवरण इस कहानीमें दिया गया है। ज्ञानदा दुर्गामणिका एकमात्र सहारा थी, दुःखकी गृहस्थीमें आशा और आनन्दका झरना थी। किन्तु हिन्दू समाजमें अनूढा लड़कीका असहाय माताके ऊपर ऐसा असह्य दारुण बोझ है कि सन्तान-स्नेहका सारा माधुर्य उससे नष्ट हो जाता है। दुर्गामणिकी गरीबी, समाजकी ओरसे कलंकका भय, परलोकमें शान्तिकी आकांक्षा—इन सबने ही ज्ञानदाके साथ दुर्गामणिके सम्पर्कको कटु कर दिया है। वह सभी जगह असफल होकर केवल परलोककी ओर दृष्टि रखकर अपनी एकमात्र कन्याको एक बूढ़ेके हाथमें सौंपनेको तैयार हुई और उसका दुःसह अपमान तक उन्होंने किया। यह चित्र इस तथ्यका ज्वलन्त निदर्शन है कि समाज और संस्कारका उत्पीड़न स्वाभाविक प्रवृत्तिको भी विकृत कर डालता है। ग्रन्थकारने यह कहानी कहींपर हल्की या कोमल नहीं बनाई है, इसका सारा विष तिलतिल करके जमा किया है। अनुभूतिकी तीव्रता और अभिव्यक्तिकी अकुण्ठित यथार्थतामें यह चित्र बेजोड़ है। इस सम्बन्धमें डाक्टर श्रीकुमार वन्द्योपाध्यायका मत उल्लेखके योग्य है। वह लिखते हैं – " 'अरक्षणीया' में ज्ञानदाका अपमान असहनीयताकी चरम सीमामें तभी पहुँचता है, जब उसकी

स्नेहशीला माता तक भ्रान्त संस्कारके आगे अपने स्वाभाविक अपत्य-स्नेहको विसर्जन करके इस विश्वव्यापी उत्पीड़नके केन्द्रस्थलमें जाकर खड़ी होती है। समाजका क्रूरतम निर्यातन वहींपर है, जहाँ उसके जहरीले प्रभावसे माताका स्नेह तक निष्ठुर जिघांसामें बदल जाता है। स्वर्णमयीकी की हुई निष्ठुर लांछना भर्त्सना किसी तरह सही भी जा सकती थी, किन्तु नरकके भयसे डरी हुई दुर्गामणिके कठिन अनुयोग और कठिनतर चरण-प्रहारने धैर्यके बन्धनको बिल्कुल काट डाला।"

५-शरत्-साहित्यमें पुरुष

शरत्चन्द्रने जो नारी-चरित्र अंकित किये हैं, उनका प्रधान लक्षण यह है कि प्रचलित आदर्शसे विचार किये जानेपर उनमेंसे बहुतोंको सती नहीं कहा जा सकता। राजलक्ष्मी, अभया, सावित्री, रमा, पार्वती, माधवी इन सबका प्रेम समाजकी दृष्टिमें अवैध है और ये स्वयं भी इस बारेमें सचेत हैं। अभया और कमलने समाजकी पर्वा नहीं की: किन्तु और सभीने अनुभव किया है कि उनकी दुर्बल प्रणयकी आकांक्षा केवल सामाजिक विचारसे हेय ही नहीं, धर्म-विरुद्ध भी है। अन्नदा दीदी सतीकुल-चूड़ामणि हैं, पतिके लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया था; किन्तु उन्हें भी सबने कुलटा, गृहत्यागिनी जाना। प्रीतिहीन धर्म और क्षमाहीन समाजके विचारमें जो सब स्त्रियाँ कुलटा हैं, उनके हृदयमें जो दुर्निवार प्रेमाकांक्षा जाग उठती है, उसकी विशुद्धताका चित्र शरच्चन्द्रने खींचा है। पाप-पुण्यका जो मापदण्ड समाजने मान लिया है, उसकी संकीर्णता, विचार-मूढ़ता सिद्ध करना शरत्-साहित्यका एक विशेष उद्देश्य है।

शरत्-साहित्यमें नारीकी प्रधानताको सब लोग जानते हैं। उपन्यास-साहित्यमें उनकी प्रधान कीर्त्ति या उनका महत् कार्य यही है कि उन्होंने नारीको एक नई दृष्टिसे देखा है। उन्होंने देखा है कि नारीका श्रेष्ठ परिचय यह नहीं है कि वह सती-साध्वी है। उसका असल परिचय यह है कि वह नारी है। उसका धर्मबोध सजग है, उसका लोकनिन्दासे भय तीक्ष्ण है, वह समाजके अनुशासनमें नियंत्रित है, किन्तु इन सभीके ऊपर उसका दुर्बल हृदय छा गया है। शरत्साहि-त्यमें पुरुषोंका स्थान नारीकी अपेक्षा गौण है। अधिकांश उपन्यासोंमें नारी-चरित्रके विकासके लिए सहायक रूपसे पुरुषचरित्रकी अवतारणा हुई है। इन सब पुरुषोंकी स्वतन्त्र सत्ता न हो, यह बात नहीं है। तो भी जान पड़ता

है कि उनकी कहानी अलग स्वतंत्र रूपसे अगर लिखी जाती तो उनकी सृष्टि करनेवालेकी प्रतिभाको जगा नहीं सकती। उनमेंसे प्रत्येकने एक प्रखर व्यक्तित्व रखनेवाली रमणीके चित्तको उद्वेलित किया है, यही उन पुरुषोंके जीवनकी सबसे बड़ी बात है। अवश्य ही शरत्चन्द्रके पुरुष-चरित्रोंमें भी उनकी प्रतिभाकी विशेषताकी छाप है। पर संसारके विचारमें इन लोगोंमेंसे अनेक पुरुष ऊँचे स्थानको नहीं पा सके, सम्मान नहीं पा सके; किन्तु उनके अगौरवके भीतर या अगौरवकी आड़में जो व्यक्तित्व मौजूद है, वह श्रद्धाके योग्य है, जो हृदय मौजूद है, वह सहज ही दूसरोंको अपनी ओर आकृष्ट करता है। सांसारिक बुद्धि या होशियारीमें नीलाम्बर अपने भाई पीताम्बरकी अपेक्षा बहुत निकृष्ट है; अधिक यह कि वह गाँजा पीता था और किसी तरहका कोई लाभजनक काम या धन्धा नहीं करता था। अथ च उसके चरित्रमें जो महत्त्व था, वह भले मानुस कहे जानेवाले लोगोंमें नहीं पाया जाता। गोकुल और प्रियनाथ डाक्टरको बुद्धिमान् और विचक्षण आदमी नहीं कहा जा सकता; किन्तु उनकी निर्बुद्धिताकी आड़में उदारता और सत्याग्रहकी जो फल्गु धारा* निरन्तर बहती थी उसकी तुलना कहाँ है? शरत्साहित्यमें ये एक श्रेणीके नायक हैं। ये सभी सरल प्रकृतिके लोग हैं और दुनियाके लाभ-हानिके सम्बन्धमें वैसे सचेत नहीं हैं। किन्तु शरत्चन्द्रने और भी कई एक नायकोंके चरित्र अंकित किये हैं। वे केवल निष्कर्मा या निठल्ले ही नहीं हैं, उनका चरित्र भी कलंकसे लिप्त है। पहले ही देवदासका नाम याद आवेगा। प्रतापके साथ देवदासका अवस्थामें सादृश्य है। दोनों ही बाल्यप्रणयके अभिशाप द्वारा सताये गये हैं। किन्तु प्रतापकी कहानी चित्त-जयकी कहानी है। उसकी मृत्युमें संयमकी विजयकी घोषणा है। पर देवदासकी कहानी चित्तकी दुर्बलताकी कहानी है। उसमें असंयमका कलंक और पराजयकी ग्लानि मौजूद है। तो भी ग्रन्थकारने उसीको नायक बनाया है—उसके प्रति पाठककी प्रीति और सहानुभूति खींची है। 'चरित्रहीन' में ग्रंथकारने और भी साहस दिखाया है। उन्होंने उपन्यासका नाम सतीशको लक्ष्य करके रखा है। साधुसमाजमें, चरित्रवान् लोगोंकी मंडलीमें सतीशको जो कहा जायगा, उन्होंने भी उसे वही विशेषण दिया है। यहाँ असलमें

---

* गयामें फल्गुनदी है, जिसका पानी पत्थरकी रेतीके नीचे छिपा रहता है। रेती हटानेसे निकल आता है।—अनुवादक।

प्रचलित नीतिके ऊपर छिपा हुआ व्यंग है। देवदासके लिए शरत्बाबूने उपन्यासके अन्तमें कृपाकी भीख माँगी थी। किन्तु सतीशके सम्बन्धमें उनका वह संकोचका भाव नहीं है। वह जैसे जोर देकर कहना चाहते हैं कि प्रचलित नीति जिसको चरित्रहीन कहकर घृणा करेगी, वह मतकी उदारतामें, मनकी गहराईमें, अनुभूतिकी व्यापकतामें असाधारण है; यहाँ तक कि उपेन्द्र जैसा चरित्रवान् और महत् मनुष्य भी उसके आगे निष्प्रभ है।

हमने अन्य एक अध्यायमें दिखाया है कि शरत्साहित्यकी प्रधान विशेषता यही है कि उसके भीतर रमणी-हृदयमें आजन्मार्जित संस्कारों और उच्छ्वसित, दुरतिक्रम्य हृदयके आवेगोंमें निरन्तर गहरा संघर्ष चलता है। जिस पुरुषको लेकर इस संघर्षकी सृष्टि हुई है, उसके चरित्रकी विशेषताने भी इस संघर्षको पुष्ट ही किया है, उसे समाप्तिकी राहमें आगे नहीं बढ़ाया। शरत्साहित्यमें जो सब प्रेम-कहानियाँ हैं, उनके नायक अनुभूतिशील हैं, किन्तु उनमेंसे अनेक ही अन्यमनस्क या उदासीन हैं। वे नायिकाओंके मनकी बात नहीं समझते अथवा समझनेपर भी सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करना नहीं चाहते। देवदास पार्वतीके मनकी बात जानता था, पार्वतीने भी सारा संकोच त्यागकर उसके आगे आत्मनिवेदन किया; किन्तु देवदासने उसकी उपेक्षा की। अवश्य ही इस उपेक्षाके मूलमें भय था—अन्यमनस्कता या उदासीन भाव नहीं। अन्य-मनस्कता हदको पहुँच गई थी 'बड़ी दीदी' के सुरेन्द्रनाथमें, यद्यपि सुरेन्द्रनाथ-को ठीक उदासीन नहीं माना जा सकता। वह बड़ी दीदीके स्नेहकी आकांक्षा रखता है, केवल बड़ी दीदीके हृदयकी खबर नहीं रखता। और एक आदमीकी अन्यमनस्कताने अनेक ग्रंथियाँ पैदा कर दी थीं—वह है 'दत्ता' का नायक नरेन्द्रनाथ। विजयाके हृदयमें प्रणयकी आकांक्षा और स्त्रीसुलभ संकोचके बीच संघर्ष हुआ था। यह संघर्ष नरेन्द्रनाथकी अन्यमनस्कताके कारण ही इतना लम्बा हुआ और इतने समयतक चला। किन्तु यह संघर्ष ऐसा न था, जिसका अतिक्रमण न हो सके, जिसकी बाधा दूर न हो सके। इसीसे इसका अन्त विवाहके आनन्द-मिलनमें हुआ है।

शरत्चन्द्रकी नायिकाओंमें सावित्री सबसे अधिक आत्मत्यागकी भावना रखनेवाली है, इसलिए कविने सतीशकी सृष्टि अन्यमनस्क या उदासीन बनाकर

नहीं की। सतीश सब तरहसे सम्पूर्ण हृदयसे सावित्रीकी कामना करता है, तो भी उसे नहीं पाता। श्रीकान्तके लिए यह बात लागू नहीं होती। श्रीकान्तको राजलक्ष्मी पाना चाहती है अपने सम्पूर्ण मन और हृदयसे; किन्तु धर्म-विश्वास और मातृत्वका गौरव श्रीकान्तको दूर हटा देता है। शरत्चन्द्रने श्रीकान्तको भी अत्यन्त अनुभूतिशील हृदय, बहुत तीव्र स्वसम्मान-बोध और घुमक्कड़ मन दिया है। सुख-स्वच्छन्दताको, भोगको वह अनायास छोड़कर चला जा सकता है। प्रथम भागमें राजलक्ष्मीने अपने मातृत्वके सम्मानकी रक्षाके लिए श्रीकान्तको बिदा कर दिया था। किन्तु द्वितीय पर्वके आरंभमें ही हम देखते हैं कि राजलक्ष्मीके सारे ऐश्वर्यको पैरोंसे ठेलकर श्रीकान्त बर्माको चला गया। बर्मासे लौट आनेके बाद उन दोनोंका मिलन जरूर हुआ; किन्तु राजलक्ष्मीको संग लेकर प्रयाग जाना जब श्रीकान्तने अस्वीकार कर दिया तब राजलक्ष्मी जो काण्ड कर बैठी, उससे श्रीकान्तने समझा कि उनके सम्पर्कके बीच कहींपर असम्मानका बीज दबा हुआ है। इसीसे वह अम्लान मुखसे छोड़कर चला गया। गंगामाटीमें राजलक्ष्मी सुनन्दाके निकट खिसकी और श्रीकान्तका मन बर्मामें अभयाके लिए उड़ गया, उसने आफिस-कामके लिए लौट जानेकी बात सोची। राजलक्ष्मी निकली तीर्थदर्शनके लिए और श्रीकान्त चला गया सतीश भरद्वाजकी सद्गति करने। चतुर्थ पर्वके प्रारंभमें यह उदासीनता इस हदपर पहुँच गई कि श्रीकान्तने पूँटूसे ब्याह करनेका प्रस्ताव कर दिया। इसके बाद सारा व्यवधान मिट गया। श्रीकान्तका बर्मा जाना स्थगित रहा और राजलक्ष्मीकी उत्कट धर्मचर्चा ठंडी पड़ गई। यह अंश सबसे निकृष्ट है। कारण, इनके बीचका व्यवधान गायब हो गया, अथ च इनका प्रेम फूल-फलकर सार्थक नहीं हुआ। राजलक्ष्मीके कामका सहायक वज्रानंद है। अवकाशके समयमें उसने श्रीकान्तको असुस्थ कल्पना करके आदर-यत्नकी हद कर दी है। श्रीकान्तने भी जैसे अपना व्यक्तित्व खो दिया है—वह जैसे राजलक्ष्मीके अवसर-विनोदनका, मन बहलानेका खिलौना हो गया है। वह व्यक्तित्व, वह वैराग्य, वह घुमक्कड़पन, सभी जैसे लुप्त हो गया है।

गहरी अनुभूतिशीलताकी आड़में वैराग्य छिपा रहनेसे कैसे सुंदर चरित्रकी सृष्टि होती है, यह हम 'गृहदाह' उपन्यासमें देख पाते हैं। सुरेशका हृदय

केवल आवेगसे भरा हुआ ही नहीं है, वह भोग-लोलुप भी है। भोगका अर्थ वह खाली शारीरिक संभोग ही समझता है। वह आत्माको नहीं मानता, भगवान्पर उसे विश्वास नहीं है, वह पाप-पुण्यकी खोखली दोहाई नहीं देता। अचलाको जो उसने चाहा था, उसमें हृदय-विनिमयकी आकांक्षा थी; किन्तु उसके लिए उससे भी बढ़कर कामनाकी वस्तु अचलाकी देह थी। और, इस रमणीको पानेके लिए ऐसा कौन-सा काम था, जिसे करनेको वह तैयार न था। पहले ही उसने अपने मित्रके साथ विश्वासघात किया। उसके बाद अचलाके निकट अपनेको एकान्त भावसे समर्पण कर दिया। उसकी प्रवृत्ति जैसी उद्दाम उच्छृंखल है, उसका आत्मसमर्पण भी वैसा ही एकाग्र, अकुंठित है। इसके बाद उसने अपने बीमार बन्धुकी स्त्रीको चुराकर उसके साथ चरम विश्वासघात किया। डिहरी पहुँचकर अचलाको पाकर उसकी समझमें आया कि यह पाना सच्चे पानेसे कितनी दूर है। किन्तु उसका उच्छ्वसित प्रणय-निवेदन, परस्त्रीलुब्धता और विश्वासघातकताकी आड़में छिपा हुआ था एक वैरागी मन, जो सारी संभोग-लालसाको अनायास छोड़ जा सकता है, जो चरम पापके पंकमें डूबकर भी अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा कर सकता है। जब वह छात्र था, तब दो बार अपने प्राणोंकी पर्वाह न करके उसने महिमको बचाया था। फिर जब अचलाने उसे जवाब दे दिया, तब उसने प्लेगसे पीड़ितोंकी चिकित्सा करने औरोंके प्राण बचानेके लिए दूर चले जाकर अपनेको विपत्तिमें डाल दिया। यह केवल व्यर्थ प्रेमीकी आत्महत्याकी निष्फल चेष्टा न थी; इसमें साहस और परोपकारकी इच्छा भी थी और उसे वही दिखा सकता है, जिसका मन सभी पार्थिव कामनाओं और सुखोंकी चाह छोड़कर उनसे बहुत ऊपर रहता है। डिहरी स्टेशनपर उतरते ही उसने समझ लिया था कि अचलाको उसके पतिके पाससे छीन लानेकी चेष्टा वृथा है। इससे महिमको ठगा जा सकता है; किन्तु स्वयं उसे कुछ लाभ न होगा। इसीसे अचलाको उसी समय छुट्टी दे दी, कठिन बीमारीके बीच भी उसने अचलाको रोक रखना नहीं चाहा। जान पड़ता है, इस कठोर वैराग्यने ही अचलाके हृदयको क्षण भरके लिए उसकी ओर आकृष्ट किया और दोनोंने पति-पत्नीके रूपमें राम बाबूके घर आतिथ्य ग्रहण किया। वहाँ सुरेश अनेक उपायोंसे अपने हृदयकी अत्यन्त कातर प्रार्थना अचलाको जताने लगा और इनका यह कलुषित मिलन एक आँधी-पानीके दुर्योगकी रातको हद तक पहुँच गया, जिस दिन

उसने अचलाको सीमाहीन अन्धकारकी राहमें बढ़ा दिया। किन्तु उसके बाद ही सुरेशकी समझमें आ गया कि यह मिलन विच्छेदसे भी भयंकर है। यह आकांक्षितको पास न लाकर दूर ही हटा देता है। यह समझ पानेके फलस्वरूप उसका बैरागी मन फिर पुकार सुनकर जाग उठा। इतने दिन उसने यह चेष्टा की थी कि किस तरह अचला प्राप्त हो, अब वह यह चेष्टा करने लगा कि किस तरह वह अचलासे पीछा छुड़ावे। उसने बीमारों-पीड़ितोंकी सेवामें फिर अपनेको लगा दिया और इस सेवाकी मार्फत मृत्यु उसके पास उपस्थित हो गई। उस मृत्युको उसने बुलाया न था; वह भीरु कायर नहीं है। किन्तु अकुण्ठित चित्तसे आलिंगन किया — मृत्युको गले लगाया। कारण कामुक और परस्त्रीलुब्ध होनेपर भी उसके हृदयके अन्तस्तलमें एक चरम वैराग्यका भाव मौजूद था, जहाँ भोगकी लोलुपता पहुँच नहीं सकती। उसकी मृत्यु आत्महत्या नहीं, आत्मत्याग है। महमूदपुरमें जब अचलाने उसे रोगशय्यापर पड़ा पाया, उस समय वह निस्संग एकाकी था। यह अकेलापन केवल बाहरका ही नहीं, यह विशेष रूपसे अन्तरंगका था। पृथ्वीपरकी समस्त काम्य वस्तुओं और कामनाओंसे अपनेको उसने अलग कर लिया है। उसका धर्ममें आस्था न होना भी इसी कठिन निरालम्ब भावका एक अंग है। धर्म और परलोकपर विश्वास सभीका एक अवलम्बन होता है; निःसम्बल व्यक्तिका यही चरम सम्बल है। किन्तु इस आश्रयको भी, उसने ग्रहण नहीं किया। विशुद्ध वैराग्यके साथ, अत्यन्त निःसंग भावसे उसने उस मौतको गले लगाया, जिसके लिए उसने रत्तीभर भी कामना नहीं की थी।

'गृहदाह' उपन्यासका दूसरा नायक महिम दूसरी तरहका आदमी है। सुरेश बाहरसे असंयत, उच्छ्वासित प्रवृत्तिका दास है; किन्तु उसकी उच्छृंखल भोग-लोलुपताकी आड़में चरम वैराग्य मौजूद है। महिमके चरित्रका आवरण निर्विकार उदासीनतासे भरा है, किन्तु इस कठोर संयमके पीछे न झुकाई-जा सकनेवाली कर्त्तव्यपरायणता है। वह अचलाको प्यार करता है और उसका प्यार भी उसे मिला है; किन्तु इस प्यारके लिए वह कर्त्तव्य-पथसे तिलभर भी हटनेके लिए तैयार नहीं है। केवल यही नहीं, भीतर और बाहर वह बिल्कुल ही अकेला है। वह किसीको भी अपनी चिन्ता, अपनी कल्पनाका साथी नहीं

बना सकता। जीवनको वह भोग करना नहीं चाहता। उसका सम्बल उद्वेलित प्रवृत्ति नहीं, अविचलित धैर्य है। इस तरहके लोगोंपर श्रद्धा सहज ही की जा सकती है, प्यार भी किया जा सकता है; किन्तु उस प्यारको बनाये रखना बहुत कठिन होता है। कारण, प्यार आदान-प्रदानके रससे संजीवित रहता है। जो निर्विकार संयम कभी चंचल नहीं होता, जो गोपनता कभी प्रश्न नहीं करती, कभी प्रश्नका उत्तर नहीं देती, वह केवल सामाजिक जीवनमें नहीं चलती, इतना ही नहीं वह पीड़ा भी देती है। मृणालकी सहज प्रगल्भता और चंचलताके भीतर एक विद्रोहका सुर छिपा हुआ है। उसने सँझले दादाको प्रेम दिया है और उनसे स्नेह पाया है; किन्तु वह उनके हृदयमें प्रवेश नहीं कर सकी। विवाहके बाद अचला पतिके विरुद्ध क्यों विरूप हो रही है, यह समझनेकी चेष्टा महिमने नहीं की। समझने पर भी उसका कोई प्रतिकार करनेकी चेष्टा नहीं की। अथ च यह प्रतिकार करना उसके लिए कितना सहज था। सुरेशकी मृत्युके कुछ ही पहले और बादको उसने जो व्यवहार किया, उसमें भी यह शान्त निष्करुण भाव प्रकट हुआ है। उसने अचलाके मनकी बात समझनेकी चेष्टा नहीं की; उसे वहीं छोड़कर चला गया। इस आचरणकी कठोरता एक बार उसके मनमें उदित हुई थी, किन्तु वैसे ही उसने इस चिन्ताको दूर हटा दिया। महिम सहन कर सकता है, सामंजस्य नहीं कर सकता; ले सकता है, पर दे नहीं सकता।

कुसुमके पति वृन्दावनमें और सौदामिनीके पति घनश्याममें भी उदासीनताने निर्विकार सहनशीलताका रूप ले लिया है। उपन्यासके हिसाबसे गृहदाहकी अपेक्षा पण्डितजी और स्वामी बहुत निकृष्ट हैं। गृहदाहके नर-नारियोंके हृदयकी क्रिया-प्रतिक्रियामें जो विचित्रता और जटिलता है, वह कुसुम और सौदामिनीकी कहानीमें नहीं है। वृन्दावनके चरित्रका प्रधान गुण उसकी प्रशान्त सहनशीलता और क्षमाका स्वभाव है। उसके जीवनमें जो दुःख आया है, उसके लिए उसकी अपनी जिम्मेदारी बहुत कम है। अवस्थाके फेरसे और कुसुमकी न झुकाई जा सकनेवाली तेजस्विताके कारण उसे अनेक कष्ट सहने पड़े हैं। किन्तु उसका प्रशान्त गांभीर्य प्रायः कभी विचलित नहीं हुआ। वह अपने आदर्शसे नहीं डिगा। कुसुमको वह कभी जोर दिखाकर अवश्य नहीं ले गया।

कारण, उसके मनमें भी वही वैराग्य था, जो शरत्चन्द्रके नायकोंकी एक प्रधान विशेषता है। कुसुमके आनेसे वह खुश होता, किन्तु नहीं आई तो इसके लिए उसे मनमें कोई क्षोभ नहीं हुआ। चरनकी मृत्युशय्यापर जब कुसुम उपस्थित हुई, तब एक क्षणके लिए उसके प्रति वितृष्णाका संचार हुआ था, किन्तु फिर बहुत सहजमें ही वह भाव दूर हो गया। वृन्दावनके मनमें एक विराट् क्षमा- और उदारता थी, इसीसे चरनकी मृत्युके बाद कुसुमके साथ उसका परिपूर्ण मिलन हुआ। 'गृहदाह' में इस मिलनका एक क्षीण आभास मात्र है—झलक-भर है। सौदामिनीका पति था परम वैष्णव। वह अपनी तुलना वृक्षके साथ करता था—वह वृक्ष जो आँधी-पानीके उत्पात-उत्पीड़नको चुपचाप सह लेता है। उसकी दुःसह सहनशीलता सौदामिनीके क्षणिक पतनका एक दूसरा कारण है। फिर बादको उसकी असीम क्षमा-शीलताने ही सौदामिनीको चरम अधःपातसे बचा लिया। उसकी कहानीके साथ महिमकी कहानीका सादृश्य है; किन्तु ग्रन्थकारने उसका जो चित्र खींचा है वह अपूर्णांग है। महिम उसकी अपेक्षा कम क्षमाशील है; किन्तु महिमका चरित्र अनेक पहलुओंसे विचित्र उपायोंसे खिल उठा है—अतएव अधिक सत्य है।

प्रेम-कहानीके नायकोंमें जो निर्विकार उदासीन भाव देखा जाता है, वह अन्यान्य अनेक पुरुष-चरित्रों भी पाया जाता है। प्रियनाथ डाक्टर, गोकुल और नीलाम्बरकी बात पहले लिखी जा चुकी है। 'निष्कृति' का गिरीश अत्यन्त आप-भोला आदमी है। वह विशुद्ध कौतुकका झरना है। किन्तु उसके चरित्रका सबसे अधिक उल्लेखयोग्य गुण है सांसारिक लाभ-हानिसे औदासीन्य। वह रुपया कमाता था, लेकिन खर्च करते थे दूसरे। इसीसे अपने परायेका अन्तर उसे अज्ञात रह गया। जिसके साथ मुकदमा चल रहा था, उसीकी स्त्रीके नाम उसने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। इस निर्बुद्धिताके लिए उसे बहुत लोगोंने बुरा-भला कहा; किन्तु सिद्धेश्वरीने उसके निर्लोभ और अपने पराये भेद-ज्ञानसे शून्य वैराग्यको ठीक समझ लिया। श्रीकान्तके बाल्य-बन्धु गौहरके प्रणयकी बातका वर्णन और उल्लेख आभास मात्र किया गया है। गौहर प्रधानतः कवि है। किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उसमें कोई विशेष प्रतिभा थी। उसे इसका एक नशा भर जान पड़ता है। श्रीकान्तने उसकी 'वैकुण्ठके दानपत्र' के वैकुण्ठके साथ तुलना की है। गौहरके चरित्रमें जो एक प्रधान और सबकी अपेक्षा

प्रशंसनीय गुण है, वह है सांसारिक सौभाग्यके प्रति उदासीन भावना। उसका पिता उसके लिए सम्पत्ति छोड़ गया था, लेकिन उसके बाबा फकीर थे। उसे इस फकीरका ही चरित्र मिला था। वह जमींदार, कवि, प्रेमी, परोपकारी है, किन्तु सर्वोपरि वह फकीर है। उसके प्रेम-निवेदनके भीतर भी फकीरकी निर्लिप्तता थी, ऐसा जान पड़ता है। वह द्वारकादास बाबाजीके आश्रममें आया करता था—जान पड़ता है; कमललताका साहचर्य पानेके लिए ही। किन्तु कमललताको पानेके लिए उसमें आग्रहकी अत्यन्त अधिकता नहीं है, जबरदस्ती नहीं है। मृत्युशय्यापर कमललताने उसकी असाधारण सेवा की थी, लेकिन यह सेवा कमलने अपने आग्रहसे की थी; गौहरने किसी दिन इसके लिए उसपर जोर नहीं डाला। उसकी अन्तिम इच्छामें भी यही भाव व्यक्त हुआ है। उसने कमल-लताको रुपए देना चाहा है, इस खयालसे कि अगर वह उन्हें ले ले, अगर वे रुपए उसके काम आ जावें। यहाँ भी कोई जबरदस्ती या दबाव नहीं है।

निर्विकार निर्लिप्तताका मधुरतम परिचय हम स्वामी वज्रानन्दमें पाते हैं। वज्रानन्द शरत्चन्द्रकी अपूर्व सृष्टि है। वह अमीरका लड़का था। लेकिन संसारका कोई भी आकर्षण उसे पकड़कर नहीं रख सका। जवानीके प्रारम्भमें, जब मनुष्यकी भोगकी आकांक्षा बहुत उग्र रहती है, वह बहुत सहजमें सब बन्धन काटकर, एक अनिश्चितके आह्वानसे, देशका और दस आदमियोंका काम करनेको निकल पड़ा। अथ च संसारके प्रति उसकी कोई विमुखता नहीं है। वह ईश्वरोपासक संन्यासी नहीं है। भोजनपर उसकी विशेष दृष्टि है। राजलक्ष्मीकी एकान्त निभृत गृहस्थीमें, उसने अपनेको बहुत सहज ही सुप्रतिष्ठित कर लिया है, राजलक्ष्मीकी अतिथि-सेवाका सद्व्यवहार वह खूब करता है। श्रीकान्तके लिए राजलक्ष्मीकी आवश्यकतासे अधिक चिन्ता, श्रीकान्तका रूठना—इन बातोंको लेकर वह समझे बेसमझे हास-परिहास करता है। यह सब होने पर भी किसीके लिए वह बँधा नहीं है। उसके मनमें सभीके लिए ममता है। किसीके लिए विशेष रूपसे माया-मोह नहीं है। वह जैसे अनायास पास आता है, वैसे ही अनायास दूर हट जाता है। राजलक्ष्मीने उसे बाँध रखनेकी चेष्टा की है, बंगालके भाई-बहनोंके लिए उसका दरदी चित्त स्नेहसे भरपूर है; किन्तु किसी खास बहनके लिए कोई खास दावा नहीं है। बीरभूम जिलेके एक गाँवमें जाकर वहाँ एक स्कूल खोलकर रोगियोंकी चिकित्सा करके, अनेक उपायोंसे उसने देशकी उन्नति करनेमें अपनेको

लगाया है, किन्तु वहाँ भी उसमें वही निर्लिप्त भाव है। जिस दिन काम पूरा हुआ, बस, वह वहाँसे चल दिया। सबकी प्रशंसापूर्ण कृतज्ञता एक दिन भी उसे पकड़कर रख नहीं सकी। वह सभीको प्यार करता है, इसीसे किसी खास आदमीके साथ वह बँधा नहीं रह सकता। उसने संसारको छोड़कर ही संसारको गहरी घनिष्ठताके साथ पाया है। उसमें अतिथिकी क्षणिकता, गृहस्थकी आसक्ति और संन्यासीकी निर्लिप्तताका समन्वय हुआ है। 'अतिथि' में तारापदका वर्णन करके रवीन्द्रनाथने कहा है—"वह इस संसारमें, पंकिल जलके ऊपर श्वेत-पक्ष राजहंसकी तरह घूमता फिरता था। कौतूहलवश जितनी ही बार वह उस जलमें गोता मारता था, उसके पंख न तो भीगते थे और न मलिन हो सकते थे।" अगर किसी ऐसे शुभ्र पंख पक्षीकी कल्पना की जा सकती है, जो कौतूहलवश नहीं, गहरे आकर्षणके कारण जलके अन्तरतम प्रदेशमें गोता लगाकर उसकी पंकिलतामें अपनी निष्कलंक शुभ्रता दान करे, जो केवल जलके ऊपर ऊपर तैरता न घूमे, भीतर भी संचरण करे, तभी उसके साथ वज्रानन्दकी तुलना हो सकती है।

२

शरत्चन्द्रने पुरुष-चरित्रकी सस्नेह अनुभूतिशीलताके चित्र खींचे हैं; साथ ही पुरुषकी निर्मम निष्ठुरताकी ओर भी हमारी दृष्टि आकृष्ट की है। इस प्रसंगमें 'अरक्षणीया' का अतुल, अभयाका पति और जो युवक रंगपुरमें तमाखू खरीदने जानेके बहानेसे अपनी एकान्त अनुगत बर्मी स्त्रीको छोड़कर चला गया—इनका खयाल स्वयं ही आ जाता है। 'श्रीकान्त' में वर्णित ऊपर कहे गये दोनों चित्र सम्पूर्ण नहीं हैं; लेकिन तो भी ये सब चित्र अत्यन्त निपुणताके साथ खींचे गये हैं। अतुलका चरित्र विस्तारसे दिया गया है। उसने ज्ञानदाके भीतर, लज्जासे नम्र, सेवासे स्निग्ध कुमारीकी जो मूर्त्ति देख पाई उससे वह मुग्ध हो गया और निष्कपट चित्तसे उसे अपना प्रेम जताया। इसके बाद रूपके मोहसे, बाहरकी चमक-दमकसे उसका तरुण चित्त उद्भ्रान्त हो गया। इस अकृतज्ञ, विश्वासघाती युवकने चरम निष्ठुरताके साथ पहलेकी प्रतिज्ञा अस्वीकार करके उसी किशोरीको लांछित किया, जिसने एकाग्रचित्तसे उसे प्यार किया था। ज्ञानदाकी माके मरनेपर

श्मशानमें उसने नये सिरेसे ज्ञानदाका जो परिचय पाया, उससे उसका वह पहलेका प्रेम फिर जीवित हो उठा और ज्ञानदाने भी उसे ग्रहण किया। अतुलके हृदयमें जो परिवर्तन और पुनरावर्तन या पल्टाव हुआ, वह आकस्मिक है। यह वर्णन नहीं किया गया कि किस तरह दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ उसके हृदयमें परिपुष्ट हुईं। इसीसे उसका चरित्र अनेक अंशोंमें संभाव्यताकी सीमाका अतिक्रमण कर गया है।

शरत्चन्द्रने बंगालके ग्रामीण समाजकी अनुदार स्वार्थपरता, षड्यन्त्रपरायणता, प्रीतिहीन तथा उपलब्धिहीन धर्म-निष्ठाके बहुत-से चित्र खींचे हैं। स्वर्णमंजरी, रासमणि ब्राम्हनी आदिके चरित्र अंकित करनेपर भी, शरत्चन्द्रने ग्रामीण समाजका कलंक विशेषकरके पुरुष चरित्रपर ही आरोपित किया है। बाम्हनकी बेटीका गोलोक चटर्जी ग्रामीण समाजके नेताका स्थान रखता है। बाहरके आचार-विचारमें वह धर्मनिष्ठ भी लगता है। किन्तु यथार्थ धर्मका बोध उसे बिलकुल ही नहीं। अनाथ विधवाका परमगर्हित सर्वनाश करके भी उसे उसके प्रति बूँदभर भी सहानुभूति नहीं। इस पाखण्डी नीचको जीवहत्यामें भी संकोच नहीं है, स्त्रीका सर्वनाश करनेमें दुबिधा नहीं है। जिसे उसने पापको गहरीसे गहरी दलदलमें डुबा दिया, उसपर भी उसे कणमात्र करुणा नहीं। जिस धर्मने केवल बाहरी आचारका ही सहारा लेना सीखा है, उसकी परिणति इसी धर्महीन निष्ठुरतामें होती है। ‘पण्डितजी’ उपन्यासका तारिणी चटर्जी और ‘बैकुंठका दानपत्र’का जयलाल बनर्जी—ये गोलोक चटर्जीकी तरह हीन कर्ममें प्रवृत्त नहीं हुए। किन्तु ये भी अत्यन्त निष्ठुर और स्वार्थान्वेषी हैं। तारिणीके चरित्रमें ब्राह्मण्य धर्मकी संकीर्णता, अन्धी दांभिकता और निर्ममता अत्यन्त सुस्पष्ट हो उठी है। जिस समाजमें आचारने मरुदेशकी बालुका-राशिकी तरह विचारके स्रोतकी राहको रोक लिया है, उसमें तारिणीके षड्यंत्रसे वृन्दावनका पुत्र विना चिकित्साके मर जाय तो इसमें विस्मय काहेका? चन्द्रनाथके चाचा मणिशंकर अभिज्ञ व्यक्ति हैं। उन्होंने चन्द्रनाथसे कहा था—“जिसके पास धन है, वही समाजपति या समाजका मुखिया है। मैं चाहूँ तो तुम्हें जाति-बाहर कर सकता हूँ।” और इस समाजके शिकार निरीह भलेमानुस चन्द्रनाथ जैसे लोग हैं; जिनमें अनुभूति है, पर निष्ठा नहीं; सद्बुद्धि है, पर सत्साहस नहीं। ये स्रोतके बहते हुए फूलकी तरह हैं, बहते जाना ही इनकी सार्थकता है।

देहातियोंकी नीचताके कई चित्र ग्रामीण समाजमें खींचे गये हैं। इस सम्बन्धमें सबके आगे बेनी घोषाल और गोविन्द गांगुलीके नाम याद आवेंगे। दुनियाका ऐसा कोई बुरा काम नहीं बचा जो उन्होंने न किया हो—चोरी, जुआचोरी, जाल, घरोंमें आग लगवा देना, झूठी निन्दा फैलाना, स्त्रियोंका धर्म नष्ट करना इत्यादि इनके बाएँ हाथके खेल हैं। देहाती समाज इन सब पापाचारियोंके कुकर्मोंके बोझसे दबा हुआ है। शरत्चन्द्रने इनके पापोंका जो वर्णन दिया है, वह जैसा स्पष्ट है वैसा ही तीव्र भी। लेकिन तो भी लगता है कि इन दोनों पुरुषोंका चित्र सम्पूर्ण सजीव नहीं हो सका। ये जैसे अन्याय्य काम करनेकी कल भर हैं। ये यंत्रकी तरह चलनेवाले हैं, किन्तु यंत्रकी तरह ही इनके प्राण या हृदय नहीं है। लगता है, कारण-अकारण केवल दूसरोंका अमंगल करनेके लिए ही इनकी सृष्टि की गई है। इनके मनमें कोई दुविधा नहीं है, सुदूरका कोई उद्देश्य नहीं है। अवस्था बदलनेके साथ इनके मनमें किसी नये भावकी क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं होती, व्यवहारमें भी कोई विचित्रता नहीं देख पड़ती। शेक्सपियरने इयागोके चरित्रमें खालिस उद्देश्य-हीन पाप-प्रवृत्तिका चित्र अंकित किया है; किन्तु इयागोके मनमें भी उद्देश्यके सम्बन्धमें प्रश्न उठा है, अन्तकी ओर थोड़ा-सा संकोचका भाव भी आया है। यह दुर्बलता मानवोचित है। यह दुर्बलता न होती तो वह कलका दानव या पुतला होता। बेनी घोषाल और गोविन्द गाँगुली रक्त-मांसके बने अनुभूतिशील मनुष्य नहीं लगते। 'दत्ता' के रासविहारीका कार्यक्षेत्र उनके कार्यक्षेत्रकी अपेक्षा छोटा है, किन्तु वह इनकी अपेक्षा अधिक सजीव है। वह मिथ्यावादी कपट षड्यंत्रकारी है। किन्तु उसके सारे मिथ्या आचरणके पीछे विजयाकी जमींदारी हथियानेकी प्रचेष्टा है। इसे लक्ष्य करके ही उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे एक बहुत बड़ा जाल फैलाया है। अपनी जातिगत नीचताके बारेमें वह सजग है। यह भी वह जानता है कि उसकी आर्थिक स्थिति वैसी अच्छी नहीं है। उसके अपने मनमें कोई सुकुमार प्रवृत्ति नहीं है। परन्तु वह दूसरेके सेंटीमेंटपर कौशलसे आघात कर सकता है। अथ च अपने हृदयकी कोमल वृत्तियोंको पीस डालनेके कारण वह यह नहीं स्वीकार करता कि अन्य किसीके भी हृदयका आवेग स्थायी और दृढ़ हो सकता है या होता है। वह जानता है कि किसी तरह विजयाका विवाह अपने पुत्र विलासविहारीके साथ करके उसकी सम्पत्ति हस्तगत कर सकनेपर फिर कोई गड़बड़

या झगड़ा नहीं रहेगा। बुद्धिके ऊपर भरोसा करके उसने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है; अतएव अपने कौशल और विचक्षणताके ऊपर उसकी असीम आस्था है। किन्तु उपन्यासमें यह बुद्धिजीवी सम्पूर्ण रूपसे परास्त हुआ। यह उपन्यास नरेन्द्र और विजयाके प्रणयका रोमान्स है; साथ ही रासविहारीके पराजयकी ट्रेजेडी भी है।

मानव-चरित्रकी प्रधान विशेषता उसकी विचित्रता है। उसमें नाना प्रवृत्तियोंका समावेश है। इस पहलूसे विचार किया जाय तो शरत्चन्द्रके उपन्यासोंका सर्वप्रधान पुरुष-चरित्र जीवानन्द है। जीवानन्द चौधरी जमींदार है, शराबी है, लम्पट है, धर्म-ज्ञान-शून्य है। प्रजाको सताना, पति-पुत्रवती स्त्रियोंका सतीत्व नाश करना, उसके रोजमर्राके काम हैं। अपनी असत् प्रवृत्तियाँको पूरा करनेके लिए उसे सर्वदा रुपयोंकी जरूरत रहती है। यह रुपया जोर करके, अत्याचार करके वसूल करनेमें उसे तनिक भी संकोच नहीं। स्त्रीके सतीत्वको वह बाजारका सौदा समझता था, जिस स्त्रीका सतीत्वबोध उसके लिए असुविधा पैदा करता था, उसे वह अपने सिपाहियोंके कमरेमें भेज देता था। उसके सारे पापाचरणमें कहींपर संकोच नहीं, लज्जा नहीं, छिपानेकी इच्छा नहीं। अपने किये कर्मका वह निरपेक्ष ऐतिहासिक है। कारण, उसे धर्म-अधर्मका बोध नहीं है। साधारणतः पापाचारियोंमें थोड़ा-सा लज्जाका बोध होता है। अपने अन्यायकी भयानकतासे वे अभिभूत होते हैं। वे केवल दूसरोंको ही नहीं ठगते, अपनेको भी ठगनेकी चेष्टा करते हैं। धर्मपर विश्वास न रहनेपर भी धर्मभीरुता उन्हें दुर्बल बना डालती है। किन्तु जीवानन्दमें धर्मभीरुताका झंझट नहीं है। इसीसे पाप उसके लिए सहज हो गया है। वह इसे अति स्वच्छ दृष्टिसे देख सकता है, इसीसे उसकी निर्लज्जता घृणाका उद्रेक नहीं करती। वह प्रफुल्ल जैसे रसिकोंको आकृष्ट करती है। शिरोमणि, जनार्दन राय आदि कपटी, हृदयहीन लोग इससे चक्करमें पड़ जाते हैं। यह स्वच्छ-दृष्टि, संकोच-हीन, पापाचारी दूसरोंपर ही अत्याचार नहीं करता, अपने सम्बन्धमें भी इसे रत्तीभर ममता नहीं है। वह जानता है कि जिस राहपर मैं चल रहा हूँ वह मौतकी राह है—इसमें शान्ति नहीं है; सम्भोग है, सन्तोष नहीं है। अथ च उसे अपने लिए तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है। दूसरोंको सतानेमें जैसे वह कुछ

संकोच नहीं करता, वैसे ही अपने ऊपर अत्याचार करनेमें भी उसे कोई दुबिधा नहीं होती।

इसी कारण जीवानन्दमें एक ऐसा लक्षण देखा जाता है जो अधिकांश पापाचरण करनेवालोंमें नहीं मिलता। यह उसका सुतीक्ष्ण हास्य-रस-बोध है। हास्यरसको अनेक संज्ञाएँ, अनेक नाम दिये गये हैं। एक हास्यका लक्षण बहुत-से दार्शनिकोंने लक्ष्य किया है। हास्यरसके मूलमें हास्यरसिकका अपने श्रेष्ठ होनेका बोध रहता है। जो पैर फिसलनेसे गिर पड़ा है, उसको लेकर वही परिहास कर सकता है जो खुद गिर नहीं पड़ा। दो पक्षोंकी मार-पीटमें वही कौतुकका अनुभव कर सकता है जो उस मार-पीटसे बिल्कुल अलग या निर्लिप्त है। साधारणतः पापीमें यह लक्षण नहीं रहता। उसका विवेक उसे हरघड़ी स्मरण करा देता है कि वह सबके नीचे है। प्रलोभनके निकट प्रतिदिन पराजित होनेसे उसका अपने सम्मान और प्रतिष्ठाका बोध विनष्ट हो जाता है। वह प्रलोभनसे दूर नहीं रह सकता, इसीसे निरन्तर यह अनुभव करके ही पीड़ित होता है कि वह पापके अत्यन्त गहरे दलदलमें गले तक डूब रहा है। पर जीवानन्दकी बात अलग है। वह पापकी अन्तिम सीमापर पहुँच गया है; किन्तु उसका अपनेको श्रेष्ठ समझना विलुप्त नहीं हुआ। कारण, वह जानता है कि अधिकांश लोग अन्यायका आचरण करते हैं। जनार्दन रायमें और उसमें अन्तर यह है कि वह तथाकथित भले लोगोंकी तरह कपटका सहारा नहीं लेता। उसके पापाचरणमें भी कंगालपना नहीं है। जिस स्त्रीको वह काबूमें नहीं ला सकता, उसे सम्पूर्ण निर्विकार चित्तसे सिपाहियोंके पास भेज देता है। मजिस्ट्रेटके सामने आनेसे वह भागना चाहता तो भाग सकता था; किन्तु निष्फल दैन्य दिखाने या कातर वचन कहनेकी उसमें स्पृहा नहीं है। इसीसे वह केवल दूसरोंपर ही व्यंग नहीं करता, अपने बारेमें भी उसके कौतुकका अन्त नहीं है। जान पड़ता है, उसके भीतर दो सत्ताएँ पास-पास बसती थीं। एक पापमें डूबती थी और एक कुछ दूरपर खड़ी होकर मजा देखती थी। एकने 'के' साहबके चंगुलसे बचनेकी राह खोजी है और एकने साहबकी बहुत दिनोंसे पोषित उसे फँसानेकी आकांक्षाके व्यर्थ होनेकी कल्पनामें कौतुकका अनुभव किया है। एकने षोडशीकी चरम

लांछनाका निष्ठुर प्रस्ताव विना किसी संकोचके किया है और एकने वैसे ही निःसंकोच भावसे षोड़शीके हाथसे विष ग्रहण कर लिया है।

इसी कारण जीवानन्दका परिवर्तन अप्रत्याशित होनेपर भी सामंजस्यसे रहित नहीं है। कोरी लालसा-पूर्तिमें एक दैन्य है। एक आकांक्षाकी परितृप्तिके साथ-ही साथ और एक आकांक्षा जगती है, उसके निवृत्त होनेपर और एक—इस तरह आकांक्षाका न चुकनेवाला एक चक्र-सा बँध जाता है। एकके साथ दूसरीका संबंध नहीं है; किसी एकमें सुखका स्थायित्व नहीं है। इसीसे, जिसने केवल कामनाका ईंधन ही जुटाया है, वह अपने जीवनमें एक भारी खोखलापन भी देख पाता है। षोड़शीसे खानेको माँगनेपर षोड़शी जब कह उठी थी कि "आपने दिन भर कुछ खाया नहीं, और घरमें आपके भोजनकी कुछ व्यवस्था नहीं है—यह क्या कभी हो सकता है?" तब जीवानन्दने उत्तर दिया था कि "मने ऐसी व्यवस्था तो कर नहीं रखी कि मेरे न खानेके कारण और एक आदमी उपवास करके मेरे लिए थाली परोसे मेरी राह देखता बैठा रहेगा।" यह उत्तर खूब शान्त है; किन्तु इसके भीतर एक गहरी वेदना छिपी हुई है। अपने जीवनका यह दैन्य षोड़शीके संस्पर्शमें आकर ही उसने स्पष्ट करके समझा है। उसने अब तक यही जाना था कि स्त्रीका सतीत्व अधिकांश स्थानोंमें संकोचका एक आवरण मात्र ही है; इसीसे उसने व्यंग्य करके इसे 'सतीपना' कहा था। उसने जिन सब स्त्रियोंमें इसकी अपेक्षा गहरी अनुभूति देखी है, वे पति-पुत्रवती थीं। जीवानन्दके निकट उनका सतीत्व भी एक प्रतिष्ठित स्वार्थ (Vested interest) का दूसरा नाम भर था। किन्तु षोड़शीके संस्पर्शमें आकर उसने जाना कि स्त्रीका सतीत्व एक अत्याज्य धर्म है। इसके साथ संकोचका अथवा पति-पुत्रस्नेहका संबंध गौण है! उसकी स्वच्छ दृष्टि और भी स्वच्छ हो गई, उसकी नजरोंमें जगत्का रूप ही बदल गया। अथ च यह षोड़शी उसीकी स्त्री अलका है। वह उसे ऐसा कुछ दे सकती थी, जो और कोई स्त्री नहीं दे सकी। जो आज मिल नहीं सकती, उसीको उसने एक दिन अवहेला करके, तुच्छ समझकर, छोड़ दिया था। इसके बाद उस निर्लिप्तताके स्थानपर आया कातर अनुनय-विनय। जनार्दन राय आदिको लेकर उसने पहलेकी तरह व्यंग किया है, अपने हार्ट-फेल होनेकी संभावनापर मजाक किया है, किन्तु उसके इस परिहासमें अब वह तरलता

नहीं है। निर्मलके ऊपर उसे ईर्ष्या हुई है। षोड़शीको उसने एकान्त भावसे अपनी करके पाना चाहा है। सम्पत्ति दान करते समय कहा है "मैं संन्यासी हूँ? यह झूठ बात है। संसारमें अब मैं कुछ भी नष्ट न कर सकूँगा। यहाँ मैं जीवित रहना चाहता हूँ—मनुष्योंके बीच मनुष्यकी तरह जीना चाहता हूँ। मुझे घर-बार चाहिए, स्त्री चाहिए, बाल-बच्चे चाहिए और जिस दिन मैं मरणको रोक न सकूँ, उस दिन उनकी आँखोंके सामने ही यहाँसे चले जाना चाहता हूँ।" यह वही जीवानन्द है! जिस उच्छृंखल शराबीने षोड़शीके हाथसे विष पी लिया था और जो संयमी, सर्वत्यागी जमींदार षोड़शीका हाथ पकड़कर सारे भोग-विलाससे दूर चला गया, इन दोनोंमें कितना अंतर है; अथ च दोनोंके भीतर जीनेके लिए अप्रमेय आकांक्षा और वैसा ही खूब गहरा निर्विकार वैराग्य है।

३

शरत्-साहित्यमें एक विशेष गुण यह है कि उसमें साधारणतः किसी अति-मानव और अतिमानवीकी सृष्टि नहीं की गई। शरत्चन्द्रने साधारण नर-नारियोंका इतिवृत्त लिखा है। उनमें महनीय प्रवृत्ति है, तो भी उनकी वे त्रुटिविच्युतियाँ—भूल-चूकें अंकित की हैं, जो साधारण मनुष्यकी सीमाको नाँघकर असाधारणकी सीमा तक पहुँच गये हैं। वे वीर हैं, दूसरोंके वरेण्य आदर्श हैं। पुरुष-चरित्रोंमें जो कई एक खंड-चित्र हैं, उनमें अकबर लठैत, सागर सरदार और फ़कीर साहबका नाम उल्लेखयोग्य है। बंगाल कायरोंका देश है, यह अपवाद सर्वत्र सुना जाता है। किन्तु इस निन्दित प्रदेशके अप्रसिद्ध गाँवोंमें कैसे शौर्यका और कैसी बहादुरीका परिचय प्राप्त होता था, इसका निदर्शन अकबर लठैत है। राजाकी सेनाके नेतामें क्षमता बाहरसे आती है। वह खुद चाहे जो हो, जितने दिन तक नौकरीपर कायम रहता है, उतने दिन तक उसे मानना ही पड़ता है। कारण, उसके पीछे समग्र राजशक्ति और कड़ा सामरिक आईन होता है। किन्तु अकबर जो चार-पाँच गाँवोंकी सरदारी करता है, उसकी जड़में किसी बाहरी शक्तिका आदेश नहीं, उसका अपना चरित्र-बल है। उसका बाहु-बल साधारण नहीं है, प्राण देनेसे भी वह पराङ्मुख नहीं है। किन्तु वह

किसी प्रलोभन या भयप्रदर्शनसे बेईमानी करनेको तैयार नहीं है। विजयी शत्रुके पराक्रमको माननेकी उदारता और सत्साहस भी उसमें है। राजाकी अदालतको वह अग्राह्य नहीं करता, किन्तु वहाँ जाकर अपने पराक्रमका चिह्न दिखाकर विचारकी भीख माँगनेकी दीनता उसमें नहीं है। वह रमाका आश्रित है; किन्तु उसके अनुरोधसे भी कोई नीच काम करने, किसी झूठका सहारा लेनेके लिए तैयार नहीं है। षोड़शीका सागर सरदार भी अकबर सरदारके ही अनुरूप-चरित्रका आदमी है; किन्तु उसका चरित्र उस तरह स्पष्ट नहीं हो पाया। वह षोड़शीका अनुचरमात्र है। वह षोड़शीके आश्रयमें पला है। षोड़शीकी छायामें उसका व्यक्तित्व दब गया है—ढक गया है। फकीरसाहबके बारेमें भी यही बात लागू होती है। वह षोड़शीके अनुचर नहीं हैं, उसके गुरु हैं और षोड़शीके जीवनके सभी कामोंकी प्रेरणा उन्हींके पाससे आई है। किन्तु षोड़शीके निकटसे हम उन्हें पृथक् करके नहीं देख पाते। एक दिन षोड़शी उनसे सब बातें कहनेमें कुंठित हुई थी और वह भी कुछ संदेहमें पड़कर कहीं चले गये थे। वह फिर नहीं मिले। इसके बाद जब दोनोंमें फिर भेंट हुई, तब संदेह और असन्तोष दूर हो गया है; उनका गुरु-शिष्य-सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया है। इसके बाद वह स्वतंत्र भावसे नहीं देखे गये। उनका जो व्यक्तित्व उनकी अपनी चीज था, वह अस्पष्ट ही रह गया।

रमेश और विप्रदास—इन दो चरित्रोंमें शरत्चन्द्रने आदर्श पुरुषका परिपूर्ण चित्र खींचा है। इनके आचार-व्यवहारोंमें कुछ अन्तर है। रमेश आजकलका युवक है। वह जात नहीं मानता, प्राचीन हिन्दूके अन्यान्य संस्कारोंपर भी उसकी दृढ़ आस्था नहीं है। विप्रदास प्राचीनपंथी या कट्टर हिन्दू है। हिन्दूके सनातन आचरणमें उसके अकुंठित विश्वासने ही बन्दनाको उसके खिलाफ कर दिया है, और उसीकी शान्त, संयत, अविचलित धर्मनिष्ठा देखकर बन्दना उसकी ओर खिची है। रमेशका चरित्र अंकित करनेमें शरत्चन्द्र विशेष निपुणता नहीं दिखा सके। रमेश एक आदर्शका प्रतीक मात्र है, वह सजीव मनुष्य नहीं जान पड़ता। उसने उच्च शिक्षा पाई है, गाँवमें आकर ग्राम्य-समाजका दैन्य दूर करना चाहा है और उसकी नीचताके विरुद्ध कमर बाँधकर खड़ा हुआ है। न्यायके मार्गमें लड़कर वह जेलखाने गया है; किन्तु इससे भी उसका उत्साह कम नहीं हुआ। बल्कि जेलमें उसे जो

अभिज्ञता प्राप्त हुई, उससे उसने नये प्रकाशका पता पाया और रमा तथा ताईजीने उसे आश्वासन दिया है कि यह प्रकाश कभी नहीं बुझेगा। किन्तु मनुष्य तो केवल भलाई या भले काम करनेकी कल भर नहीं है; वह अन्याय आचरणकी मशीन भी नहीं है। दूसरोंके उपकार या अपकारसे मनुष्यका बाहरी परिचय ही विशेष भावसे मिलता है। उसका यथार्थ परिचय उसका हृदय या अन्तःकरण देता है, जो बाहरकी सब चीजोंको आंशिक भावसे अपने रंगमें रँग लेता है। अनेक श्रेष्ठ नाटककारोंने कहा है कि मानव-चरित्रकी मूल बात कोई विचार या आइडिया नहीं—आइडियाकी आड़में स्थित सरल स्वतः स्फूर्तिको प्राप्त अनुभूति है। और ये स्फूर्त होनेवाली अनुभूतियाँ बिल्कुल भली या बिलकुल बुरी नहीं होतीं। रमेशके हृदयके अन्तस्तलमें हम प्रवेश नहीं कर पाते। उसका जितना कुछ परिचय पाते हैं उससे वह परोपकार करनेकी इच्छाका अवतार जान पड़ता है, रक्त-मांसके बने मनुष्यकी परिपूर्णता और वैचित्र्य उसमें नहीं है। नायक रमेश और प्रतिनायक बेनीको शरत्चन्द्रने परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियोंका प्रतीक बनाकर उनकी सृष्टि की है। इसका फल यह हुआ कि दोनों ही चरित्र अपूर्ण रह गये।

समाज-संस्कारकोंके अन्तरालमें अनुभूतिशील मानव-हृदय रहता है—इसका एक क्षीण आभास हमें रमेशकी प्रेम-कहानीमें मिलता है। किन्तु यह कहानी भी सम्पूर्ण रूपसे परिस्फुट नहीं हुई। रमा कलंकसे इतना डरती है कि उसने रमेशको जेल तक भिजवा दिया, और रमेश तो रमाके मनकी बात समझ ही नहीं पाया। केवल तारकेश्वरमें जिस दिन दोनोंकी भेंट हुई, उस दिन रमेशने रमाके हृदयका घनिष्ठ परिचय पाया था और उसने विश्वास किया था कि इस दिनने रमाके जीवनकी धाराको बदल दिया है। किन्तु आगेकी कहानीमें इस घटनाका कोई प्रभाव नहीं देख पड़ता। रमाने अनेक उपायोंसे—यहाँ तक कि शत्रुताके द्वारा भी—अपने मनका भाव प्रकट करनेकी चेष्टा की है। किन्तु रमेशका मन लगा हुआ है स्कूल खोलनेमें, राहें पक्की करानेमें, पानीका निकास बनानेमें। इन सब भारी कर्तव्योंके बोझसे उसके मनकी बात नीचे दब गई है।

शरत्चन्द्रका श्रेष्ठ उपन्यास कौन-सा है, इस बातपर मतभेदकी गुंजाइश है। इस प्रसंगमें 'गृहदाह,' 'श्रीकान्त'के प्रथम तीन पर्व, 'देना-पावना',

'चरित्रहीन', — इन उपन्यासोंकी बात याद आवेगी। किन्तु इस विषयमें मतभेदकी गुंजाइश कम है कि 'विप्रदास' शरत्चन्द्रकी सबसे निकृष्ट रचना है। पुराने आचारपन्थीकी निष्ठा और चरित्रगौरवका चित्र 'विप्रदास'में खींचा गया है। किन्तु इसका आर्ट बहुत नीचे दर्जेका है। उपन्यासके प्रथम अंकमें विप्रदास और द्विजदासके बीच संघर्षका आभास है, किन्तु यह आभास अर्थहीन है। कारण, द्विजदास अपने दादा (अग्रज) और भाभीका अन्धस्तावक है। जो अरिस्ट्रोक्रेटोंका उपासक है, वह प्रजा-विद्रोही नेता हो, इससे बढ़कर हँसने लायक बात क्या हो सकती है? इसके बाद रंगमंचपर बंदना आती है। बन्दनाने बहनके यहाँ जो खातिर पाई, वह खूब मुखरोचक नहीं है। स्टेशनपर शराबके नशेमें चूर साहबोंसे घूँसेबाजी करके विप्रदासने इस तरुणीकी प्रशंसा आकर्षित की; किन्तु बाहुबल और तज्जनित साहस मनुष्य-चरित्रकी गौण सामग्री है। कलकत्तेके घरमें जाकर विप्रदासने मेहमानोंके साथ एक पंगतमें भोजन नहीं किया। होटलसे साहबी खाना मँगाकर मेहमानोंके भोजनका प्रबन्ध कर दिया। इसे उपयुक्त अतिथि-सत्कार भले ही मान लिया जा सकता है, किन्तु इसे चरित्रकी उदारताके रूपमें कल्पना करनेके बराबर भूल और क्या हो सकती है? आचारकी यौक्तिकताको लेकर बन्दनाने दो-एक बार प्रश्न उठाया है। विप्रदासने उन सब प्रश्नोंको मुसकाकर टाल दिया है और इस बारेमें अपनी माताकी दोहाई दी है। इन सब मामलोंमें दयामयीने जो व्यवहार किया है उसमें यथेष्ट रूढ़ता है—रूखापन है; किन्तु यह सब होने पर भी विप्रदासने कहा है कि उसकी माताकी आचार-निष्ठामें संकीर्णता नहीं है। अन्धविश्वास कोई युक्ति नहीं है। वह मनके प्रसार या उदारताका भी परिचय नहीं देता। बन्दना जो विप्रदासकी ओर आकृष्ट हुई, सो उसकी युक्तिके कारण नहीं, उसके कार्योंको देखकर भी उतना नहीं, जितना कि उसकी ध्याननिरत मूर्त्तिकी उज्ज्वल महिमाको देखकर। जान पड़ता है, शरत्चन्द्र नारीकी सहज विश्वासपरायणताको लेकर व्यंग्य कर रहे हैं। विप्रदास प्राचीन आचारमें निष्ठा रखता है, किन्तु शिक्षित, तरुणी कुमारीका प्रणय-निवेदन सुनना उसकी रुचिको नहीं खटकता और निर्जन सूने घरमें उस रमणीकी प्रशंसासहित सेवा ग्रहण करके उसने अति-आधुनिकताका परिचय भी

दिया है। विप्रदास और वन्दनाका मामला अत्यन्त कुत्सित है। वह केवल नीतिके विरुद्ध ही नहीं, रुचिविगर्हित भी है।

विप्रदासकी मातृभक्ति और दयामयीके पुत्रस्नेहका जो चित्र उपन्यासके प्रथम अंशमें दिया गया है, वह अत्यंत कौतुक उत्पन्न करनेवाला है। अथ च यह लम्बे अर्सेका सुप्रतिष्ठित सम्बन्ध जिस दिन विप्रदासके साथ उसके बहनोईका कलह हुआ उस दिन टूट गया। शशांकमोहनने विप्रदासके साथ शठता की थी—उसे धोखा दिया था। धनकी हानिके फलस्वरूप देखा गया कि यह बात एकदम बेबुनियाद है कि प्रशान्त निर्लिप्तता विप्रदासके चरित्रका प्रधान गुण है। बाहरकी मुसकानके आवरणके भीतर उसका जो मन है, वह अर्थदण्ड या आर्थिक हानिसे सहज ही विचलित हो जाता है; वह क्षमा करना नहीं जानता, सामंजस्य नहीं कर सकता। यहाँ तक कि उपन्यासके उपसंहारमें संदेह होता है कि पहलेके अंशमें जो अरिस्टोक्रेट चरित्रकी सृष्टि की गई है, उसे व्यंग करनेके लिए ही इस अंतिम अंशकी रचना हुई है। यह उपन्यास पहलेसे ही अन्तःसार-शून्य है। इसे हठात् चमत्कारपूर्ण बनाकर समाप्त करनेके लिए ही शशांकको लाया गया है। शशांकके साथ विप्रदासकी मित्रता, कल्याणीके साथ ब्याह, अर्थग्रहण और विश्वासघातकता, सब कुछ एक साँसमें वर्णन कर दिया गया। इसके बाद उसके सहारे एक भारी झगड़ा या हो-हल्ला खड़ा कर दिया गया, जिसकी समाप्ति माता और पुत्रके विच्छेद, सतीकी मृत्यु और माता-पुत्रके पुनर्मिलनमें हुई। इससे चमत्कार अवश्य उत्पन्न हुआ, किन्तु यह परिणति कहानीकी अवश्यंभावी परिणति नहीं है और उपन्यासके पहलेके अंशमें दयामयी और विप्रदासके स्नेहके आदान-प्रदानकी जो कहानी वर्णन की गई थी, वह इसके बाद कोरा अभिनय ही जान पड़ती है।

६—शरत्-साहित्यमें शिशु

बाल-हृदयके अन्तस्तलमें छिपी बातोंको अभिव्यक्त करना वर्तमान युगके साहित्यका एक प्रधान लक्षण है। बंगलाके साहित्यमें भी यह विशेषता देख पड़ती है। रवीन्द्रनाथने शिशुओंके चित्तमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की है। उनका 'डाकघर,' 'शिशु,' 'शिशु भोलानाथ' आदि इस प्रयासके निदर्शन हैं। शिशुके मनकी आशा, आकांक्षा और वेदनाको शरत्चन्द्रने अपने कई ग्रंथोंमें रूप दिया है—प्रकट किया है। यह प्रचेष्टा केवल रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र तक ही नहीं रह गई। इनके बाद बंगालमें जो साहित्य रचा गया है, उसमें सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है विभूतिभूषण वंद्योपाध्यायकी 'पथेर पांचाली'। पथेर पांचालीमें 'अपू' की सृष्टि अपूर्व है।

शिशु-चित्तकी निर्लिप्तता, सुदूरके लिए उसकी आकांक्षा, प्रकृतिके और नानी-दादीके मुखसे सुनी कहानियोंके साथ उसका संयोग—इन्हीं सब बातोंको रवीन्द्र-नाथने विशेष रूपसे लिखा है। जहाँ शिशुने खूब साधारण चीज माँगी है, वहाँ भी हम देख पाते हैं कि शिशुके चित्तने साधारणके माध्यमसे विस्तीर्ण वस्तुकी आकांक्षा की है। पथेर पांचालीमें विभूतिभूषणने बंगालके गाँवोंका चित्र खींचा है। यह चित्र अपूको केन्द्र करके खींचा गया है फिर भी, अपूकी अपेक्षा अपूकी पारिपार्श्विक-अवस्थाने प्रधानता प्राप्त की है। अवश्य ही अपूके क्रमशः बढ़ रहे मन, शिशुके कौतूहल और उसके विस्मयका चित्र भी मनोरम बना है।

शरत्चन्द्रने शिशु-मानसके अन्तरतम अन्तस्तलमें प्रवेश करके उसकी विचित्र प्रवृत्तियोंको विचित्र रूप दिया है। शिशु-हृदयकी जो विशेषता

सर्वप्रथम उन्हें देख पड़ी, वह है उसकी तन्मयता। शिशु अपने क्षुद्र, अति क्षुद्र जगत्में ऐसा डूबा है कि बाहरका कोई विषय उसे आकृष्ट ही नहीं कर सकता। विजयाके मनकी बात थी प्रकट न करने योग्य। वह सयानोंके आगे कोई बात कह न पाती थी, इसी लिए बीच बीचमें परेशकी सहायता लेती थी। प्रलोभन दिखाकर उसने परेशको अपने काममें लगानेकी चेष्टा की है, किन्तु परेशके लिए वह उपलक्ष्य ही मुख्य हो गया है। विजयाने नरेन्द्रनाथकी खबर लेनेको उसे दो पैसेके बताशे खरीदनेके बहाने भेजा है; किन्तु वे बताशे खरीदना ही उसकी नजरमें इतना प्रधान हो गया—इसी बीच वह इस काममें ऐसा तन्मय हो गया कि उसे इसकी कोई खबर ही नहीं रही कि उधर विजया काहेमें तन्मय हो रही है। और एक बार इंजनके वेगसे दौड़कर मैदान पार करके वह नरेन्द्रनाथको पकड़कर ले आया किन्तु वह भी डोर-चर्खी पानेके लोभसे। चर्खी पहले मिल जाती तो वह निश्चय ही पतंग उड़ाने चल देता और नरेन्द्रनाथकी बात भूल जाता। रामलालके प्रिय दोनों रोहू मच्छोंमें कौन कार्तिक है और कौन गणेश, यह और कोई नहीं बता सकता था; यहाँतक कि उसका एकान्त अनुगत भोला भी नहीं। किन्तु राम इन्हें ठीक ठीक पहचानता था। कारण, इनकी जो विशेषता थी, उसमें वह तन्मय रहता था। जिस तरह ज्योतिर्विद्याका पंडित एकाग्र निविष्ट चित्तसे दो नक्षत्रोंकी विचित्रताको देखता है, आपात दृष्टिसे जो सब पदार्थ एक ही जातिके जान पड़ते हैं, उनके पार्थक्यका वैज्ञानिक जैसे निर्णय करता है, वैसे ही रामने भी इन दोनों मछलियोंके लक्षण पुंखानुपुंख रूपसे जाँच रखे थे। हमारे लिए मछली खानेकी चीज है; दो मछलियोंमें अगर कोई भेद होगा तो वह स्वाद या नापका। रामके लिए कार्तिक और गणेश परम आत्मीय, अथ च परम विस्मयकी वस्तु हैं। इसीसे उसने इतने घनिष्ठ भावसे उनका निरीक्षण किया है।

यहाँपर शिशु-चित्तकी एक विशेषतापर लक्ष्य करना होगा। शिशुके कामोंसे सयाने लोगोंके कामोंमें अन्तर है। और मौलिक संगति भी है। शिशुकी चिन्ता-धारा सयाने लोगोंकी चिन्ता-धारा जैसी ही होती है, केवल उसकी राह जुदी है। शिशुकी अनुभूतियाँ वयस्क मानवोंकी अनुभूति जैसी ही हैं। केवल उनके विषय हम सयानोंकी दृष्टिमें तुच्छ हैं। विजयाने परेशको जब नरेन्द्रनाथकी खबर लेनेको भेजा था उस समय वे दोनों

ही तन्मय थे, किन्तु दोनोंकी तन्मयताका कारण एक ही न था। रमेशकी पत्नी शैल और हरीशकी स्त्री नयनतारा, दोनों रुपये-पैसेके लिए, गृहस्थीके प्रभुत्वके लिए आपसमें लड़ा करती थीं। घरके लड़के भी झगड़ा करते थे। पर उनका लक्ष्य बड़ी माके बिछौनेपर उनके साथ सोना था। वीरत्वकी प्रशंसा करना मनुष्यका धर्म है। श्रीकान्तने बड़े होनेपर अलेकजेंडर और नेपोलियन आदिकी वीरताकी प्रशंसा की होगी; किन्तु बचपनमें उसका मन उस वीरकी शक्तिपर मुग्ध हुआ था, जिसने स्टेजपर केवल तीरसे ही युद्ध किया था और उस युद्धमें प्रतिद्वंद्वी पक्षको परास्त कर दिया था। शिशु सभी वस्तुओंको सरल निष्कपट चित्तसे देखता है। इसीसे वह स्टेजकी वीरताकी तुच्छता या असारता नहीं समझ सकता। शिशुका सम्मान-बोध और स्वाभिमान वयस्क लोगोंसे कुछ कम नहीं होता, यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति खूब नगण्य पदार्थोंको लेकर होती है। पंचांगमें जो यह लिखा है कि मंगलवारको पीपलके पेड़को न छूना चाहिए और मंगलके दिन पंचांग नहीं देखना चाहिए, इस बातको रामने किसी तरह नहीं मानना चाहा। किन्तु जब सुना गया कि भोला भी इस बातको जानता है, तब फिर उसने कोई बहस नहीं की। कारण, वह भोलाके आगे अपना अज्ञान प्रकट होनेकी संभावनाको सहन नहीं कर सकता था। किसी प्रियजनके साथ विच्छेद होने पर मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया होती है— आत्माभिमान, पश्चात्ताप, लज्जा, क्षोभ, खीझ आदि ऐसे ही न जाने कितने भाव। हर एक आदमी मन-ही-मन विगत कहानीको फिर दुहराता है और एक मामलेको अनेक पहलुओंसे घुमा-फिराकर देखता है। इस पर्यालोचनाके बीच अनेक मिथ्या, अनेक स्तोक वाक्य, अनेक युक्तिहीन तर्क मिश्रित हो जाते हैं। अपनी भावजको कच्चा अमरूद खींच मारनेके बाद उसका जो भीषण परिणाम हुआ, उससे पहले तो राम अभिभूत हो गया। इसके थोड़ी देर बाद ही उसने इस मामलेको तरह तरहसे सोचकर—पर्यालोचना करके—देखा। उसकी युक्ति सरल है, जिस मिथ्याके द्वारा उसने अपनेको और दूसरेको बहलानेकी चेष्टा की, वह बहुत ही स्पष्ट है। उसका अभिमान या रूठना भी क्षण-भर ही ठहरनेवाला है; लेकिन तो भी उसके मनमें अनेक भावोंका वही अभिनय हो गया, जो अभिनय सयाने आदमीके मनमें वैसी अवस्थामें हुआ करता है। केवल शिशुके मनमें भावकी जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, वह साफ

और सीधी है और वही सरलता शिशु-जीवनकी सारी तुच्छतापर महत्त्वका प्रकाश डालती है।

रामके चरित्रमें शिशुकी और एक विशेषता खिल उठी है। वह है उसकी चंचलता। शिशु किसी भी चीजको मजबूतीसे पकड़े नहीं रह सकता, उससे चिपटा नहीं रह सकता। उसका उन्मुक्त मन किसी चीजकी गुलामी नहीं करता। किन्तु जो कुछ एक बार पकड़ लेता है, उसीमें क्षणभरके लिए एकदम डूब जाता है। क्षणिकता और तन्मयताका अपूर्व सम्मिलन शिशु-चरित्रका एक प्रधान लक्षण है। राम कभी पराये घर फले हुए खीरे काटता है, कभी पीपलका पौधा रोपता है, और फिर घड़ी भरमें ही उसे भूलकर कच्चे अमरूद तोड़ने लगता है। स्कूलमें जाकर रक्षा-काली और मसान-कालीकी जीभकी लम्बाई-चौड़ाईकी बहसमें मारपीट करता है और उसके बाद ही उसे भूल जाता है। रामलालके जीवनके जो कुछ किस्से लिखे गये हैं, उनमें कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं है। अपनी बड़ी भावजके आगे वह एक समय जो अंगीकार करता है, घड़ीभर बाद ही उसके विरुद्ध काम कर बैठता है। विरुद्ध काम करनेके बाद ही फिर वैसा न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, और घड़ीभर बाद ही उस प्रतिज्ञाको तोड़ देता है। कहानीके शेष भागमें हम देखते हैं कि राम पश्चात्ताप करके कहता है कि अब उसे सुमति आई है, अब वह और कुछ गड़बड़ नहीं करेगा। हमारा विश्वास है कि यह प्रतिज्ञा भी और दफेकी प्रतिज्ञाओंकी अपेक्षा दीर्घकालस्थायी नहीं हुई होगी। जितने दिन रामकी बाल-सुलभ चंचलता रहेगी उतने दिन वह शान्त सुबोध न हो पावेगा।

शिशुकी इस चिर-चंचलताके साथ उसकी अबाध उन्मुक्तता विजड़ित है। रामको कड़े शासनमें बाँधनेकी बहुत चेष्टा हुई है, किन्तु उसके स्वाधीन विचरनेवाले मनने सब बन्धन तोड़कर अपने उन्मुक्त होनेकी घोषणा की है। मुक्ति शिशुके लेखे कितनी बड़ी चीज है, इसका एक बहुत छोटा-सा, अथ च अति सुन्दर दृष्टान्त हमें श्रीकान्त उपन्यासके प्रथम पर्वमें मिलता है। मँझले दादाके शासन और अत्याचारसे छुटकारेकी खबर पाकर छोटे दादा और यतीन दादा उल्लाससे आत्मविभोर हो गये थे, और यह स्वाधीनता प्राप्त करनेमें यतीन दादाका हाथ रहनेके कारण छोटे दादाने उसे वह कलदार लट्टू अनायास दान कर दिया था, जिसे वह घड़ीभर पहले दुनिया भरकी दौलतके बदलेमें भी देनेको तैयार न होता।

२

इन्द्रनाथ शरत्चन्द्रकी बहुत सुन्दर सृष्टि है। उसे ठीक शिशु कहा जा सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है। श्रीकान्तके साथ जब उसका परिचय हुआ, तब वह शैशवको नाँघकर किशोरावस्थाकी सीमामें पैर रख चुका था। किन्तु, तो भी, उसके भीतर जिन सब वृत्तियोंने समधिक विकास प्राप्त किया है, वे विशेष भावसे शैशव-सुलभ अर्थात् बच्चोंकी-सी ही हैं। परिणत अवस्थाकी परिपक्वता उसमें नहीं है। यदि कहा जाय कि शिशु-हृदयका साहस, निर्लिप्तता, चंचलता, परोपकार करनेकी इच्छा आदि विशेषताओंके जितने चित्र हैं, उनमें इन्द्रनाथ अतुलनीय है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। बैरीके पीटर पैनकी एक कथा इस सम्बन्धमें याद आती है। किन्तु पीटर पैनके लिए बैरीने जिस परिमण्डलकी सृष्टि की है, वह बच्चोंकी कहानीके इन्द्रजालसे घेरा हुआ है। उसका ऐश्वर्य ऐसा है कि उसमें किसी मतभेदकी गुंजाइश नहीं है। उसकी सांकेतिकता कल्पनाको आंदोलित करती है। तो भी वास्तव जगत्के साथ उसका लगाव बहुत कम है और उसके रूपपर मुग्ध होने पर भी हमारी सन्देह-। परायण बुद्धि नहीं मानती। लेकिन इन्द्रनाथ नानी-दादीकी कहानियोंके राज्यमें वास नहीं करता; वह हमें संकेतोंकी सहायतासे चकित नहीं करता। उसका कारोबार ठोस वास्तवके साथ है। अथ च इन्द्रनाथके कामोंमें श्रेष्ठताकी ऐसी एक छाप है, जो अति मानवके आचरणमें पाई जाती है। किसी भी समय वह सर्वसाधारण मनुष्योंकी कोटिका नहीं जान पड़ता। रोमांसका धर्म यह है कि वह विस्मयका उद्रेक करेगा। इन्द्रनाथका सभी कुछ — हरएक काम — विस्मय पैदा करनेवाला है। उसकी कहानीमें वास्तवकी प्रत्यक्षता है, और रोमान्सकी परम आश्चर्यमय सुदृढ़ता भी है।

इन्द्रनाथकी जो विशेषता सबसे पहले हमारी दृष्टिको खींचती है, वह यह है कि इन्द्रनाथ सचमुचका महामानव है। वह अनेक प्रतिकूल अवस्थाओंमें पड़ा है खेलके मैदानमें मार-पीट, गंगाके प्रवाहमें ज्वार आनेके समय प्रवाहके प्रतिकूल जाकर मछली चुराना, मछुओंके सतर्क रहने पर भी उनकी नावसे मछलियाँ ले भागना और साँप, जंगली सुअर आदि वन्य हिंस्र पशुओंसे भरे मार्गोंमें घूमना, इत्यादि कार्य उसकी नित्यकी अभ्यस्त जीवनचर्याके अंग हैं। सभी विषयोंके

ऊपर वह अपनी विजय-पताका उड़ाता चला गया है। जीवन-संग्राममें उत्पीड़ित क्षत-विक्षत और पराजित मानवके लिए उसकी सहज श्रेष्ठता, उसकी न बुझने-वाली परोपकारकी प्रवृत्ति, उसकी अम्लान तेजस्विता स्पृहणीय है—लोभकी वस्तु है, स्वप्नकी सामग्री है। इन्द्रनाथने कठिन प्रतिकूलताके विरुद्ध संग्राम किया है, किन्तु वह इतने सहजमें, अनायास ही उस विपत्तिसे अछूता निकल गया है कि जान पड़ता है कि जो दूसरोंके लिए प्रतिकूल है, वही उसके लिए अनुकूल है, जिस राहको और लोग काँटोंसे भरी समझेंगे, उसी राहमें उसके लिए फूल बिछे हैं। मछलियाँ चुराकर लौटते समय मछुओंके आक्रमण करने पर तेज बहाववाली गंगाकी धारामें अपनी रक्षा करनेका सहज उपाय उसका जाना हुआ था और वही अति सरल सहजभावसे उसने श्रीकान्तको बतलाया था—"अरे उन्हें मालूम हो गया तो क्या डर है! पकड़ लेना क्या कोई हँसी-खेल है? देख श्रीकान्त, कोई डर नहीं है। सालोंकी चार डोंगियाँ जरूर हैं, लेकिन अगर देखना कि घेर लिये गये, अब भागनेकी कोई राह नहीं है, तो झपसे पानीमें फाँद पड़ना और एक गोतेमें जितनी दूर जा सको उतनी दूर जाकर फिर पानीके ऊपर आ जाना—बस। इस अन्धकारमें फिर देख पानेका खटका नहीं है। उसके बाद सतुवाके 'चर'* पर चढ़कर, सवेरा होनेपर तैरकर इस पार आकर, गंगाके किनारे किनारे घर लौट आनेसे बस काम बन जायगा।" श्रीकान्त इस प्रस्तावसे विस्मित हो उठा, सन्नाटेमें आ गया; किन्तु इन्द्रनाथके लिए यह बड़े मजेकी चढ़ाई थी।

इन्द्रनाथके चरित्रका एक लक्षण उसका असीम साहस है और यह साहस ही शिशु-चरित्रकी एक प्रधान विशेषता है। मनुष्य आगे-पीछे सोचना-विचारना सीखकर, लाभ हानिकी संभावनाका हिसाब लगाना शुरू करनेके बाद ही डरना शुरू करता है। शिशुके लिए यह सब झगड़ा नहीं है। लाभ और हानिके संबंधमें वह निर्लिप्त है। अतएव विपत्तिको वह विपत्ति नहीं समझता, अनिश्चितको सन्देह करके सावधान नहीं होता; बल्कि अनिश्चितके संबंधमें उसे एक कौतूहल होता है और वह उसके रहस्यको खोलनेके लिए आगे बढ़ता है। बेकनने कहा है—मनुष्यका मृत्युसे डरना बच्चेके अन्धकारसे डरने जैसा है। वयस्क या प्रौढ़

* नदीके भीतर वर्षामें बह कर आई हुई मिट्टी या बालूके जमा होनेसे जो एक टापू-सा बन जाता है, उसे बंगलामें चर या चड़ा कहते हैं।—अनुवादक।

होनेपर मृत्युका भय स्वाभाविक है कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता; किन्तु यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि शिशुका अंधकारसे डरना उसकी सहजात (साथ पैदा हुई) वृत्ति नहीं है। अज्ञात अंधकारके भीतर क्या है, यह जाननेके लिए उसका न दबाया जा सकनेवाला जो कौतूहल और जाननेकी इच्छा है, उसे भूतकी कहानी कहकर और जूजूका भय दिखाकर निवृत किया जा सकता है। जूजू क्या है, यह वह जानता नहीं और भूतको उसने देखा नहीं। किन्तु इनके सम्बन्धमें उसने जो कहानी सुनी है, उससे उसके मनमें इस धारणाने जड़ पकड़ ली है कि अंधकारमें बाहर निकलना खतरेसे खाली नहीं है। जो लोग अज्ञात राज्यमें रहते हैं, वे मनुष्यके लिए अनुकूल नहीं हैं। किन्तु इन्द्रनाथका मन इस संस्कार और झूठी शिक्षाके द्वारा पंगु नहीं हुआ था। इसीसे वह किसी भी विपत्तिकी पर्वाह नहीं करता, किसी भी दशामें संकुचित नहीं होता। वह मसानके पाससे आधी आधी रातको अनायास नाव निकालकर ले जाता है; जब उसे यह जान पड़ता है कि मछुओंको उसका पता चल गया है तब वह भुट्टोंके खेतमें छिप जाता है, वहाँसे ठेलकर नाव बाहर निकालनेके लिए लापर्वाहीके साथ आसानीसे उतर पड़ता है। कारण, थोड़े ही फासले पर नितांत निरीह- बिल्कुल सीधे-सादे-जंगली सुअर-उअर और अति निकटमें और कुछ नहीं, यही साँप-वाँप हैं! गंगाके पानीमें भँवर पड़ रहे हैं और बहाव बड़ा तेज है, बालूके कगारे फट-फटकर गिर रहे हैं। अगर मछुओंने पकड़ ही पाया, तो भी डरकी कोई बात नहीं है—६-७ कोस धारामें बहते जानेसे ही काम बन जायगा! नये दादा चाहे जितना अनुचित काम करें, जो बाघ उन्हें उठा ले गया है, उस बाघपर आक्रमण करना होगा और संभव हो तो नये दादाको बचाना होगा। यह असमर्थका आस्फालन या जबानी जमा-खर्च नहीं है, क्षुब्ध व्यक्तिका आकाश-कुसुम नहीं है; यह वीरका सहज सरल संकल्प है। जो आदमी अशान्त भीषणप्रकृति और हिंस्र पशुओंका सामना हो जानेसे तनिक भी विचलित नहीं होता, उसकी नजरमें क्षुद्र मनुष्य अगर किसी गिनतीमें न हो तो इसमें विस्मयकी क्या बात है? उन्मत्त शाहजीने बर्छेसे उसपर चोट की थी; फुटबाल-मैचकी मार-पीटमें विपक्षके लड़कोंने उसे घेर लिया था। वह अगर तनिक भी विचलित हो जाता तो सहजमें वहाँसे छुटकारा न पाता। उसने फुर्तीके साथ

शत्रुपक्षको परास्त कर दिया है, अथ च इस लड़ाई-झगड़ेमें वह प्रशान्त है, अविचलित है। अपनेको बचानेकी अपेक्षा दूसरेकी रक्षापर ही उसकी दृष्टि अधिक है।

बड़े बड़े मामलोंकी अपेक्षा छोटे छोटे मामलों या बातोंमें ही अक्सर मनुष्यका सच्चा परिचय मिलता है। खेलके मैदानमें, शाहजीके साथ कुश्तीमें और मछलियाँ पकड़नेके धावेमें साहसकी जरूरत थी—इन सब कामोंमें साहस न दिखानेसे अभीष्टकी सिद्धि न होती, अथवा विपक्षी दलसे अपना बचाव नहीं किया जा सकता। छिदाम बहुरूपिएकी कहानी कौतुक उत्पन्न करनेवाली है। किन्तु इसमें इन्द्रनाथके साहसका श्रेष्ठ परिचय मिलता है। इन्द्रनाथ रातको भी गोसाईं-बागके भीतर होकर घूमता फिरता था। इस जंगलमें साँप और बाघ भरे पड़े थे। रातको इस राहसे आनेका कोई प्रयोजन भी न था। यद्यपि साँपों और बाघोंके भयसे और कोई आदमी इस राहसे निकलनेका साहस न करता था, लेकिन यही सीधी राह थी, इसीलिए वह इसी राहसे जाता-आता था। एक दिन रातको श्रीकान्तके घरमें बड़ी हलचल मच गई। आँगनके कोनेमें अनारके वृक्षके नीचे एक बड़ा भारी जानवर देख पड़ा। कोई कहता था, भालू है, कोई कहता था रॉयल बेंगाल टाइगर (बंगालका सिंह) है। सभी जोर जोरसे चीख-चिल्ला रहे थे, किसीको बचनेकी राह नहीं सूझ रही थी। उसी समय इन्द्रनाथ वहाँ आ पहुँचा। सारा हाल सुननेके बाद उसके मनमें केवल कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह न तो वहाँसे भागा, न स्त्रियोंके आर्तनादसे विचलित हुआ और न उसने मर्दोंकी चीख-चिल्लाहटपर ही ध्यान दिया। वह धीर शान्त भावसे यह जानने गया कि अनारवाले कोनेमें वह क्या चीज है और उसने खूब संयत शान्त भावसे अपना अनुमान प्रकट किया। वहाँ छिदाम बहुरूपिएके निकलनेके पहले जो डरे हुए लोगोंका आर्तनाद और शोरगुल मचा था, उससे इन्द्रनाथका कोई लगाव न था और बादको जो उल्लासका कोलाहल उठा उसमें भी वह शामिल नहीं हुआ। वह केवल निडर ही नहीं, निर्लिप्त भी है। उसकी इस निर्लिप्त निर्भीकताके मूलमें उसका यह सहज सरल ज्ञान था कि एक दिन मरना तो होगा ही। यह ज्ञान उसने दर्शनशास्त्र पढ़कर नहीं पाया; यह उसकी अभिज्ञता और आन्तरिक अनुभूतिका फल है। यह उसके निकट प्रत्यक्ष है। बारबार मृत्युके सामने पड़कर—मृत्युका सामना

करके—उसने मृत्युको सहज कर लिया है। जो एकदिन अवश्य होनेवाला है, उसे उसने धोखा नहीं देना चाहा। इसीसे उसके वीरत्वमें आस्फालन नहीं है, आडम्बर नहीं है। उसमें है शिशु-सुलभ निःशंक भाव, शिशु-सुलभ सरलता।

इन्द्रनाथका साहस उसके चरित्रका प्रधान गुण है; किन्तु वह केवल साहसका ही प्रतीक नहीं है। अगर वह केवल एक ही गुणका आधार होता तो उसमें परिपूर्ण मानवताका अभाव होता। शिशुकी निर्भीकता और निर्लिप्तताके साथ सहज सरल विश्वासका स्वभाव भी उसमें है। इन्द्रनाथ निर्भय है; किन्तु उसमें शिशु-सुलभ बहुत-से अन्ध-विश्वास भी हैं। शाहजीके सब अद्भुत किस्सों और गप्पोंपर वह विश्वास करता है, साँप पकड़नेवाले मदारियोंका मंत्र प्राप्त करनेके लिए उसके आग्रहकी सीमा नहीं है। जिस विष उतारनेवाले पत्थरसे तीन दिनके भीतर साँपके काटे आदमीको जिलाया जा सकता है, उसे हथियानेके लिए उसने शाहजी और अन्नदा दीदीसे बहुत अनुरोध-उपरोध किया है, खुशामद की है। उसकी धारणामें काली प्रत्यक्ष देवता है, उन्हें लाल गुड़हलका फूल चढ़ाकर सन्तुष्ट रखा जाय तो सारी विपत्तियोंसे, गुरुजनकी डाँट-डपटसे, यहाँ तक कि शरीरकी असुस्थतासे भी छुटकारा मिल जाता है। जिस महामानवने नैसर्गिक और अनैसर्गिक किसी भी विपत्तिको कुछ नहीं समझा—तृणतुल्य माना—उसके हृदयमें निःशंक आत्मनिर्भर-शीलताके साथ ही इन सहज सरल विश्वासोंकी धारा बहती थी। बड़े कष्टसे, बहुत-सी बाधाओंको नाँघकर वह मछलियोंका संग्रह कर लाया है; कोई पार्थिव विपत्ति उसे संकुचित नहीं कर सकी। किन्तु अपार्थिव भूत-प्रेत आदिके सम्बन्धमें वह निश्चिन्त नहीं हो सका। मगर हाँ, एक भरोसा यह है कि यद्यपि भूत-प्रेत बहुरूपिए हैं, तथापि वे स्वयं मछली नहीं उठा ले जा सकते। अन्धविश्वास मनुष्यकी आत्मनिर्भरशीलताको कमजोर करता है; किन्तु इन्द्रनाथका मन उसके युक्तिहीन विश्वासके द्वारा खंडित नहीं हुआ। तीन बार रामका नाम लेनेसे भय भाग जाता है, यह खूब सरल संस्कार है; किन्तु डरकर राम नाम लेनेसे रक्षा नहीं होती; क्योंकि वे जान जाते हैं कि यह डर गया है। इस सरल संस्कारने उसके चित्तको दुर्बल नहीं किया, बल्कि उसकी स्वाभाविक शक्तिको, विश्वासका सहारा देकर, संजीवित और परिपुष्ट ही किया है।

इन्द्रनाथ निर्भीक है, निर्लिप्त है, किन्तु सबके ऊपर वह परोपकार करनेकी इच्छा रखनेवाला है। परोपकार करनेकी इच्छामें उसके चरित्रकी जिस दृढ़ निष्ठाका परिचय पाया जाता है, वह हर किसी आदमीके मनमें विस्मय उपन्न करनेवाला है। तरुणके चित्तमें पराया उपकार करनेकी क्षणिक उत्तेजना होना स्वाभाविक है; किन्तु इस प्रवृत्तिको सतेज और सक्रिय रखनेमें इन्द्रनाथने जिस शक्तिका परिचय दिया है, उसकी चंचल-मति शिशुसे प्रत्याशा नहीं की जाती। मछली पकड़नेके लिए उसने भारी धावा किया है, विपत्तियोंसे भरे मार्गसे जाकर चोरी तकका सहारा लिया है। इसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। विपत्तिको वह डरता नहीं, विपत्तिके सामने जानेमें वह दहलता नहीं है, अथ च अपने लिए विपत्तिका वरण करनेके लिए उसने कोई आग्रह नहीं दिखाया। दारिद्र्यसे पीडित श्रद्धास्पद अन्नदा दीदीकी सहायता करनेके लिए, घृणित चरित्रवाले नये दादाकी रक्षा करनेके लिए, असहाय बालकको अत्याचारीके हाथसे बचानेके लिए, पड़ोसियोंके घरके लोगोंको भेड़ियेके उत्पातसे छुटकारा देनेके लिए वह खुशीसे आगा-पीछा न सोचकर प्रस्तुत हुआ है। उसके काम अविमृष्यकारितासे भरे हैं; किन्तु इस दुःसाहसिक अविमृष्यकारिताके पीछे बहुत गहरी परोपकार करनेकी इच्छा मौजूद है। उसने जो कुछ किया है उसके साथ पराई भलाई जुड़ी हुई है। वह सैनिक नहीं है, गरीबकी सन्तान नहीं है। विपत्तिको स्वीकार करना, रुपए-पैसेके लिए कायक्लेश सहना उसके लिए जरूरी नहीं। फिर भी जहाँ दूसरेका कष्ट देखा, वहीं क्षणभर भी न ठहरकर वह विपत्तिमें फाँद पड़ा है।

इन्द्रनाथकी परोपकारकी इच्छा इतनी विश्वव्यापिनी है कि वह केवल जीवित प्राणियों तक ही सीमित नहीं। अज्ञात शिशुके नदीमें बह रहे शवने भी उसे आकृष्ट किया है। उस शिशुको उसने जंगली सियार आदिके हाथसे बचाकर स्नेहके साथ अपनी नावमें उठाकर रख लिया और फिर वैसे ही स्नेहके साथ जलके ऊपर सुला दिया। सद्यःमृत शिशुको देखकर उसका बलिष्ठ हृदय स्नेह और करुणासे द्रवित हो गया। साँप, जंगली सुअर और उनसे भी अधिक हिंस्र प्रकृतिके मछुओं आदिके भयसे जो अभियान, उसने बन्द नहीं किया, उसकी स्पृहा भी क्षणभरके लिए चली गई है। यहाँ भी हम फिर शिशुसुलभ अंधविश्वासका परिचय पाते हैं। इन्द्रनाथकी धारणा यह है कि जब उसने शिशुके शवको

जलमें सुलाया उस समय वह 'भैया' कहकर रो उठा था और उसकी प्रेतात्मा ठीक पीछे ही बैठी थी। इन्द्रनाथके चरित्रकी एक विशेषता यह है कि उसमें महामानवकी बलिष्ठता तथा शिशुकी चंचलता और सरलता एक ही समय पास-पास मौजूद रहती हैं। कालीजीकी गुड़हलके फूलमें आसक्ति, रामनामकी महिमा, भूत-प्रेतोंका अस्तित्व आदि हिंदूके सभी संस्कारोंपर उसका अटल विश्वास है। अथ च जब उसकी परोपकारकी वृत्ति जाग उठती है, तब वह बहुत ही सहजमें इन सब संस्कारोंसे मुक्त हो जाता है। जिस लाशको उसने नावपर उठा लिया था, उसके बारेमें श्रीकान्तने जब आपत्ति उठाई कि वह किसी छोटी जातिके लड़केकी हो सकती है, तो इन्द्रनाथ वैसे ही कह उठा—अरे यह तो मुर्दा है। मुर्देकी जाति क्या? यही जैसे हमारी यह डोंगी—इसकी क्या कोई जाति है? यह आमकी या जामनकी, चाहे जिस पेड़की लकड़ीसे बनी हो—समझा न? यह भी वैसा ही है।" उसकी इस युक्तिमें शिशुकी सरलता, निष्कपटता और तर्कशास्त्रकी अनभिज्ञता झलकती है; किन्तु इसके साथके ही सत्यकी भीतरी तह तक प्रवेश करनेकी जिस अनायासप्राप्त शक्तिका परिचय मिलता है, वह केवल महामानवमें ही हो सकती है। अन्नदा दीदीके साथके हेलमेलमें भी बच्चों कैसी चंचलता बीचबीचमें झाँक उठी है। वह अन्नदा दीदीको बहुत प्यार करता है। उनके लिए वह कोई भी कष्ट उठानेको तैयार है, अथ च साधारण कारणसे ही बच्चेकी तरह खफा हो उठता है। अन्नदा दीदीके गोपन इतिहासके बारेमें वह एक बच्चेकी तरह ही अनजान है। उसकी दीदी मुसलमान है, यह उसे अच्छा नहीं लगा और क्रुद्ध होकर उसने इसके लिए दीदीको गाली दे डाली। अथ च उसने न जाने किस तरह यह भी अनुभव कर लिया कि जो बाहर प्रकट हो रहा है, वही एकमात्र सत्य नहीं है; इसके भीतर बहुत गहरा रहस्य छिपा है। उसकी अनुभूतिकी यह अस्पष्टता भी बिलकुल बच्चोंकी-सी है। अन्नदा दीदीको उसने कितना प्यार किया है, यह वह जानता न था। इसीसे जब-तब क्रोधित होकर उसने शाहजी और अन्नदा दीदीको गालियाँ दी हैं। साँपका मंत्र, जड़ी और विष खींच लेनेवाले पत्थर (जहरमोहरा) के बारेमें सच्च बात मालूम होनेपर उसकी बहुत दिनोंकी आशा धूलमें मिल गई है और इस आशा-भंगसे वह बच्चेकी तरह क्रोधित हो उठा है। दीदीकी इस स्वीकृतिके भीतर कि 'यह सब झूठ है' कितनी वेदना, कितनी सत्यनिष्ठा और स्वार्थत्याग था—यह न समझकर

उसने अन्नदा दीदीको लगातार सैकड़ों कटु वाक्य कह डाले और फिर क्षणभर बाद ही दीदीका पक्ष लेकर शाहजीके साथ मार-पीट भी की। किन्तु शाहजीके प्रति दीदीके पक्षपातका संदेह करके वह फिर क्रोधित हो उठा। उसके हृदयकी स्वच्छता, सरलता और बलिष्ठता, उसकी अनभिज्ञता, अथ च सत्यकी तहमें प्रवेश करनेकी सहज क्षमता आदि उसकी सभी प्रवृत्तियाँ अत्यन्त विस्मयजनक और एकान्त भावसे शिशु-सुलभ हैं।

इन्द्रनाथके चरित्रमें बलिष्ठता और कोमलता, दृढ़ता और चंचलता, हृदयकी उदारता और बुद्धिकी संकीर्णताका जो समावेश हुआ है, उसकी बात पहले ही कही जा चुकी है। अब जिन दो आपात-विरुद्ध विशेषताओंका समावेश उसमें हुआ है, उनका भी उल्लेख करनेकी जरूरत है। पराया उपकार करनेमें वह सदा सजग है, उससे होनेवाले किसी भी कष्टको स्वीकार करनेके लिए सदा प्रस्तुत है, अथ च अपने सम्बन्धमें वह सम्पूर्ण रूपसे उदासीन है। हेडमास्टरकी पीठके ऊपर असम्मान-सूचक कोई हरकत करके वह स्कूलसे भागा तो फिर वहाँ कभी नहीं गया। "यह उसने ठीक समझा था कि स्कूलसे रेलिङ्‌ फाँदकर घर आनेकी राह तैयार कर लेनेपर फिर वहाँ लौट जानेकी राह फाटकके भीतरसे प्रायः ही खुली नहीं रहती।" किन्तु इसके लिए उसे कोई क्षोभ या पश्चात्ताप नहीं, और न वहाँ लौटकर जानेके लिए आग्रह ही है। "और इसी तरह एक दिन बहुत तड़के घर-द्वार, विषय-सम्पत्ति, आत्मीय-स्वजन, सबको छोड़कर वह चला गया, फिर नहीं लौटा।" इस जगह भी क्षोभ नहीं—दुःख नहीं, विज्ञापन नहीं, आडम्बर नहीं। जितने दिन वह संसारमें, समाजमें था, उतने दिन विजयी वीरकी तरह सारे प्रचलित शिक्षा-संस्कारोंको अग्राह्य करके पर्वत-प्रमाण बाधा-विपत्तियोंको तुच्छ मानकर चलता रहा। जिनके लगावमें वह आया, उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया, और उनकी ओर आकृष्ट भी हुआ। किन्तु जिस दिन वह चला गया, उस दिन मेहमानकी तरह निर्लिप्त भावसे चला गया; कोई बन्धन, कोई प्रलोभन उसे रोककर नहीं रख सका।

७—समस्याकी खोजमें

१

शरत्‌चन्द्रके ‘ पथेर दावी ’ और ‘ शेष प्रश्न ’ उपन्यास प्रकाशित होनेके बाद बहुत तर्क-वितर्क और आलोचनाएँ हुई हैं। इन दोनोंके साथ शरत् बाबूके अन्यान्य उपन्यासोंका मौलिक अन्तर है। कारण, ये तर्कमूलक हैं; अर्थात् इनकी प्रधान वस्तु कोई घटना नहीं है। जान पड़ता है कितने ही विचारोंका प्रचार ही इन दोनोंका उद्देश्य है। इब्सनके युगसे इस प्रकारके तर्कमूलक नाटकों और उपन्यासोंका यूरोपीय साहित्यमें प्रचार हुआ है। अनेक लोगोंके मतसे साहित्य है रूपकी सृष्टि। मनुष्यके चरित्र और अनुभूतिको लेकर ही उसका कारोबार है। तर्क और आलोचनाका प्रशस्त क्षेत्र दर्शन है। हमारे देशमें तर्कप्रधान नाटक और उपन्यास, यदि कहा जाय कि नहीं हैं, तो चल सकता है। रवीन्द्रनाथके ‘ गोरा, ’ ‘ घरे बाइरे ’ और ‘ चार अध्याय ’ आदि उपन्यासोंमें आलोचनाका प्रवेश हुआ है; किन्तु कवि स्वयं ही उस आलोचनाको मुख्य नहीं मानना चाहते। उनका विश्वास है कि प्रचारमूलक साहित्य क्षणिक समस्याको लेकर उसीमें लगा रहता है, वर्तमानसे अतीत नित्य वस्तुकी खोज नहीं करता।

शरत्‌चन्द्रने यह युक्ति स्वीकार नहीं की। पहले तो वह मानते हैं कि प्रत्येक उपन्यासमें एक छिपी हुई समस्या या प्राब्लम रहता ही है। वह समस्या होती है कहानीकी समस्या, चरित्रकी समस्या और उसके साथ रहती हैं और अनेक समस्याएँ। साहित्यिकका काम है कि वह उन समस्याओंको स्पष्ट करके समझे और उन्हें परिपूर्ण अभिव्यक्ति दे। साहित्यिक लोग कभी कभी

समस्यासे कतरा जाते हैं अथवा गड़बड़झाला करके उसे दबा देते हैं। दृष्टान्तस्वरूप उन्होंने रवीन्द्रनाथके 'योगायोग' उपन्यासका उल्लेख किया है, जिसमें लेडी डाक्टरके आनेपर कहानीकी समस्याका अन्त हो गया है। दूसरे, शरत्चन्द्रने यह दिखाया है कि रामायण, महाभारतसे आरम्भ करके पृथ्वीकी सभी चिर-स्मरणीय रचनाओंमें मतका प्रचार किसी-न-किसी रूपमें दिखाई देता है। इसके बाद उन्होंने यह भी स्मरण करा दिया है कि अगर यह मान भी लिया जाय कि आर्टका एकमात्र काम मनोरंजन करना है, तो भी यह स्वीकार करना होगा कि जिसे हम चित्त कहते हैं वह चीज परिवर्तनशील है, और एकका चित्त दूसरेके चित्तका अनुगामी नहीं भी हो सकता। चित्तकी जिस अवस्थामें बंकिमचन्द्रने 'कपालकुण्डला' की रचना की थी, उसी अवस्थामें उन्होंने 'आनन्द मठ' या 'देवी चौधरानी' उपन्यास नहीं लिखे। जिस व्यक्तिका चित्त 'गुल-बकावली' में अनुरक्त है, वह बर्नार्ड शाके नाटक पढ़कर तृप्त या सन्तुष्ट न होगा।

तर्क-मूलक या समस्या-प्रधान उपन्यासों और नाटकोंने साहित्यकी महफिलमें जगह घेरी है और जगह पाई है। इसीसे यह विशुद्ध या खरा साहित्य है कि नहीं, यह प्रश्न करनेकी अब वैसी गुंजाइश नहीं है। यहाँपर केवल एक बात कहनेसे ही काम चल जायगा। साहित्य उसके स्रष्टाके मनकी अभिव्यक्ति है। स्रष्टाका मन कभी विचार-बुद्धिसे हीन नहीं हो सकता। उद्देश्यहीन अभिव्यक्ति उन्मत्तका प्रलाप है। शरत्चन्द्रने ठीक ही कहा है कि साहित्यमें जो चिरस्मरणीय हुआ है, जो केवल रूपकी सृष्टिके लिए ही रचित हुआ है—ऐसा जान पड़ता है, उसके भीतर भी मतवादकी आलोचना छिपी रही है। जो सब उपन्यास और नाटक प्रचार-मूलक हैं, उनके भीतर तर्क और आलोचना खूब प्रबल और प्रधान हो उठती है। प्रचलित साहित्यके साथ उनका यही एकमात्र भेद है। तर्कमूलक साहित्यकी एक विशेष कसौटी है। वह यह कि तर्क और आलोचनाके रूप-सृष्टिसे विच्छिन्न होनेसे काम न बनेगा; बल्कि तर्क और आलोचनाके भीतरसे ही वर्णित चरित्रको सजीव होना होगा। 'पथेर दावी' और 'शेष प्रश्न', इन दोनों उपन्यासोंकी आलोचना करनी हो तो देखना होगा कि ये तर्कमूलक साहित्यके इस अवश्य स्वीकार्य शासनको मानकर चले हैं या नहीं।

२

‘पथेरदावी’ की एक विशेषतापर हमें पहले ही नजर रखनी होगी। शरत्-चन्द्र दार्शनिक नहीं थे। जीवनके चरम सत्यका आविष्कार करना, विश्लेषण करना, प्रमाणित करना, दूसरे पक्षकी युक्तियोंका विचार करना उनका काम नहीं है। समस्यामूलक उपन्यास लिखनेपर भी, उन्होंने समस्याका समाधान देनेकी चेष्टा नहीं की। अथवा, अगर चेष्टा की हो तो उस प्रचेष्टाको सम्पूर्णांग जीवन-वेद मानकर ग्रहण किये जानेमें सन्देह है। वह सृष्टि करनेवाले हैं। उन्होंने कल्पना और अनुभूतिके द्वारा जीवनके चित्र खींचे हैं, उनके मूल्यका विचार नहीं किया। किन्तु कल्पना और अनुभूति खालिस पदार्थ नहीं हैं; वे जीवन-स्रोतके ही अंग हैं। वे बुद्धिसे सम्पूर्ण रूपसे अलग भी नहीं हैं। अतएव कल्पना और अनुभूतिसे जो चित्र खींचा जाता है, उसमें जीवन-वेदका संकेत पाया जा सकता है और वह संकेत शायद कोरे बुद्धि-ग्राह्य प्रमाणकी अपेक्षा अधिक सत्य है। ‘पथेर दावी’ उपन्यासमें, खासकर उसके नामकरणमें शरत्-चन्द्रके जीवनका बहुत ही स्पष्ट इशारा मिलता है। क्षमाहीन, प्रीतिहीन समाज और धर्मके द्वारा जो नारी लांछित और उत्पीड़ित हुई है उसके प्यार-प्रेम करनेके अपराजेय अधिकारको शरत्‌चन्द्रने स्वीकार किया है। यही उनके उपन्यासकी विशेषता है और उनकी यह स्वीकृति ‘गृहदाह’ उपन्यासमें वहाँ चरम सीमापर पहुँच गई है, जहाँ एक ही नारीके हृदयमें परस्पर-विरोधी प्रणयका संचार हुआ है। नारीके इस अधिकारको पथेर दावी (राहका दावा) कहकर अभिनन्दित किया जा सकता है और यह राहका दावा ही शरत्साहित्यकी मूल बात है। ‘पथेर दावी’ राजनीतिक विप्लवका उपन्यास है, किन्तु इसकी व्यंजना बहुत व्यापक है। ‘समिति’के साथके प्रथम परिचयमें हम देखते हैं एक नारी अपने पतिको छोड़कर अपना जीवन देशके काममें अर्पण करना चाहती है। उसके पतिका एक मित्र चिरकालके आचार सतीत्वकी दोहाई देकर उसे लौटाकर ले जानेके लिए आया है। समितिकी जो सभानेत्री है, उसकी दृष्टिमें सतीत्वका कोई मूल्य नहीं है, उसने नयनताराके व्यक्ति-स्वातंत्र्यका दावा स्वीकार कर लिया है। ‘पथेर दावी समिति’को खड़ा करनेवाले सव्यसाचीने कहा है—“जीवन-यात्रामें मनुष्यका राह चलनेका अधिकार कितना बड़ा और

कितना पवित्र है, इस सम्पूर्ण सत्यको ही मानो मनुष्य भूल गया है। आप लोग, अर्थात् जो इस दलके सभ्य हैं, वे अपने सारे जीवनद्वारा यही बात मनुष्यको स्मरण करा देना चाहते हैं।" भारतीने कहा है—"हम सभी पथिक हैं। हमारे बाद जो लोग आवेंगे, वे जिसमें बिना किसी उपद्रवके चल सकें, उनकी अबाध मुक्त गतिको कोई न रोक सके, इसलिए हम मनुष्यत्वकी राहपर चलनेके मनुष्यके सब प्रकारके दावेको स्वीकार करके सब बाधाओंको तोड़-फोड़कर चलेंगे। यही हमारी राह है।"

यह जो राह चलनेके अबाध अधिकारका दावा है, इसीकी घोषणा शरत्चन्दने पार्वती, रमा, सावित्री, राजलक्ष्मी आदिका पक्ष लेकर की है। यही राजनीतिक और सामाजिक उपन्यासोंके बीचका संयोग सूत्र है। 'पथेर दावी' राष्ट्रनीतिके विप्लवका उपन्यास है, किन्तु इसका एक और तात्पर्य है, जो सामाजिक है। अपूर्व एक शुद्धाचारी बंगाली ब्राह्मण है। यह उसकी व्यक्तिगत प्रवृत्ति है, जिसका 'पथेर दावी' के सभ्य अत्यन्त सम्मान करके चलते हैं। किन्तु इस निष्ठावान ब्राह्मणके अति निष्ठावान पाचक ब्राह्मणके जीवनकी रक्षा ईसाई भारतीके हाथका पानी पीकर हुई है। इसके अलावा भारती अपूर्वको प्राणोंसे भी बढ़कर चाहती है और भारतीके ऊपर अपूर्वका हृदय भी आकृष्ट हुआ है। यह जो दोनोंका परस्पर एक दूसरेके प्रति अनुराग है, उसके बीच अपूर्वके धर्मविश्वासने व्यवधान खड़ा कर दिया है। अगर प्रेमके दावेको शिरोधार्य करना हो तो अपूर्वकी व्यक्तिगत प्रवृत्तिका सम्मान नहीं किया जा सकता। अपूर्व और भारतीकी इस समस्याके अंतिम समाधानका कोई चित्र नहीं खींचा गया। सामाजिक आचार व्यक्तिकी राहको किस तरह कंटकाकीर्ण कर देता है, इस ओर केवल इशारा करके ही ग्रंथकारने उपन्यासका परदा खींच दिया है।

सामाजिक समस्याका उल्लेख रहनेपर भी 'पथेर दावी' राष्ट्रनीतिक विप्लवका उपन्यास है, और उसी भावसे इसपर विचार करना होगा। राजनीतिक विप्लवके विषयको लेकर बंगला-साहित्यमें बहुत-से उपन्यास लिखे गये हैं। बंकिमचंद्रके 'आनन्दमठ' रवीन्द्रनाथके 'चार अध्याय' और शरच्चन्द्रके 'पथेर दावी' का नाम इस संबंधमें सबसे पहले आता है। आधुनिक उपन्यास-लेखकोंने

भी इस विषयको लेकर उपन्यासोंकी रचना की है। उनमें सर्वश्रेष्ठ गोपाल हाल्दारका ‘ एकदा ’ उपन्यास है। इन सबमें ‘ चार अध्याय ’ सबसे निकृष्ट उपन्यास है। विभीषिका-पंथमें मनुष्यका कैसा पतन होता है, इसका चित्र रवीन्द्रनाथने इसमें अंकित किया है। किन्तु वह इस विषयकी अनुभूति या उपलब्धि गंभीर भावसे नहीं कर पाये—तह तक नहीं पहुँच सके। उनके नायक-नायिका देशात्मबोधकी प्रेरणासे इस राहमें नहीं आये हैं। कोई काकाके परिवारसे भागकर आया है; कोई लेबोरेटरीमें विज्ञानकी चर्चा न कर पाकर क्षोभ मिटाने आया है, कोई प्रेमकी पुकारका उत्तर देनेके लिए गुप्त समितिमें आ फँसा है। ये कोई खरे देशप्रेमी नहीं हैं। विप्लवी दलकी राह चाहे जितनी विभीषिकामय हो, उनको स्वाधीनताकी आकांक्षासे प्रेरणा मिलती है। रवीन्द्रनाथ विभीषिका-पंथके स्वरूपको पहचान नहीं सके। अतएव उनका खींचा चित्र विकृत हो गया है। बंकिमचन्द्रने सत्यानन्दके देशप्रेमका सजीव चित्र खींचा है; किन्तु उन्होंने महापुरुषके मुखसे सत्यानन्दकी साधनाकी संकीर्णताका प्रचार किया है। महापुरुषने सत्यानंदको नियुक्त किया था, कहानीमें वह संकटकी घड़ीमें पहुँच भी गये हैं; किन्तु उपन्यासकी घटनाके साथ उनका संयोग घनिष्ठ नहीं है। गोपाल हाल्दारकी अन्तर्दृष्टि बहुत पैनी और गहरी है उन्होंने एक नायकको केंद्र बनाकर विभीषिका-पंथकी अनिवार्य व्यर्थता और अनतिक्रमणीय आकर्षणका चित्र खींचा है। यह नायक सम्पूर्ण रूपसे विभीषिका-पंथी नहीं है, अथ च इसका मूल्य देना वह जानता है। उसका अनुभूतिशील हृदय इसकी ओर आकृष्ट हुआ है, किन्तु उसकी विचार-बुद्धिके निकट बिभीषिका-पंथी बालक आगमें फाँदनेको तैयार पतंग-सा प्रतीत हुआ है।

शरत्चन्द्रने अन्य रीतिका सहारा लिया है। बिभीषिका-पंथके दोनों पहलू दिखानेके लिए उन्होंने दो चरित्रोंकी परिकल्पना की है। इस ग्रंथके प्रधान चरित्र सव्यसाचीने भारतमें अँगरेजी राज्यके और योरपकी सभ्यताके विरुद्ध तीव्र विद्वेषका प्रचार किया है। किन्तु त्रास-वादकी विरोधी अनुभूति और मत भी इसी ग्रंथमें सबसे अधिक जोरदार ढंगसे प्रकट हुआ है। सव्यसाची अति मानवके रूपमें चित्रित हुआ है। उसीके साथ साथ ग्रन्थकारने और एक

चरित्रकी सृष्टि की है, जिसकी शक्ति कम है, जिसने सव्यसाचीके प्रबल प्रभावका अनुभव किया है, जो उसके प्रति भक्ति, श्रद्धा और ममतासे विगलित हुआ है; किन्तु उनके हिंसाके मंत्रको शिरोधार्य नहीं कर सका। वह है भारती। इस ग्रंथके नायक हैं डाक्टर सव्यसाची; और नायिका है भारती। परन्तु इन दो प्रधान चरित्रोंके बीच जो संबंध है, वह नायक-नायिकाका सम्बन्ध नहीं है—नायक और प्रतिनायकका सम्पर्क है। भारती 'पथेर दावी'की सेक्रेटरी है; किन्तु जब इस समितिका स्वरूप उसकी समझमें आ गया तब वह इससे दूर हट गई है और उसने वारंवार डाक्टरको स्मरण करा दिया है कि यह राह पापकी राह है, यह किसीका भी कोई कल्याण नहीं कर सकती। भारतीने कहा है—"तुम्हारी 'पथेर दावी' समितिके षड्यंत्रकी भापसे मेरी साँस घुट रही है।" डाक्टरने जो काम करनेका ढंग निकाला है, उसकी संकीर्णता और नीचताके विरुद्ध भारतीका मन विद्रोही हो उठा है। उसने न रोकी जा सकनेवाली आवाजमें दावा किया है—"लेकिन मैं यह बात किसी तरह नहीं मानूँगी कि इसके सिवा और कोई राह नहीं है और मनुष्यकी सारी खोज ही एकदम समाप्त हो गई है। एक जनके मंगलके लिए, और एक जनका अमंगल करना ही होगा—इसे मैं किसी तरह चरम सत्य मानकर ग्रहण नहीं करूँगी—तुम्हारे कहनेसे भी नहीं।" भारतीने यह दिखाया है कि कोरी युक्तिके द्वारा विचार करनेपर भी डाक्टरका मतवाद चल नहीं सकता—इसमें न्याय-शास्त्रका अनवस्था नामका दोष आता है। डाक्टरने कहा है कि हिंसाको छोड़कर विप्लवकी दूसरी कोई राह नहीं है। इसपर भारतीने उसे स्मरण करा दिया है कि "रक्तपातका जवाब अगर रक्तपात ही है तो उसका भी तो जवाब रक्तपात होगा, और उसके भी जवाबमें इस एक रक्तपातके सिवा और कुछ नहीं मिलता।" इस तरह न चुकनेवाले वेगसे हिंसाकी धारा बहती जायगी और शान्ति तथा कल्याणकी राह चिरकाल तक अनाविष्कृत ही रह जायगी—उसका आविष्कार न होगा।

३

'पथेर दावी' विप्लवका उपन्यास है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु इसका प्रधान उपजीव्य या प्रयोजन विप्लवका प्रचार नहीं है। यह दो विभिन्न

मतवादोंके संघर्षका चित्र है। इस संघर्षने केवल विरोधी मतकी अभिव्यक्तिका आश्रय नहीं लिया; यह डाक्टर और भारतीके जीवनके भीतर सजीव हुआ है। डाक्टरके जीवनका बहुत कुछ हम लोगोंसे छिपा रखा गया है; किन्तु उसका जो कुछ परिचय हम पाते हैं, उसमें आदर्शके ऊपर अप्रमेय निष्ठा जगमगा रही है। डाक्टरकी प्रतिदिनकी जीवन-चर्याका जो केवल एक चित्र इस उपन्यासमें दिया गया है, उसीसे भारतीने समझ पाया है कि किस सीमाहीन क्लेशमें यह स्वाधीनता-यज्ञका ऋत्विक् (पुरोहित) अपने दिन गुजारता है। भात कैसे रखा हुआ था, वहाँ एक बच्चेने क्या अपकर्म कर रखा था—इन बातोंके सरल, स्पष्ट, पुंखानुपुंख वर्णनसे उनकी दुःसह सहिष्णुता और साधनाकी अनतिक्रम्य लगन तीव्र प्रकाशमें चमक उठी है। वह केवल अपने शरीरके ऊपर ही निरन्तर कष्ट नहीं झेलते रहे, हृदयकी प्रवृत्तियोंको भी उखाड़ फेंकनेको बाध्य हुए हैं। जो परम आश्चर्यमयी रमणी 'पथेर दावी' संस्थाकी सभानेत्री है, वह अपने समग्र हृदयसे उनको प्यार करती है। इस असीम प्यारने डाक्टरके हृदयमें अद्भुत स्पन्दन जगा दिया है; किन्तु वह उसे अभिभूत नहीं कर पाया। भारतीने इस संबंधमें जब कभी उनसे प्रश्न किया है तो वह थोड़ा विचलित अवश्य हुए हैं, उनकी सदा चौकन्नी रहनेवाली दृष्टि कुछ अस्पष्ट हो उठी है; किन्तु वह चित्त-विभ्रम केवल क्षणभर रहा है। वह प्यारको पहिचानते हैं, उसका मूल्य चुकाना भी जानते हैं; किन्तु सव्यसाचीका प्रयोजन और व्रजेन्द्रका प्रयोजन तो एक नहीं है। इसीसे सुमित्राको श्रद्धा करनेपर भी, वे उसके प्रेमका बदला नहीं दे सके। जब कामका बुलावा आया है, तब सुमित्राकी अवहेला करके वह चले गये हैं; क्षणभरके लिए भी कर्त्तव्यकी राहसे नहीं डिगे। अपूर्वसे उन्होंने कहा है कि हृदयका आवेग महँगी चीज है, लेकिन अगर उसे चैतन्यपर छा जाने दिया जाय तो मनुष्यका इतना बड़ा शत्रु दूसरा नहीं है। डाक्टरका अपना चैतन्य कभी आच्छन्न नहीं हुआ—दैहिक क्लेशसे तो नहीं ही, हृदयके आलोड़नसे भी नहीं। सुमित्रा तीक्ष्णबुद्धि, कर्त्तव्यमें कठोर और घने रहस्यसे भरी थी। सव्यसाचीकी साथिन होनेकी योग्यता अगर किसीमें है तो इसी रमणीमें है। वह स्वल्पभाषिणी है। उसकी किशोरावस्था और जवानी बहुत विचित्र अभिज्ञता-ओंके बीच बीती है और उनसे उसने हृदय और मनकी शक्ति प्राप्त की है। अपने विचित्रतासे भरे जीवनद्वारा संचित अभिज्ञतासे उसने सव्यसाचीको पूरी

तौरसे पकड़ रखना चाहा है; किन्तु एक दिनके लिए भी उसके आर्त हृदयको सम्मान देनेकी फुर्सत डाक्टरको नहीं हुई।

विप्लवीके त्याग, निष्ठा और विपत्तियोंसे परिपूर्ण मार्गकी अस्पष्टताका चित्र उपन्यासके अन्तिम पैराग्राफमें सबसे बढ़कर सजीव हो उठा है। उसने कहानीको केवल समाप्त ही नहीं किया, उसमें निहित तात्पर्य रूपकके द्वारा प्रकट भी कर दिया है। इस दृश्यकी सांकेतिकता असाधारण है। बाहर उन्मत्त प्रकृति प्रलय मचाये हुए थी, घरके भीतर सुमित्रा, भारती और शशी डाक्टरको पकड़कर रखना चाहते थे। किन्तु सव्यसाचीने किसीकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह हीरासिंहको लेकर लापर्वाहीके साथ वहाँसे निकालकर चले गये। अचेतन प्रकृति जैसे विप्लवीकी चेष्टाके स्वरूपको प्रकट करनेके लिए ही उन्मत्त हो उठी थी। आँधी-पानी बंद नहीं होते, रुकनेका नाम नहीं लेते। सूची-भेद्य अन्धकारमें फिसलनवाली पथ-हीन राहका सेनापति और सैनिक बिजलीकी चमकके प्रकाशको ध्रुवतारा मानकर आगे बढ़ा है। जो प्रलय आकाशमें वायुमें गरजता डोल रहा था, उसके बीच सुमित्राने अपने हृदयका प्रतिबिंब देखा होगा और डाक्टरने भी अपने समग्र अभियानके अद्‌भुत रूपककी मूर्त्ति देखी होगी। सभीने सव्यसाचीको छोड़ दिया है, रह गया है केवल हीरासिंह—उनका उपयुक्त सैनिक, जिसके गलेपर छुरी रख देनेसे रक्त निकलेगा, लेकिन विना आज्ञाके बात न निकलेगी; जिसके ख्याति, निन्दा या शत्रु-मित्र नहीं हैं, जिसने आदर्शके आह्वानसे सव्यसाचीको गुरु मानकर जीवनके सब भले-बुरे, सब सुख-दुःख विसर्जन करके कठोर सैनिक वृत्ति पकड़ी है।

भारतीकी बात अलग है। डाक्टर ईसाई-सभ्यताके शत्रु हैं, भारती ईसाई है। इस सभ्यताके मूलमें जो प्रेमकी वाणी है, उसे उसने सम्पूर्ण अन्तःकरणसे ग्रहण किया है। डाक्टर गृही नहीं हैं, किन्तु भारतीने मन-वाणी-कायासे गृहिणी होना चाहा है और वह डाक्टरके देशात्मबोधको कल्याणके मंत्रसे दीक्षित करनेके लिए उद्‌ग्रीव या उत्सुक हुई है। उसके हृदयकी गम्भीरतम आकांक्षा यह है कि वह डाक्टरको कल्याणके मार्गमें, शान्तिकी राहमें ले आवे और अपनेको घर-गिरस्तीमें सुप्रतिष्ठित करे। उसने डाक्टरसे कहा है—"यह राह तुम छोड़ दो...विप्लवी लोगोंकी यह निर्मम राह।...मैं तुमको मरने न

दे सकूँगी। सुमित्रा मरने दे सकती है, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकती।" उसके अपने हृदयकी गुप्त बात बहुत तरहसे प्रकाशित हुई है। सबसे अधिक सहज अभिव्यक्ति तब हुई है, जब 'पथेर दावी समिति' की सेक्रेटरी भारतीने अपूर्वसे कहा है—"स्वभाव तो मेरा जायगा नहीं अपूर्व बाबू, कुछ-न-कुछ करनेको चाहिए। किन्तु आप जैसे अनाड़ीके ऊपर अगर हुकुम चलानेको मिले तो मैं और सब कुछ छोड़ दे सकती हूँ।" भारतीके हृदयके इस दावेको पहचान सकनेके कारण ही 'पथेर दावी' की सृष्टि करनेवाले डाक्टरने अपूर्वको छोड़ दिया था।

और एक दिशासे भी सव्यसाचीकी साधनाका स्वरूप चित्रित हुआ है। वह विप्लवी हैं, किन्तु जीवनके बृहत्तर प्रयोजन और आदर्शके संबंधमें बेखबर नहीं हैं। उन्होंने आप ही स्पष्ट करके कहा है—"भारतकी स्वाधीनताके अतिरिक्त मेरा अपना और दूसरा लक्ष्य नहीं है; किन्तु यह समझनेकी गल्ती भी मैंने किसी दिन नहीं की कि मानव-जीवनमें इससे बड़ी कोई कामनाकी वस्तु नहीं है। स्वाधीनता ही स्वाधीनताका अन्त नहीं है। धर्म, शान्ति, काव्य, आनंद—ये और भी बड़ी चीजें हैं। इनके सम्पूर्ण विकासके लिए ही स्वाधीनता है; नहीं तो इसका मूल्य क्या है?" इस बृहत्तर आदर्शका परिचय देना ही शशीके उपाख्यानकी अन्यतम सार्थकता है। शशी शराबी है, अमितव्ययी या फिजूलखर्च है। किसीकी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य नहीं है और भारतीको यह विश्वास है कि किसी स्त्रीका उसे प्यार करना संभव नहीं है। उसे सभीने गाली दी है, बुरा-भला कहा है; किन्तु डाक्टर उसके बहुत दिनोंके सुहृद् हैं। उन्होंने कभी किसी भी दशामें उसका त्याग नहीं किया। डाक्टरने उसे केवल स्नेह ही नहीं किया, इस स्नेहके मूलमें बहुत गहरी श्रद्धा भी रही है और भारतीकी उसपर खीझ भी क्रमशः प्रीतिके रूपमें बदल गई है। और लोगोंने शशीकी ग्लानि, कलंक और पराजयको ही देखा है, किन्तु सव्यसाचीने उसके कवि-चित्तको पहचाना है, जिसे कलंक छोटा नहीं कर सका, जिसकी दीप्तिको चरम प्रवंचना मलिन नहीं कर सकी। शशीकी बच्चेकी-सी सरलता और कविजनोचित तटस्थताकी चरम अभिव्यक्ति हुई है नवताराके प्रति उसके मनके भावमें और गुणीका सत्य परिचय अकेले सव्यसाचीने पाया है। इसीसे डाक्टरको शशीकी अत्यन्त आवश्यकता है। वह

जानते हैं कि किसी कामके लिए अगर वह कभी लौटकर आवें तो शशीसे ही आश्रयकी भिक्षा माँगेंगे और सबके छोड़ देने पर भी वह शशीको नहीं छोड़ेंगे। इसी कारण इस विप्लवी नेताने कविको उद्देश करके कहा है—"तुम कवि हो, तुम देशके बड़े शिल्पी हो। तुम राजनीतिसे बड़े हो, इस बातको न भूलो। तुम्हारा परिचय ही तो जातिका सच्चा परिचय है। तुम्हारे विना इसका वजन किस चीजसे होगा? एक दिन स्वाधीनता-पराधीनताकी समस्याका फैसला होगा ही—उस दिन इसके दुःख-दैन्यकी कहानीको जनश्रुतिसे अधिक मूल्य नहीं मिलेगा; किन्तु तुम्हारे कामके मूल्यका निरूपण कौन करेगा? तुम्हीं तो देशकी सब विच्छिन्न, बिखरी हुई भाव-धाराको मालाकी तरह एक सूत्रमें गूँथकर दे जाओगे!" इस उच्छ्वसित उक्तिमें कविका परिचय पाया जाता है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु इससे भी अधिक स्पष्ट परिचय एक विलपवी वक्ताका मिलता है।

'पथेर दावी' में कल्पनाकी समृद्धि, गठन-कौशल और रचनाकी निपुणताका परिचय प्रचुर परिमाणमें पाया जाता है, और इसके कई विस्मयकर चरित्र बहुत ही सुन्दर ढंगसे अंकित हुए हैं। किन्तु इसमें अपरिणतिके निदर्शन भी यथेष्ट हैं। उन सब अपरिणतियोंपर दृष्टि आकृष्ट करनेके पहले, शरत्‌चन्द्रकी चिन्ताधारामें जो एक मौलिक असंगति है उसे बतानेकी जरूरत है। पहले ही कहा गया है कि 'पथेर दावी' नाम रखनेमें शरत्‌चन्द्रके जीवन-वेदका संक्षिप्त सार मौजूद है। पथके दावाका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्यकी स्वतन्त्रताके अधिकारका दावा मान लेना होगा। प्राचीन आचार या सामाजिक नियम इस अधिकारको मान लेना नहीं चाहते, इसीसे उनके विरुद्ध विद्रोहका प्रयोजन है और इस विद्रोहकी वाणीने ही शरत्‌चन्द्रकी नारी-चरित्रोंकी परिकल्पनाको जगाया है। किन्तु प्रश्न यह है कि अगर सभी लोग स्वतन्त्रताका दावा करने लगें तो समाजकी व्यवस्था न चल सकेगी। बर्नार्ड शॉने जब इब्सनके नाटककी समालोचनाके माध्यमसे अपने मत-वादका प्रचार शुरू कर दिया था, तब उन्होंने अबाध व्यक्ति-स्वातंत्र्यका जयजयकार किया था। किन्तु फिर सामाजिक आदर्शको सिंहासनसे च्युत करके उन्होंने ही एक प्राणशक्तिकी परिकल्पना की है, जो निरंकुश है, जो अप्रतिहत वेगसे व्यक्तिको चला रही है। इसी भावसे ये विद्रोहके पुरोहित व्यक्तिकी स्वाधीनताको

छोड़नेके लिए वाध्य हुए हैं। लांछित नारीके भीतर जो मैली न पड़नेवाली शुभ्रता है, उसे शरत्चन्द्रने उद्घाटित किया है—खोलकर दिखाया है। किन्तु यदि समाज निरू दीदीके पदस्खलन या अन्नदा दीदीके गृहत्यागका अभिनन्दन करे, तो फिर यह प्रश्न उठेगा कि क्या सभी तरहकी उच्छृंखलताको समाज मान ले? और अगर वह उसे मान न ले सके तो अनियन्त्रित खयाल और सुनियन्त्रित चिन्ताके बीच वह कहाँपर लकीर खींचेगा? शरत्चन्द्रके साहित्यमें इस जिज्ञासाके ठीक उत्तरका कोई सूत्र नहीं पाया जाता। ऐसा नहीं जान पड़ता कि उन्होंने समस्याके इस पहलूपर नजर डाली है। 'पथेर दावी' उपन्यासमें यह असंगति और तरहसे प्रकाशित हुई है। सव्यसाची 'पथेर दावी-समिति'को कायम करनेवाले हैं। वह व्यक्तिकी स्वाधीनताको सुप्रतिष्ठित करके मनुष्यकी पैदल चलनेकी राहको निष्कंटक बना देना चाहते हैं। किन्तु उनकी समितिमें हम देख पाते हैं कि यह आदर्श कहीं भी नहीं चलता। जो लोग समितिके शत्रु हैं, उनकी हत्या करनेके अधिकारका प्रश्न न उठाकर भी हम देखते हैं कि समितिके भीतर भी कोई स्वाधीन नहीं है। नवतारा किससे ब्याह करेगी, इस सम्बन्धमें उदारताका अवलम्बन करना सहज है। कारण, उससे सव्यसाचीके कामका सम्बन्ध नहीं है। किन्तु समितिके काममें वह किसीको भी स्वाधीनता देनेके लिए तैयार नहीं हैं। समितिके दो आईन हैं—(१) डाक्टरके पीछे या आड़में डाक्टरके कामकी आलोचना नहीं की जा सकेगी। (२) डाक्टरके विरुद्ध बगावत खड़ी करना घोर अपराध है। इसका एकमात्र दण्ड मृत्यु है।

डाक्टरने राजशक्तिके विरुद्ध हिंसात्मक विद्रोहके अधिकारको स्वीकार कर लिया है; किन्तु अपने विरुद्ध विद्रोह या अपने कामकी आलोचनाके अधिकारको स्वीकार करनेमें वह कुण्ठित हुए हैं। केवल एक बार अपूर्वने पथेर दावीकी परिकल्पनाकी मौलिक अयौक्तिकताकी ओर उँगली उठाई थी; किन्तु डाक्टर इस प्रश्नको टाल गये हैं। डाक्टर एक विशेष प्रकारकी समितिके संस्थापक या स्रष्टा और नेता है। उनके प्रयोजनसे इस तरहका नियम बनाना पड़ा है। किन्तु यहाँपर हम जिस असंगतिका परिचय पाते हैं, भाव-धाराकी ओरसे शरत्सा-हित्यकी वही मौलिक दुर्बलता है। नियमकी शृंखला और स्वाधीनताके पक्षका

विस्तार—इन दोनोंका समन्वय किस तरह हो सकता है, इसका कोई संकेत शरत्चन्द्रकी रचनामें नहीं पाया जाता।

'पथेर दाबी' की कहानी रचनेमें जो सब त्रुटियाँ हैं, उनका उल्लेख करनेकी जरूरत है। सव्यसाची विस्मयजनक चरित्र है और उनके भावों और विचारोंका चित्र बड़ी ही निपुणताके साथ खींचा गया है; किन्तु उपन्यासलेखक उनके जीवनके रहस्यको सम्पूर्ण रूपसे खोल नहीं सके हैं। पहले तो हम देखते हैं कि वह अपने कामके ढंगको कभी प्रकट नहीं करते। बर्मामें वह केवल कुछ दिनोंके लिए आये थे और वहीं सुमित्राकी सहायतासे उन्होंने एक समितिका संगठन किया था। किन्तु उनकी असल कार्यपद्धति क्या है, यह जाननेका उपाय नहीं है। हीरासिंह उनकी इस कार्यधारासे परिचित है; किन्तु वह केवल खबर देता है, असल बात प्रकट नहीं करता। पथेर दावीके सभ्योंमें कृष्ण ऐयर सुमित्रा डाक्टरके पुराने बन्धु हैं। वे कुछ कुछ खबर रखते हैं; किन्तु जान पड़ता है कि उनकी जानकारी भी खूब धुँधली है। एक उदाहरण देनेसे ही यह बात स्पष्ट हो जायगी। डाक्टरने एक बार कहा था—"चलती सम्प्रति भामोकी राहमें और भी कुछ उत्तरमें है। कुछ सच्चा जरीका माल है, सिपाहियोंके हाथ वह अच्छे दामोंमें बिकेगा।" उन्होंने नीलकान्त जोशीके प्रसंगमें कहा है कि पल्टनके सिपाहियोंके नाम बता देनेसे फाँसी न होती और उसने सिपाहियोंको मित्र बनानेके लिए जाकर ही प्राण दिये थे, शक्तिकी आजमाइशके मतलबसे नहीं। सैन्यबल और विराट् युद्ध-सामग्री आदिका उल्लेख करके डाक्टरने भारतीको आश्वासन दिया है कि "आज जो लोग हमारे शत्रु हैं, कल वे मित्र भी हो सकते हैं।" अन्यत्र हम देख पाते हैं कि उनके शिष्य महातप और सूर्यसिंह रेजिमेंटमें थे और वहाँसे संघाईमें जाकर पकड़े गये हैं। इन सब आभास-इंगितोंसे जान पड़ता है कि भारतीय सैनिक दलमें विद्रोहकी वाणीका प्रचार करके उन्हें षड्यंत्रमें सम्मिलित करना सव्यसाचीके अभियानका अंश है। किन्तु इन सब कामोंका कोई चित्र नहीं है। जो कुछ आभास और इंगित है, वह भी अस्पष्ट है।

और एक असंगतिपर भी ध्यान देना होगा। सव्यसाची सन् १९११ में टोकियोमें बम फेकनेके काममें लिप्त थे। उनके षड्यंत्रका जाल पिनांग, चीन

और सिंगापुरतक फैला है। कामके सिलसिलेमें उन्होंने सेलेबिस, पैसिफ़िक महासागरके द्वीपोंको देखा और अमेरिका भी जा सकते हैं। इन सब जगहोंकी गुप्त समितियोंके साथ भारतवर्षमें स्वाधीनताके उपार्जनका लगाव कहाँ है, उसका उपन्यासमें कहीं भी उल्लेख नहीं। डाक्टरके जीवनकी दो-एक विस्मयमें डाल देनेवाली घटनाएँ हम सुन पाते हैं, पर उनका समग्र स्वरूप हमें नहीं मिलता। एक बार उद्दीपित होकर—जोशमें आकर—डाक्टर कह उठे हैं—"सुनोगे सम्पूर्ण इतिहास? कैंटनकी एक गुप्त सभामें सन-यात-सेनने मुझसे एक बार कहा था—"। यहींपर सुमित्रा आदिके आ जानेसे यह प्रसंग दब गया और फिर उठाया ही नहीं गया। सन-यात-सेनके उल्लेखका एक अर्थ रह सकता है। सन-यात-सेनने स्वदेशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टा विदेशमें रहकर की थी और वह चेष्टा सफल हुई थी। सन-यात-सेन एशियावासी थे। जान पड़ता है, उनकी बात याद करके ही शरत्चन्द्रने सव्यसाचीको निर्वासनके समय संग्रामकी तैयारीमें लगाया है। किन्तु सन-यात-सेन चाहे लंदनमें रहें चाहे और कहीं रहें, वह देशकी स्वाधीनताके आन्दोलनसे बिछड़े नहीं, बल्कि सदा उसकी अगली पाँतिमें ही रहे हैं। किन्तु सिंगापुर या संघाईके जैमेंको क्लबके साथ भारतकी स्वाधीनता-आन्दोलनका संयोग कहाँ है, यह कहीं भी बर्णन नहीं किया गया। यह भी समझमें नहीं आता कि सव्यसाची विदेशमें गुप्तसमितियोंका जाल क्यों बिछा रहे हैं। केवल एक बार उन्होंने स्वयं इस असंगतिका रहस्य खोलनेकी चेष्टा की है। भारतीने उनसे प्रश्न किया—"तुम्हारी अपनी जन्मभूमिमें क्या तुम्हारा काम नहीं है?" इसके उत्तरमें उन्होंने कहा—"उन्हींके कामसे मैं इस देशको छोड़कर सहजमें न जाऊँगा। इस देश (वर्मा) की स्त्रियाँ स्वाधीन हैं; स्वाधीनताके मर्मको वे समझेंगीं। उनकी मुझे बड़ी जरूरत है। इस देशमें अगर कभी तुम आग जलते देख पाओ तो तुम चाहे जहाँ रहो भारती, मेरी यह बात तब स्मरण करना कि वह आग स्त्रियोंने ही जलाई है।" पूर्व-एशियाकी औरतें आजाद हैं, इसी कारण भारतके विप्लवी बर्मा, चीन, सुमात्रा, सुरोबायामें घूमते फिरेंगे और सहजमें बर्माको छोड़कर नहीं जायँगे, यह युक्ति बिलकुल नहीं चल सकती। कोई कोई कहेंगे कि कविकी सृष्टि हमेशा युक्तिको मानकर नहीं चलती; किन्तु जो कल्पना युक्तिको सम्पूर्ण रूपसे छोड़ देती है, वह भावविलासीका स्वप्नमात्र है; वह सृष्टि नहीं कर पाती।

जान पड़ता है शरत्चन्द्रने इस उपन्यासको यथासंभव विस्मयजनक बनाना चाहा है। विप्लवीके जीवनमें आश्चर्यजनक घटनाओंका अभाव नहीं होता। जिन्होंने धनगोपाल मुखोपाध्यायका "My brothers face" उपन्यास पढ़ा है, उन्होंने उसमें ऐसी जोरदार घटनाओंका वर्णन मिलता है, जिनके आगे गिरीश महापात्रकी या इरावतीके माँझीकी कहानी हार मानती है। शरत्चन्द्र मानों इन सब परम अद्भुत घटनाओंके मोहमें पड़कर अपनेको उससे मुक्त नहीं कर सके। एक दृष्टांत देनेसे ही यह संदेह पक्का हो जायगा। सुमित्रा 'पथेर दावी समिति'की प्रेसीडेंट है। किन्तु उसके साथ भारतवर्षका संयोग कहाँ है? उसके पिता बंगाली थे, किन्तु मा यहूदी। वह चोरीसे अफीम और शराब पहुँचाती थी। वह सारी पृथ्वीमें घूमी है; किन्तु भारतवर्षमें आकर उसने इसके साथ रक्तका सम्बन्ध अनुभव किया हो, इसका कोई परिचय नहीं मिलता। डाक्टरने उसे पहले बटाविया और सुराबायाकी राहमें देखा। बादको वह बहुत बड़ी सम्पत्तिकी अधिकारिणी होकर जावाको लौट गई। उसके चरित्रका जो चित्र खींचा गया है, वह ग्रंथकारकी सृष्टि करनेकी निपुणताका परिचय देता है; किन्तु पथेर दावीके इतिहासमें उसका आना एकदम आकस्मिक है और भारतवर्षके स्वाधीनता-आन्दोलनके साथ उसका कोई आन्तरिक लगाव नहीं है। केवल सुमित्राके आने और अन्तर्द्धान होनेमें ही नहीं एकसे अधिक स्थानोंपर ऐसा आभास मिलता है कि जापानने जब कोरियाको हड़प लिया था, उस समय दलके उत्तर-चीनके सेक्रेटरी अहमद दुर्रानी मंचूरियामें पकड़ लिये गये थे। किन्तु इन सब मामलोंके साथ भारतकी स्वाधीनता प्राप्त करनेका सम्बन्ध कहाँ है? जान पड़ता है, बंगाली विप्लवी, उसका साथी पठान, जापान, कोरिया, मंचूरिया—इन सबका सम्मिलन कराकर एक आश्चर्यजनक कहानी गढ़ डालना ही उपन्यास-लेखकका उद्देश्य है। किन्तु चौंका देनेवाली आश्चर्यजनक कहानीको भी सत्य, सजीव होना चाहिए। 'पथेर दावी' उपन्यासका बहुत-सा अंश आर्टके इस अवश्य स्वीकार करने योग्य दावेको पूरा नहीं कर सकता। चमत्कार पैदा करनेकी चेष्टाके कारण कहानी असम्भव और चरित्र अस्पष्ट हो गये हैं।

४

पथेर दावीके सृष्टा सव्यसाचीने आदर्श जीवनकी कल्पना अव्याहत गतिके हिसाबसे, सभी मनुष्य पथके पथिक हैं, इस धारणासे, की है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि सत्यकी उपलब्धि उन्हें एक गतिशील पदार्थके रूपमें हुई है, अर्थात् सत्यको उन्होंने एक गतिशील पदार्थ समझा है । भारतीसे उन्होंने यही बात स्पष्ट करके कही है । वह विप्लवी हैं; जो स्थिर होकर दबाये बैठा है, इसके वह विरोधी हैं । वह केवल राष्ट्र-शक्ति या प्राचीन संस्कार-को ही तोड़ डालना चाहते हों, यह बात नहीं है; सत्यके सम्बन्धमें नई परिकल्पनाका प्रचार भी उन्होंने किया है और इसी नवीन परि-कल्पनाने उनकी सारी प्रचेष्टाको उद्बोधित किया है । वह राजाके आईनको स्वीकार नहीं करते । कारण, वह राजनीतिक विप्लवी हैं, उनका मार्ग हिंसाका मार्ग है; दूसरेको नष्ट करके वह आदर्शतक पहुँचना चाहते हैं, और इस अभीष्टकी सिद्धिके लिए वह कोई भी काम करनेमें कुंठित नहीं हैं । इसके लिए वह चिराचरित नीतिधर्म छोड़नेको तैयार हैं । कारण, उनका विचार है कि हम लोगोंने चिरकालसे नीति कहकर जिसे मजबूतीसे पकड़ रखा है उसे सत्य माननेका कोई कारण नहीं है । उन्होंने भारतीसे स्पष्ट करके कहा है— "तुम लोग कहते हो चरम सत्य, परम सत्य; और ये अर्थहीन निष्फल शब्द तुम लोगोंके निकट बड़े मूल्यवान् हैं । मूर्खोंको बहलानेके लिए इतना बड़ा मन्त्र और कोई नहीं है । तुम सोचते हो कि झूठको ही बनाना होता है; सत्य शाश्वत, सनातन और अपौरुषेय है ? पर यह झूठ है । मिथ्याकी तरह ही मानव जाति रोज रोज इसकी भी सृष्टि करती चलती है । सत्य शाश्वत या सनातन नहीं है ; इसका जन्म है, मृत्यु है । मैं झूठ नहीं कहता, मैं प्रयोजनसे सत्यकी सृष्टि करता हूँ ।"

प्रश्न यह है कि सत्यका स्वरूप कैसा है ? इसका क्या कोई चरम, परम रूप नहीं है ? या प्रतिदिन हर घड़ी इसकी नये सिरेसे सृष्टि होती है ? इसके भी क्या जन्म और मृत्यु हैं ? गतिशील जगत्में क्या ऐसा कुछ नहीं है, जो गतिसे परे हो, जो अभ्रान्त और अपौरुषेय हो ? यदि ऐसा कुछ नहीं है तो मनुष्य

किस चीजकी खोजमें चल रहा है? शरत् बाबूके 'शेष प्रश्न' उपन्यासमें यही प्रश्न विशेष रूपसे अभिव्यक्त हुआ है। इस उपन्यासकी नायिका कमल है। उसका पिता चायके बागका साहब है। मा चरित्रहीन बंगाली विधवा है। आसामके एक क्रिश्चियनके साथ पहले कमलका ब्याह हुआ था। उसकी मृत्युके बाद उसका शिवनाथसे परिचय हुआ, और इन दोनोंका ब्याह शैवमतकी विधिसे हो गया। विवाह-सभामें जो लोग उपस्थित थे, उन सभीने कहा कि विवाहका अनुष्ठान तो कुछ भी नहीं हुआ। ब्याहमें तो भारी धोखाधड़ी रह गई। किन्तु कमलने मनमें कोई सन्देह न रखकर इस धोखाधड़ीको मान लिया। कारण शिवनाथका मन ही अगर उससे हट जाय तो उस पतिको वह अनुष्ठानकी खोखली आवाजसे कैसे बाँध रखेगी? यहींपर हम कमलके मतका मूल सूत्र पाते हैं। वह कहती है—"वह मुझे अंगीकार नहीं करेंगे और मैं इसीसे गर्दन पकड़कर उन्हें स्वीकार कराने जाऊँगी? सत्य डूब जायगा और जिस अनुष्ठानको मैं नहीं मानती उसीकी रस्सीसे बाँधकर पकड़ रखूँगी?" कमलके मतमें सत्यका एकमात्र स्थान मनुष्यके मनमें हैं; आचार-अनुष्ठान आदि मनुष्यकी चिन्ता-धाराका बाहर प्रकट होना भर है। मनके परिवर्तनके साथ उसका परिवर्तन होना चाहिए। और अगर यह न हो तो इन अनुष्ठानोंका कोई मूल्य ही नहीं रहता। इसीसे कमलको उन सब चीजोंके विरुद्ध क्रोध हुआ, जिन्होंने बाहरसे मनुष्यको बाँधनेकी चेष्टा की है। जैसे अतीतकी स्मृति, प्राचीन आदर्श और अनुष्ठानका शासन। इसी कारण किसी भी काममें परिणति या परिणामको ही वह एक मात्र लक्ष्य नहीं कर सकी। उसके निकट "सत्य केवल (जीवनके) चंचल क्षण है, सत्य उसके चले जानेका छन्द-भर है...कोई आनन्द स्थायी नहीं है। हैं केवल उसके क्षणस्थायी दिन। वही तो मानव-जीवनका चरम संचय या पूँजी है। उसे बाँधनेकी चेष्टा करनेसे ही वह मर जाता है। इसीसे विवाहका स्थायित्व है, उसका आनन्द नहीं।" परिणामपर लक्ष्य न होनेके कारण ही कमलके निकट मोहका भी मूल्य है। कारण, जब तक वह रहता है, तब तक वह सत्य है। इसी कारण उसने अजितसे कहा है—"सूर्य ध्रुव है कि नहीं, यह मैं नहीं जानती, किन्तु कुहेलिका (कुहासा) भी मिथ्या प्रमाणित नहीं हुई। यह दोनों ही नश्वर हैं, शायद ये दोनों ही सदासे चले आ रहे हैं। वैसे ही मोह भी भले ही क्षणिक हो; किन्तु क्षण भी

तो मिथ्या नहीं है, क्षण भरका आनन्द लेकर ही वह बार-बार लौट आता है।"

बाहरके शासनको माननेमें कुण्ठित होनेके कारण ही कमल अति संयमके विरुद्ध है। मनुष्यके भीतर स्थित प्रवृत्ति परितृप्तिके बीचसे अपनी अभिव्यक्तिका मार्ग खोजती फिरती है। सामाजिक अनुशासन अभिव्यक्तिकी उद्दाम आकांक्षाको रोकता है, नियमित करता है। कमलने इस अनुशासनको स्वच्छन्द होकर स्वीकार नहीं किया और यह कभी उसके आदर्शका अंग नहीं हो सका। उसका आदर्श आनन्दकी अनुभूति है। इसीसे उसने जहाँ देखा है कि आनन्दका सुधा-पात्र आत्मोत्सर्गके शोषणसे खाली हो गया है, वहीं उसका मन दुःख और खीझसे भर गया है। शिवनाथने उसके साथ प्रतारणा की है, उसे धोखा दिया है; किन्तु उसके विरुद्ध कमलका कोई अभियोग नहीं है। उसकी शिकायत आशु बाबूके विरुद्ध हुई, जिन्होंने मृत पत्नीकी यादमें अपने सारे सुखका त्याग कर दिया है; उसकी शिकायत नीलिमाके खिलाफ है, जिसने पराये घरकी गृहिणी और पराये लड़केकी जननी बनकर अपनेको दूसरेके लिए दे डाला है। और उसका सबसे तीव्र विद्रोह है आश्रमके ब्रह्मचर्यवाले आदर्शके विरुद्ध—जो आदर्श न स्वाभाविक है और न सुन्दर।

यह तो हुआ कमलका मतवाद। इस मतपर वह सम्पूर्ण विश्वास करती है। इसे उसने अपने जीवनमें सत्य बना डालनेकी चेष्टा की है। उसकी प्रथम परीक्षा तब हुई जब शिवनाथने उसे धोखा दिया। शिवनाथको उसने प्यार किया था; लेकिन कुछ दिनके बाद ही उसने शिवनाथकी अर्थ-लोलुपताका परिचय पाया, और उसके बाद अजितके मुखसे सुनकर उसने जाना कि यद्यपि शिवनाथ उससे कह गया था कि वह जयपुर जायगा, तथापि वह वहाँ नहीं गया—आगरेमें ही है और आशुबाबूके घर जाकर रोज गाने बजानेका शगल करता है। इसके बाद उसने शिवनाथके बीमार होनेकी बात सुनी। वह शिवनाथकी सेवा करनेके लिए तैयार हुई, किन्तु आशुबाबूको उसने स्पष्ट करके समझा दिया कि वह शिवनाथके साथ फिर मिलना नहीं चाहती; उन दोनोंमें जो संबंधका विच्छेद हुआ है, वह सामयिक मान-अभिमान या मन-मुटावका फल नहीं है। आशुबाबूके साथ रोगीके घरमें जाकर उसने

देखा कि मनोरमा शिवनाथकी छातीके ऊपर सिर रखकर सो गई है। उसकी सेवा करनेके लिए जाकर कमलने समझ पाया कि शिवनाथको कुछ हुआ नहीं—वह अस्वस्थ नहीं है; आशुबाबूका स्नेह और मनोरमाका निकटतम साहचर्य पानेके लिए ही उसने वह बीमारीका ढोंग रचा है।

कमलने जिस दिन ताजमहलके निकट अपने शैव-विवाहका किस्सा स्नेह और कौतुकके साथ अत्यन्त निर्भर भावसे वर्णन किया था और जिस दिन अजितसे उसे मालूम हुआ कि शिवनाथ जयपुर जानेका बहाना करके आगरेमें ही है, दोनोंमें केवल पन्द्रह दिनका अंतर है। अतएव उसने जो नीड़ (घोंसला) बनाना शुरू किया था, वह बिलकुल ही अचानक नष्टभ्रष्ट हो गया। यह घटना जैसे आकस्मिक, वैसे ही असहनीय अनुमानी जा सकती है। अतएव कमलके मत-वादकी चरम परीक्षा यहींपर हुई। जो बात और किसी स्त्रीको कठोरतम दुर्भाग्य प्रतीत होती, उसीको कमलने अति सहजमें शान्त भावसे ग्रहण किया। जीवनके इस चरम संकटकी घड़ीमें वह रत्तीभर भी विचलित नहीं हुई। शिवनाथके निकटसे उसे जो पाना था, वह उसने पाया है। जब शिवनाथका मन ही उसकी ओरसे फिर गया, तब उसने अनुष्ठानको पकड़े रखना नहीं चाहा; आईनका सहारा नहीं लिया; नीतिकी दोहाई नहीं दी। उसने शिवनाथके प्यारको जैसे बेखटके निःशंक चित्तसे ग्रहण किया था, वैसे ही उसकी प्रतारणाको उसने शिरोधार्य किया—तनिक भी उसके मुँहपर मैल नहीं आया। यहाँतक कि उसने जिस दिन शिवनाथको अकेला पाया, उस दिन जब उसका सारा छल-कपट पकड़ लिये जानेपर भी उस नीचने उसके निकट अपनेको पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा की, तब भी कमलने कोई शिकायत नहीं की, एक बात भी नहीं कही। उस दगाबाजकी प्रतारणाका भण्डाफोड़ करनेका लोभ दबा लिया।

शिवनाथके साथ कमलका सम्बन्ध टूटना उपन्यासकी प्रधान घटना है; इसके द्वारा कमलकी फिलासफी सजीव हो उठी है। कमलने केवल तर्क ही नहीं किया—घटना-विपर्ययके भीतरसे उसका विश्वास और युक्ति सबल और सजीव हो उठी है। इस सम्बन्ध-विच्छेदका पुंखानुपुंखरूपसे वर्णन किया गया है। पहले तो कमलसे अजितको मालूम हुआ कि शिवनाथ उसके साथ नहीं रहता, और यह भी प्रकट हुआ कि वह जयपुर न जाकर आगरेमें ही है और नित्य

आशु बाबूके घर जाकर गाता-बजाता है। इसके बाद अजितने अधिक रात बीते घर लौटकर देख पाया कि मनोरमा उसकी प्रतीक्षामें नहीं बैठी है; बल्कि छायासे ढके हुए एक वृक्षके तले शिवनाथके साथ घुलघुलकर बातें करनेमें लगी हुई है। यह विच्छेद द्वितीय और चरम स्तरपर उस दिन पहुँचा जिस दिन आशुबाबू, कमल और अजितने मनोरमाको शिवनाथकी छातीपर मस्तक रखकर सोते देखा। शिवनाथके घर जाकर कमलने इस असुस्थताकी असलियत जान ली और उन लोगोंकी बातचीतसे यह प्रमाणित हुआ कि उन दोनोंका विच्छेद पूर्ण रूपसे हो गया है। इस कहानीके तीसरे स्तरमें हम देख पाते हैं कि शिवनाथके साथ मनोरमाका ब्याह हो रहा है और उस ब्याहके लिए कमलने अकुण्ठित चित्तसे अपनी सम्मति दी है। समालोचकचूड़ामणि मनीषी अरिस्टोटलका कथन है कि नाटक (तथा उपन्यास) में वर्णित कहानीमें तीन विभाग रहेंगे—आदि, मध्य, अन्त। इस कहानीमें ये तीनों विभाग अत्यन्त सुस्पष्ट और सुन्दर ढंगसे रखे गये हैं। इन्हींके भीतर कमलकी युक्ति और तर्क साकार हुए हैं।

अनेक लोग कहते हैं कि 'शेष प्रश्न' में केवल बातें ही बातें है; इसमें कहानीके अंशका अभाव है। यह मत एकदम भित्तिहीन न होनेपर भी सोलहों आने सच नहीं है। कमलने बहुत अधिक तर्क किया है—बहस की है और एक राजेन्द्रके सिवा सबके मनमें एक भ्रम या संशय उत्पन्न कर दिया है। किन्तु वह तर्क एक गतिशील कहानीके भीतर संगठित हो उठा है। तर्कबहुल प्रचार-मूलक उपन्यासका मानदंड घटनाबहुल जासूसी उपन्यास अथवा शिशुपाठ्य भूतोंकी कहानीके मानदण्डसे भिन्न है। प्रचारमूलक साहित्यकी कहानीको युक्ति-तर्कसे अलग करके नहीं देखा जाता, और उसके युक्ति-तर्कको भी घटनाचक्रसे अलग करनेपर वह प्राणहीन निर्जीव हो जाता है। प्रचार जिसका उद्देश्य हो, ऐसे किसी श्रेष्ठ उपन्यास या नाटकको अच्छी तरह आलोचना करने पर हम देख पाते हैं कि इस श्रेणीके साहित्यमें तर्क और कहानीका सम्पर्क अविच्छेद्य रहता है। वास्तवमें, इस श्रेणीके साहित्यका उद्देश्य कुछ घटनाओंके घात-प्रतिघातके भीतरसे किसी विशेष भावधाराका चित्र खींचना होता है। इस भावसे विचार करनेपर देखा जायगा कि 'शेष प्रश्न' में प्लाटका अभाव या कमी नहीं है।

साधारणतः इस प्रकारके नाटक या उपन्यासमें जैसा प्लाट रहता है, उसकी अपेक्षा इसका प्लाट घटनाविरल नहीं है। ब्लिक इसमें जैसी एक सुशृंखलाबद्ध, सुविन्यस्त कहानी पाई जाती है, वह अनेक उपन्यासोंमें दुर्लभ है।

इस कहानीमें एक बात खटकती है। कमलकी फिलासफीकी जाँच ऐसे एक आदमीके सम्पर्कमें हुई है, जो अत्यन्त नीच और धूर्त है। शिवनाथके पिछले जीवनकी जो कहानी दी गई है, कमलके साथ उसने जो दगा की है, आशु-बाबूके घरमें उसने जो अशान्ति उत्पन्न की है, उससे उसके विरुद्ध उदासीनताका भाव आना या घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उसे तनिक भी मन मैला किये बिदा करनेमें क्षमाशीलता और उदारताका प्रमाण मौजूद है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु कमलने जो आनन्दकी चिरचंचलताका जयजयकार किया है, उसका यह श्रेष्ठ उदाहरण नहीं है। कारण, शिवनाथकी नीचताकी बात जाननेके बाद उसके प्रति कोई भी आकर्षण नहीं रह सकता, और तब उसे त्याग करनेमें कोई भी क्षोभका भाव नहीं आ सकता, बल्कि इससे बोझ उतरनेकी और चैनकी साँस आना ही स्वाभाविक है। कमलके मनकी यथार्थ परीक्षा तब होती, जब शिवनाथ एक ऐसा आदमी होता जो सब प्रकारसे वरणीय है, जिसे कमलने पाकर खोया है और खोकर भी फिर पाना चाहा है। ऐसा होनेपर कमलके हृदयके आवेगके साथ उसकी सचेतन बुद्धिका संघर्ष होता और वहींपर उसके मनका सच्चा विचार होता। रवि बाबूके 'घरे-बाइरे' में भी इसी तरहकी त्रुटि है। डाक्टर श्रीकुमार वंद्योपाध्यायने लिखा है—"सन्दीपके बाहरी राजवेशके भीतरसे अगर चाक मिट्टीका बना शुष्क कंकाल (मृत्तिका ढाँचा) बाहर न निकल पड़ता, उसकी निर्लज्ज भोग-लोलुपताकी बीभत्सता उद्घाटित न होती, अगर वह निखिलेशका योग्य प्रतिद्वन्द्वी कहलाने योग्य होता, तो इस अग्निपरीक्षाका क्या फल होता, कुछ कहा नहीं जा सकता... मानदण्ड निरपेक्ष भावसे हाथमें लेनेपर विचार......सहज न होता।" 'घरे-बाइरे' की समस्या 'शेष प्रश्न' की समस्यासे भिन्न प्रकारकी है; किन्तु दोनों ही उपन्यासोंमें एक ही त्रुटि रह गई है।

अजित और कमलकी प्रेम-कहानी उपन्यासका दूसरा विषय है। अजित भावुक व्यक्ति है; वह सहज ही उच्छ्वसित हो उठता है। अतएव कमलकी ओर उसका आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक है। उसकी वाग्दत्ता प्रणयिनी

मनोरमाने कमलसे दगा की है। अतएव कमलके प्रति उसको स्नेह और समवेदना थी। स्नेह, समवेदना और श्रद्धाने धीरे-धीरे प्रेमका रूप धारण कर लिया। कमलके मनमें भी उसके प्रति प्रेमका संचार हुआ। इस प्रेमके आदान-प्रदानका जो वर्णन दिया गया है, उसमें कोई विशेष शिल्प-चातुरी या कारीगरी नहीं है। पहले दिन कमलने भोजन कराकर जो सब बातें कहीं, वे उसकी प्रगल्भताका परिचय देती हैं। कमलके मतवादमें उसके दो पहलू या रुख हैं; एक अतीतके बन्धनसे छुटकारा देना चाहता है और दूसरेका लक्ष्य वर्तमानके सुखभोगपर है। एक शिवनाथके प्रति व्यवहारमें जाँचा गया है और दूसरेका परिचय हमें अजितके साथ प्रणयके आदान-प्रदानमें मिलता है। प्रथम कहानीमें त्रुटि रहने पर भी, कमलका मत उसके आचरणके बीच स्पष्ट हो उठा है। उसे शिवनाथके ऊपर क्रोध नहीं है; बदला लेनेकी इच्छा नहीं है। उसे शिवनाथके व्यवहारसे धक्का पहुँचा है; लेकिन उसके चित्तकी नवीनता, सजीवता तथा निर्भयता विनष्ट नहीं हो गई। उसने शिवनाथसे जो पाया है, वही उसके लिए यथेष्ट है। और भी क्यों न पाया गया—यह सोचकर पछतानेमें भी उसे लज्जा मालूम होती है। किन्तु अजितके साथ उसके व्यवहारमें वह सजीवता नहीं है; उसके प्रणय-निवेदनमें प्रगल्भता है, किन्तु उल्लास नहीं है; आग्रह है, किन्तु उत्साह नहीं है। अजित मानों असहाय कमलका आश्रय है; उच्छ्वसित प्रणयका फुहारा नहीं है। देह और मनकी परिपूर्ण जवानीका जो जयगान उसने किया है, उसके व्यवहारमें उसके उपयुक्त उन्मुक्तता नहीं है, भाषामें वह आवेग नहीं है। वह जैसे बहुत-ही थकी हुई है—जिसने अतीतके बन्धनको अस्वीकार किया है, उसे भविष्यके सम्बन्धमें शंकाहीन साहस और आशा नहीं है; जिसने चिर-चंचलताकी विजय घोषणा की थी, वह जैसे अब थमना चाहती है। जो सुख उसने पाया है, उसे वह जैसे ऐश्वर्यकी तरह भोग नहीं कर सकती, उसे सम्बलकी तरह मजबूतीसे पकड़ रखना चाहती है। उपन्यासके उपसंहारमें उसने अजितसे कहा है—"अपनी दुर्बलतासे ही मुझे बाँध रखो। मैं इतनी निष्ठुर नहीं हूँ कि तुम जैसे आदमीको संसारमें बहा जाऊँ। भगवान्को तो मैंने माना नहीं, नहीं तो उनसे प्रार्थना करती कि दुनियाके सभी आघातोंसे तुमको बचाती हुई ही मैं एक दिन मर सकूँ।"
यह वही कमल है!

शिवनाथ-कमल-अजितकी कहानी उपन्यासका मूल उपजीव्य या विषय है। किन्तु इसके सिवा और भी दो-एक विषय हैं, जो मुख्य न होनेपर भी उल्लेखके योग्य हैं। कमलको अनेक अवस्थाओंमें अनेक परिस्थितियोंमें डालकर औपन्यासिक शरत्‌बाबूने उसके मतवादकी अनेक शाखा-प्रशाखायें और उसकी बुद्धि तथा अनुभूतिकी क्रिया-प्रतिक्रियायें दिखाई हैं। उसके मनकी गति जैसी द्रुत है वैसी ही विचित्रतापूर्ण भी है। ताजमहलकी कलाको उसने शिरोधार्य किया है - स्वीकार किया है; किन्तु चिर-विरही (शाहजहाँ) की " भूला नहीं, भूला नहीं, भूला नहीं तुमको प्रिये ! " यह वाणी उसके निकट गौरव-हीन—प्रायः अर्थ-हीन है। उसके अन्य कुछ मतोंकी बात पहले कही चुकी है। तो भी यहाँपर दो-एककी पुनरुक्ति अवान्तर विषय न होगी। हरेन्द्रके ब्रह्मचर्य-आश्रमकी निष्फल दारिद्र्य-चर्चापर उसने उसकी बहुत तीक्ष्ण समालोचना की, और जान पड़ता है, उसीके फलस्वरूप वह आश्रम उठ गया। आशुबाबूकी स्त्री मर चुकी है; मृत स्त्रीकी स्मृति उनके लिए सजीव है। इसी स्मृतिके कारण वह वर्तमानके सभी प्रकारके भोगोंसे विरक्त हैं, कमलने इसे मनकी जड़ता मानकर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है। नीलिमा बाल-विधवा है। वह अपने पतिकी पुण्य-स्मृतिको हृदयमें धारण किये पराये घरकी निःस्वार्थ गृहिणी और पराये बेटेकी निःस्वार्थ जननी बनी है। कमलकी दृष्टिमें यह गृहिणीपनेका मिथ्या अभिनय है, इसीसे वह इसे कोई भी सम्मान नहीं देना चाहती। यह अद्‌भुत हो सकता है, किन्तु अच्छा नहीं है। आशुबाबू और नीलिमाके आदर्शके साथ कमलका आदर्श नहीं मिलता; किन्तु यह होनेपर भी ये उसकी ओर आकृष्ट हुए हैं और उसने भी इन लोगोंके प्रति आसक्तिका अनुभव किया है। कमल किसीसे तनिक भी सहायता लेना नहीं चाहती; किन्तु दारिद्र्यसे पीड़ित होनेपर आशुबाबूके आगे उनकी बेटीकी तरह हाथ फैलानेमें उसे आपत्ति नहीं है। नीलिमाको वह प्यार करती है और उसने स्वयं भी उसका प्यार पाया है। यह स्नेहका लेन-देन मनके गहरे मेलपर स्थापित नहीं है, इसीसे इसमें भावप्रवणताकी अतिशयता है। पहलेके किसी परिच्छेदमें हमने दिखाया है कि शरच्चन्द्र अक्सर बाहरके संघर्षको प्रधानता देकर भावकी अतिशयता (Sentimentality) की सृष्टि करते हैं। यहाँ भी उन्होंने बाहरके मेलको बड़ा करके दिखाया है, जिससे अतिशयोक्ति दोष आगया है। भावावेग (Sentiment) और भावातिशयता (Sentimentality) के बीच

एक अनिर्देश्य अथ च सुस्पष्ट सीमा-रेखा होती है, उसकी रक्षा नहीं की गई। खास करके आशुबाबूका कमलसे अपनेको काका बाबू सम्बोधन करनेका अनुरोध, कमलकी उसमें सम्मति और असम्मति, आशुबाबूके हाथमें कमलका हाथ देना, नीलिमा और कमलका संभाषण और आदर आप्यायन, इन सब छोटी-छोटी बातोंमें बननेकी गंध आती है।

इस उपन्यासमें आर्टकी दृष्टिसे सबसे कमजोर कहानी नीलिमाकी है। कमलके साथ उसके सौहार्दका चित्र जो दिया गया है, उसकी कोई उल्लेख-योग्य विशेषता नहीं है। उसमें स्नेहके आदान-प्रदानका बाहरी आडम्बर है; किन्तु हृदयके भीतरकी गहरी तहमें उसकी नींव खोजे नहीं मिलती। नीलिमाके अपने मनमें जो परिवर्तन आया है, आशु बाबूके प्रति उसके मनमें जिस भावका उदय हुआ है, वह अत्यन्त अप्रत्याशित है। वह केवल अतर्कित और अशोभन ही नहीं, अविश्वासके योग्य भी है। नीलिमाकी दशा सम्पूर्ण रूपसे करुण बनानेके लिए ग्रंथकारने अविनाश बाबूका एक विवाह करा दिया है। जो अबतक विपत्नीक रहे, वह एकाएक स्वास्थ्य सुधारनेकी खोजमें जाकर अपने एक आत्मीयके पीछे पड़ जानेसे फिर ब्याह कर बैठे। ग्रंथकी मूल कहानीके साथ नीलिमाका कोई लगाव नहीं है, अथ च उसे खूब एक बड़ा स्थान— बहुत जगह दी गई है। उपन्यासके इस अंशको यथेष्ट चित्ताकर्षक बनानेके लिए ही ये सब अद्भुत बातें कराई गई हैं।

अक्षयका परिवर्तन इसी श्रेणीकी घटना है। उपन्यासके प्रथम अंशमें कमलकी विरुद्धता करनेके लिए अक्षयकी जरूरत हुई थी और इस उपन्यासमें जो हास्यरस है, उसके मूलमें अक्षयकी संकीर्णता और आवश्यकतासे अधिक शुचिता है। इस तरहके चरित्रको अधिक देर तक आगे रखा नहीं जा सकता। कारण, इस श्रेणीके लोग झुकाये नहीं जा सकते, वे बार-बार एक ही तरहकी बात कहेंगे और एक ही तरहका काम करेंगे। इसीसे कुछ समय बाद इनके काम वही घिसे-पिटे और नीरस हो उठते हैं। इसके बाद कमलने जब सबके चित्तको पूर्णरूपसे जीत लिया है, तब अक्षय रह कर भी कुछ भी नहीं कर सका। वह केवल लड़ता-झगड़ता था और फटकार पाता था। इन सब कारणोंसे उसे उपन्यासके उत्तरार्धसे हटा दिया गया था। उपसंहारमें उसे फिर लाया

गया। मलेरिया भोगकर और गाँवकी बुरी दशा देखकर इस रुचि-वागीशका मन नरम हो गया। उसने कमलसे स्नेह और पत्रकी भिक्षा माँगी और कहा कि कमलकी बात वह प्रायः ही सोचेगा। यह वही अक्षय है! उसका यह परिवर्तन केवल आकस्मिक ही नहीं है, यह सम्भावनाकी सीमाको भी नाँघ गया है।

आप कहेंगे कि असम्भव क्या कभी सम्भव नहीं होता? प्रतिदिन क्या हम ऐसी घटनाएँ होते नहीं देखते, जो घटित होनेके पहले विश्वास न करने योग्य जान पड़ती थीं? यहाँ यह स्मरण करा देना अच्छा है कि आर्ट और जीवनके बीच एक मौलिक अन्तर है। व्यावहारिक जीवनके सत्यको सम्भावनाके योग्य होनेकी जिम्मेदारी नहीं लेनी पड़ती। वह आँखोंके सामने घटित होता है; उसे स्वीकार कर लेना होता है। किन्तु आर्टका मूल मनमें है, व्यावहारिक जीवनमें नहीं। यहाँ केवल घटनाके घटित होनेसे ही काम नहीं चलेगा, उसे विश्वासके योग्य भी होना होगा। सम्भवकी सीमा वह नहीं नाँघ सकता। आर्टका एक प्रधान उद्देश्य है सन्देहको निवृत्त करना या पैदा न होने देना, अविश्वासको उठने न देना। उत्तर-पश्चिम भारतमें भारी भूकम्प हो गया। इसका इन सब प्रश्नोंके साथ कोई लगाव नहीं है कि यह भूकम्प होना उचित था कि नहीं? पारिपार्श्विक अवस्थाके साथ इसका मेल बैठता है कि नहीं? अथवा इसकी प्रत्याशा की गई थी कि नहीं? किन्तु आर्टमें अप्रत्याशित, अविश्वसनीय घटना उपस्थित करनेसे ही काम न चलेगा, शिल्पीको यह दिखाना होगा कि यह अतर्कित होनेपर भी सम्पूर्ण आकस्मिक नहीं है। इसका बीज पारिपार्श्विक अवस्थामें मौजूद था और लोकचक्षुसे ओझल रहकर वह सजीवन हुआ था—पनपा था। इस अवश्य स्वीकार्य या मान्य मानदण्डद्वारा विचार करनेसे देखा जायगा कि नीलिमाकी कहानी और अक्षयका परिवर्तन अत्यन्त नाटकीय, अविश्वसनीय और असंभव है।

उपन्यासमें एक और चरित्र है जो एक हिसाबसे सबकी अपेक्षा उल्लेख-योग्य है। वह है राजेन्द्र। कमलके व्यक्तित्वके आगे और सभीको झुकना पड़ा है, केवल झुका नहीं तो एक राजेन्द्र, और कमलने समझा है कि वह और मर्दोंसे अलग है। उसके लिए रमणीका कोई विशेष आकर्षण नहीं है; किसीके गले

पड़कर वह हेलमेल करना नहीं चाहता, अपने सुनिर्दिष्ट मार्गसे वह किसी भी कारणसे हटता नहीं। राजेन विप्लवी है, किन्तु उपन्यासमें विप्लववादकी कोई बात नहीं है। विप्लवी मनुष्य औरोंके संस्पर्शमें आकर कैसा व्यवहार करता है, साधारण जीवनमें उसका आचरण कैसा होता है, यही उपन्यासमें दिखाया गया है। राजेन्द्रका इतिहास अद्भुत है, पर अस्वाभाविक नहीं। जीवनके चौड़े मार्गको छोड़कर जो लोग गली-कूचोंमें घूमते फिरते हैं, उनके कार्यकलाप और सबके कार्योंसे जुदे होते हैं। राजेन्द्रका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर है। वह विना प्रयोजनके बोलता नहीं—बात नहीं करता, अपनेको जाहिर नहीं करता; किन्तु कर्त्तव्यपथसे किसी कारणसे भी विचलित नहीं होता। कमलकी मित्रताको उसने अस्वीकार नहीं किया, ग्रहण भी नहीं किया। उसकी सहायता उसने पाई है, किन्तु कमलके द्वारा वह रत्ती-भर भी प्रभावित नहीं हुआ। उसका आदर्श कमलके आदर्शसे भिन्न है; किन्तु तर्कमें परास्त करना तो दूर, कमल उससे कभी तर्क करनेके लिए प्रस्तुत भी नहीं हो सकी। केवल एक बार राजेन्द्रने अपना मत प्रकट किया है; तभी कमलने समझ लिया है कि वह न्यायके तर्क और भावके विलाससे बहुत दूर है। वह पराये लिए आत्मोत्सर्ग करनेको सदा प्रस्तुत है। इस हिसाबसे वह आदर्शपंथी है। अथ च जिनके लिए वह काम करता है, अपना जीवन खतरेमें डालता है, उनके दुःखसे वह हतोत्साह नहीं हुआ। वह रोनेमें, आँसू बहानेमें प्रवीण साधारण बंगाली नहीं है। दीन, नीची जातिके, प्रपीड़ितोंके जीवनका स्वरूप वह जानता है, वह वस्तुतांत्रिक, रियलिस्ट (यथार्थवादी) है। वह स्वयं आदर्शवादी होकर भी वस्तुतांत्रिक है, इसीसे वह हास्य-रसिक है। उसकी हास्यरसकी अनुभूति आदर्शवाद और वस्तुतांत्रिकताके बीच संयोगका सेतु है। राजेनके हास्यरसके भीतर कठोर व्यंग्य है; तथापि इस रसबोधने ही जीवनके बोझको हल्का कर दिया है। बहस न करके भी उसने कमलको समझा दिया है कि उसका मतवाद कितना अन्तःसारशून्य, कितना खोखला है। उसने दिखाया है कि मन बाहरके अनुष्ठानका त्याग करके चल नहीं सकता; जो मनका मेल मतकी द्वैधताको नहीं मानता, अग्राह्य करता है, वह केवल भावका विलास है। कमलके मतानुसार सत्यकी नींव मनमें है, अनुष्ठान आचार बाहरी प्रकाशनमात्र है। राजेन्द्रका वक्तव्य यह है कि बाहरी अभिव्यक्तिके

सिवा सत्यका कोई आधार नहीं है। अनुष्ठानकी सहायताके विना सत्य अपनेको प्रकाशित और स्थापित नहीं कर सकता। प्राचीन भारत अथवा नवीन यूरोपकी दोहाई देकर उसने अपने मतका समर्थन नहीं किया। उसका मत अपने जीवनकी गहरी नींवके ऊपर स्थापित हुआ है। इसीसे कमल उसके आगे झुकी, उसे नहीं झुका सकी।

और एक आदमीका उल्लेख न करनेसे यह आलोचना असम्पूर्ण रह जायगी। वह हैं आशुबाबू। उपन्यासकी मूल कहानीके साथ उनका नाममात्रका लगाव है—यह भी कह सकते हैं कि लगाव है ही नहीं। तथापि उनकी प्रशान्त हँसीसे यह उपन्यास जगमगा उठा है। इस उपन्यासमें नाना प्रकारके चरित्रोंका समावेश हुआ है—गुणी अथ च चरित्रहीन शिवनाथ, ब्रह्मचारी हरेन्द्र, विप्लवी राजेन्द्र, भावप्रवण अजित, शुद्धाचारिणी हिंदू विधवा नीलिमा और विद्रोही कमल। ये सब विभिन्न प्रकृतिके लोग हैं; किन्तु आशुबाबू सबके मनकी बात समझे हैं; सभीको उन्होंने प्यार किया है, सभीकी श्रद्धा समान भावसे प्राप्त की है। उनके मनकी प्रशस्तता असाधारण है, इसीसे वे सबके हृदयमें समान भावसे प्रवेश कर सके हैं। किसी आदमीके ऊपर उनके मनमें कोई विरुद्ध भाव नहीं है। कमलने बार बार उनके आदर्शको चोट पहुँचाई है—आघात किया है, उनके मनको 'बूढ़ा हो गया है' कहकर तुच्छ ठहराया है, पर वह कमलकी बात बहुत सहजमें समझ गये हैं, उसको स्नेह किया है, उसके मतवादको शिरोधार्य न कर सकनेपर भी स्वीकार कर लिया है। विप्लवी राजेन्द्रको उन्होंने बहुत कम देखा है, किन्तु उसके ऊपर भी उनकी अपार श्रद्धा और ममता है। वह स्वयं विलायत हो आये हैं और पाश्चात्यशिक्षाप्राप्त हैं। तथापि भारतीय संस्कृतिपर उनकी अपार श्रद्धा है। स्वयं स्वर्गवासिनी स्त्रीकी यादको हृदयमें धारण करके एकनिष्ठ प्रेमका आदर्श उन्होंने दिखाया है और कमलको सर्वान्तःकरणसे आशीर्वाद देनेकी चेष्टा की है। बेलाके विवाह-विच्छेदमें उन्होंने सम्मति दी है; यहाँ तक कि शिवनाथके साथ अपनी बेटीका विवाह कर देनेमें भी आपत्ति नहीं की।

---

* केवल अक्षयको वह डरते हैं। कारण, अक्षयका मन बहुत संकीर्ण है और वह दूसरोंके दोष ढूँढ़ा करता है। पर अक्षयसे भी उनको कोई विद्वेष नहीं है।

उनके हृदयकी प्रशस्तता या उदारताके साथ और एक बात जुड़ी हुई थी और वह था वैराग्य भाव। वह विपत्नीक थे, ऐश्वर्यशाली होकर भी भोगके कीड़े नहीं थे। संसारके भीतर रहकर भी वह जैसे संसारकी सब बातोंसे बहुत ऊपर थे। कोई कालिमा या जड़ता उन्हें स्पर्श नहीं कर सकी। इसीलिए सब बातोंका माधुर्य वह ग्रहण कर सकते हैं, अथ च किसी विषयमें ही वे आबद्ध नहीं रहते। यह वैराग्य होनेके कारण ही वह बहुत गहरे शोककी स्मृति हर क्षण, हर घड़ी लादे रहकर भी सदा प्रफुल्लचित्त रहते थे, और कठिन आघात पाकर भी जो वह मनोरमाको क्षमा कर सके थे, उसमें भी उनके इस वैराग्यका परिचय प्राप्त होता है। वह सबसे अधिक विचलित हुए थे नीलिमाके व्यवहारसे। इसका एक कारण यह है कि इसमें उनके वैरागी मनने एक नये बन्धनका चिह्न देखा था। आशु बाबूकी हँसी प्रभातके प्रकाशकी तरह उज्ज्वल, उसीकी तरह शुभ्र और पवित्र है, और उसीकी तरह समान भावसे सभीको प्रफुल्लित करती है। प्रभातके प्रकाशकी तरह ही वह दूरसे—बहुत दूरसे आती है।

८—छोटी कहानियाँ

छोटी कहानीका दायरा छोटा होता है। अतएव उसमें किसी एक ही घटनाको प्रधानता दी जाती है। उसमें चरित्रका विस्तृत विश्लेषण करना अथवा घटना-परम्पराके भीतरसे किसी कहानीकी परिणतिका चित्र खींचना संभव नहीं। कहानी-लेखक किसी एक घटनाको केन्द्र करके अपनी कहानीको सजाता है, पारिपार्श्विक अवस्थाके ठीक उसी रुखकी ओर पाठककी दृष्टिको खींचता है, जो उस केन्द्रीय घटनाके साथ जुड़ी हुई है। इसमें चरित्रकी भी केवल आंशिक अभिव्यक्ति, अर्थात् चरित्रके किसी एक अंशकी अभिव्यक्ति ही की जा सकती है। अतएव छोटी कहानीमें एक रसघन निबिड़ता और ऐक्य है, जो किसी लम्बे उपन्यासमें नहीं पाया जाता।

शरत्‌चन्द्रने अपने श्रेष्ठ उपन्यासोंमें नारी-हृदयके विचित्र और जटिल द्वन्द्वका चित्र खींचा है। इस द्वन्द्व या संघर्षकी अभिव्यक्ति अनेक छोटी-बड़ी घटनाओंके बीच हुई है; पारिपार्श्विक अवस्थाके परिवर्तनके साथ-साथ इस संघर्षका स्वरूप बदला है और इसीने पारिपार्श्विक अवस्थाका नियंत्रण किया है। इस प्रकारका संघर्ष छोटी कहानीके लिए उपयोगी नहीं होता। कारण संघर्षका प्रधान लक्षण यह है कि वह बहुत लम्बा चलता है और उसका पुंखानुपुंख विश्लेषण ही उपन्यासकी विशेषता समझी जाती है। राजलक्ष्मीके साथ श्रीकान्तकी भेंट अचानक हुई थी; किन्तु उसके बाद राजलक्ष्मीके मनमें अनेक भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया जो चलने लगी, वह जैसी विचित्र है, वैसी ही लम्बी-चौड़ी है। इस कहानीके किसी अंशमें आकस्मिकता या सम्पूर्णता नहीं है, जिसकी मार्फत यह छोटी कहानीका विषय बनाया जा सके। शरत्‌चन्द्रकी प्रतिभाका उपयुक्त वाहन बड़ा उपन्यास है, छोटी कहानी नहीं।

कभी कभी शरत्चन्द्रने एक छोटी कथाका सहारा लेकर ऐसी कहानी लिखी हैं, जो उपन्यासके लिए ही समधिक उपयोगी थी। ऐसी कहानियोंमें छोटी कहानीकी संक्षिप्तता तो है, किन्तु उसकी विशेषता जो होती है, वह नहीं है। इनका कलेवर छोटा है; कारण ग्रन्थकार एक लम्बे उपन्यासको संकीर्ण संकुचित करना चाहते हैं। हमें जिस विस्तृत विश्लेषणकी माँग है, वह उसे देनेको तैयार नहीं हैं। उनकी छोटी कहानियोंमें 'अन्धकारमें आलोक' ने प्रसिद्धि पाई है, यद्यपि उसका आख्यान-भाग उपन्यासके लिए अधिक उपयोगी है। ग्रन्थकारने कहानीका आरम्भ धीरे धीरे किया है। बिजलीके प्रति सत्येन्द्रनाथके मनमें जो प्रेम उत्पन्न हुआ है, उसका चित्र बहुत ही सुन्दर रूपसे अंकित हुआ है। किन्तु बिजलीके घरमें दोनोंका जो मिलन हुआ, उसके वर्णनमें मौलिक त्रुटि दिखाई देती है। सुरापानसे उन्मत्त बाईजीने पहले तो सत्येन्द्रनाथको बहुत बनाया, मजाक किया, उसे स्वाँग बनाया, अभिनयके ढंगसे घुटने टेककर 'वैष्णव-पदावली' का "आजु रजनी हम भागे पोहाइनु पेखनु पियमुखचन्दा" पद गाकर सत्येन्द्रकी पद-रज माँगी। इस तरुण युवकके प्रणयकी नवीनता, निष्कपटता और उसके मनकी पवित्रतापर नशेमें बेसुध रमणीकी तनिक भी दृष्टि नहीं गई। उसने ठट्ठा करते हुए ही अपनी दासीसे सत्येन्द्रके लिए खानेके लिए कुछ लानेकी बात कही; किन्तु ज्यों ही उसने देखा कि सत्येन्द्र उसका छुआ हुआ अथवा उसका दिया हुआ खानेको तैयार नहीं है, त्यों ही उसके मनमें एक गहरा परिवर्तन आ गया। वह चुलबुलापन, हँसी-ठट्ठा और वह निर्लज्जता चली गई, और मदिराके मदसे लड़खड़ाती हुई उसकी आवाजमें अपूर्व मिठास आ गई। यह परिवर्तन आकस्मिक, अद्भुत और संभावनासे परे है।

ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है कि मानव-हृदयका परिवर्तन युक्ति-शास्त्रके अनुशासनको मानकर ही चलेगा; किन्तु जो परिवर्तन अचानक आया, वह धीरे-धीरे किस तरह सहज हो पड़ा, इसका कहानीमें वर्णन होना चाहिए, जो नहीं है। राजलक्ष्मीके लिए पियारी बाईजीका बाना एक बाहरका आवरण मात्र था, तो भी राजलक्ष्मी उसे एक ही दिनके लिए भी सम्पूर्ण रूपसे नहीं छोड़ सकी। बिजली बाई तो सचमुच 'बाईजी' थी। कहानीमें जितना अचानक इस परिवर्तनका आना वर्णन किया गया है, उतना अकस्मात् वैसा ही

परिवर्तन किसी बाईजीके जीवनमें आना सम्भव है कि नहीं, ये सब प्रश्न अपने आप मनमें उठते हैं। अगर इस तरह यह परिवर्तन आना सम्भव ही हो, तो इसे अपना लेनेमें—अभ्यस्त जीवन-यात्राका परित्याग करने पर भी—अभ्यस्त विचार और अभ्यस्त मार्ग छोड़नेमें समय लगेगा। कहानीमें यह कुछ भी नहीं दिखाया गया। कहानीके अन्तिम भागमें हम बिजली बाईकी सर्वत्यागी मूर्ति देखते हैं। जिस विस्तृत विश्लेषणकी सहायतासे यह परिवर्त्तन स्पष्ट और विश्वसनीय होता, वह एक बड़े उपन्यासमें ही सम्भव था, स्वल्प-परिसर छोटी कहानीमें इसके आभासमात्रकी सूचना दी जा सकती है। बिजलीका मदसे उन्मत्त और लालसासे पंकिल जीवन, उसके भीतर यथार्थ प्रेमका पूर्वानुराग, प्रत्याख्यानसे आहत प्रेमकी वेदना, व्यर्थ प्रणयिनीकी कातरता और अनुतप्त पतिताका त्याग—इन सब विचित्र और परस्परविरुद्ध भावोंका चित्र एक छोटे-से परिच्छेदमें खींचा गया है। जो उपन्यासमें सुन्दर स्वाभाविक होता, वही छोटी कहानीमें आकस्मिक और अतिनाटकीय हो गया है।

'पथ-निर्देश' और एक छोटी कहानी है। हेमनलिनीके साथ बिजली बाईकी चरित्रगत समानता नहीं है। इन दोनोंके जीवनकी धारा भी विभिन्न है। मगर दोनोंकी ही कहानी छोटी कहानीके लिए उपयोगी नहीं है। गुणीन्द्रके साथ हेमनलिनीके प्रणयकी आलोचना और एक जगह की गई है। यहाँपर केवल एक बात कहनेका प्रयोजन है। गुणीन्द्रके घरमें हेमनलिनीका आश्रय पाना, उसके साथ एकत्र पढ़ने-लिखनेका अभ्यास, उसके मनमें प्रणयका संचार, उसका विवाह, उसका वैधव्य और उसका अपना यह मत जताना कि विवाहका कोई मूल्य नहीं, गुणीन्द्रका प्रेम-प्रस्ताव और उसका प्रत्याख्यान, उसका ससुरालको फिर लौटना और गुणीन्द्रके घरमें फिर लौटकर आना—ये सब घटनाएँ और विविध भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया इतनी द्रुतगतिसे हुई है कि पुस्तक पढ़नेके बाद अन्तमें सारी कहानी ही अस्पष्ट मैजिक लाल्टेनसे दिखाये जानेवाले छायाचित्र-सी जान पड़ती है। हेमनलिनी कोई सजीव मनुष्य नहीं जान पड़ती। जान पड़ता है, वह एक कलकी पुतली है; फूँक भर देनेसे एक बार इधर और एक बार उधर आन्दोलित होगी। किरणमयी, अचला, राजलक्ष्मी—इनके जीवनका इतिहास हेमनलिनीकी कहानीसे कम विस्मयजनक

नहीं है; किन्तु विस्तृत और सूक्ष्म विश्लेषणके कारण इन सब रमणियोंके भाग्यका पलटना सम्भवकी सीमाके बाहर नहीं जा सका। 'पथ-निर्देश' छोटी कहानी है। उसमें लम्बे वर्णन, सूक्ष्म विश्लेषण और घटना-बहुल होनेका अवकाश नहीं है। छोटी कहानीकी अपरिहार्य संक्षिप्तताके कारण कहानीकी विशेषता विकसित नहीं हो सकी।

शरत्चन्द्रकी प्रथम पुस्तक 'काशीनाथ'* है। इसमें जो सब कहानियाँ हैं, उनमें उनकी प्रतिभाके पूर्ण विकासकी सूचना मिलती है। यहाँ भी नारीके प्रति वही गहरी सहानुभूति, वही स्पष्ट, सरल, अथ च अति मधुर प्रकट करनेका ढंग या भाव व्यक्त करनेकी शैली है। किन्तु इन छोटी कहानियोंमें जो सब आख्यायिकाएँ हैं, वे सुदीर्घ उपन्यासमें ही अच्छी लगतीं। 'प्रकाश और छाया,' 'मन्दिर' और 'अनुपमाका प्रेम' इन तीनों कहानियोंमें निषिद्ध प्रेमकी विशुद्धताका चित्र खींचा गया है। चरित्रोंकी सृष्टिमें शरत्चन्द्रकी प्रतिभाकी छाप है। किन्तु इस प्रतिभाकी परिपूर्ण अभिव्यक्ति विस्तृत विश्लेषण चाहती है। स्वल्प-परिसर छोटी कहानीमें ऐसा विश्लेषण असंभव है। यहाँपर एक केन्द्रीय घटनाका सहारा लेनेकी जरूरत है। उल्लिखित कहानियाँ किसी विशेष घटनाको केन्द्र करके संगठित नहीं हुई हैं। जान पड़ता है, इनमेंसे प्रत्येकके भीतर एक सुदीर्घ उपन्यासको संक्षिप्त कर दिया गया है और छोटी घटनाएँ छोड़ दी गई हैं। आख्यायिकाका मुख्य अंश भी केवल आभासमें ही कह दिया गया है। इस कारण इनके चरित्र भी परिपूर्ण भावसे खिल नहीं उठे और कहानियाँ भी लंबे उपन्यासका संक्षिप्तसार-सी जान पड़ती हैं। 'प्रकाश और छाया' का आरंभ यज्ञदत्त और बालविधवा सुरमाके अवैध प्रणयको लेकर हुआ है। यह चित्र अतिसुन्दर है—इनका संबंध स्नेहसे, आनन्दसे भरपूर है; किन्तु उसमें विषादकी छाया भी है। सुरमा समझती है कि यज्ञदत्त उसके लिए अपना जीवन व्यर्थ कर रहा है। इस व्यर्थतासे छुटकारा पानेके लिए वह यज्ञदत्तका ब्याह कर डालनेके लिए व्यग्र होती है। पर इस ब्याहमें उसका मन एक साथ उत्साह और निराशासे

* १ काशीनाथ पुस्तकमें 'प्रकाश और छाया,' 'अनुपमाका प्रेम' और 'मन्दिर' ये तीन कहानियाँ भी शामिल थीं।

भर गया। इन परस्परविरुद्ध प्रवृत्तियोंकी लुकाचोरीसे चित्र बहुत सुंदर हुआ है। वह स्वयं आग्रहके साथ यह संबंध लाई है; किन्तु इसमें यज्ञदत्तका भी उत्साह देखकर निराशासे उसका मन भर गया है। यहाँपर सावित्री, राजलक्ष्मी आदि चरित्रोंका पूर्वाभास मिलता है। किन्तु इस कहानीका अन्तिम भाग प्रथमाद्धकी तुलनामें निकृष्ट हो गया है। विवाहके बाद ही यज्ञदत्त समझ गया है कि उससे बड़ी भारी भूल हो गई है। उसे केवल यही जान पड़ा है कि उसने अपराध किया है और सुरमा उसे प्राणपणसे क्षमा कर रही है। इसके बाद यज्ञदत्त सुरमासे दूर ही दूर रहा है। उसने पतिकी जिम्मेदारी और प्रेमीके कर्त्तव्यके बीच सामंजस्य बनाये रखनेकी चेष्टा की है; किन्तु यज्ञदत्त तो स्त्रीका केवल भर्ता ही नहीं है, उसके मनमें क्या अपनी पत्नी अतुलकुमारीके प्रति कोई आकर्षण ही नहीं हुआ ?—उस आकर्षणके साथ ही सुरमाके प्रति प्रेमका यथार्थ संघर्ष है। यज्ञदत्तके मनमें दोनों रमणियोंके प्रति जो परस्पर-विरुद्ध आसक्ति पैदा हुई होगी, उसका कोई परिचय इस कहानीमें नहीं है। इस आकर्षणका चित्र खींचनेके लिए मनस्तत्त्वके सूक्ष्म विश्लेषणकी आवश्यकता है; पर छोटी कहानीमें उसके लिए अवकाश नहीं है। इसी कारण कहानीके अन्तका दृश्य अतिनाटकीय हो गया है।

'मन्दिर' में श्रेष्ठ आर्टका परिचय मिलता है। बचपनमें बालिकाके मनमें देवता और देवमन्दिरके प्रति जो आकर्षण जाग उठा है, उसने किशोरावस्था और जवानीमें बढ़कर प्रणयकी आसक्तिका विरोध किया है। फिर ये दोनों प्रवृत्तियाँ एकमें गुँथ गई हैं और एकने दूसरीको परिपुष्ट किया है। मन्दिरके प्रति अनुराग ही अपर्णाकी पतिपर प्रीतिका विघ्न बन गई थी और शक्तिनाथसे उसकी भेंट मन्दिरमें ही हुई थी; शैलेश्वरके मन्दिरमें तिलोत्तमा और जगत्सिंहके मिलनकी तरह। यह मिलन अकस्मात् नहीं हुआ। कारण, अपर्णा मन्दिरकी पुजारिन है और शक्तिनाथ उस मन्दिरका पुजारी। और एक ऐक्य भी ध्यान देने योग्य है। अपर्णा दो पुरुषोंके संस्पर्श या लगावमें आई थी; दोनोंका सम्भाषण सुगन्ध-पदार्थका उपहार देनेमें चरम सीमाको पहुँच गया था और अपर्णाने दोनोंके उपहारको स्वीकार नहीं किया था। केवल अपर्णाके चरित्रकी अभिव्यक्ति ही सुंदर हुई हो, यह बात नहीं है, इस कहानीका गठन-कौशल भी निर्दोष है। कोई-कोई अवश्य इस अतिरिक्त कौशलकी निन्दा करेंगे;

कहेंगे, यहाँ सब कुछ जैसे एक नियमसे बँधा हुआ है, कहीं भी सुशृंखलाका अभाव नहीं है, कहीं कुछ अप्रत्याशित घटना नहीं हुई। इस कहानीके सम्बन्धमें और भी एक आपत्ति उठाई जा सकती है। इसमें यह स्पष्ट नहीं हुआ कि शक्तिनाथके प्रति अपर्णाके मनमें ठीक किस भावका संचार हुआ था। यह नहीं समझ पड़ता कि उसमें कितना स्नेह, कितनी करुणा, कितनी प्रीति और अन्य सब भावोंकी आड़में कितना प्रेम छिपा था। शक्तिनाथकी मृत्यु कहानीकी अनिवार्य परिणति नहीं है। जान पड़ता है, कहानीको चटपट समाप्त करनेके उद्देश्यसे इस मृत्युकी परिकल्पना हुई है।

'अनुपमाका प्रेम' में भी शरत्बाबूकी प्रतिभाकी विशेषता देख पड़ती है। निग्रहीत, लांछित ललितमोहनके प्रेमकी विशुद्धता, उसके लिए अनुपमाकी सहानुभूति और अनुपमाके अपने जीवनकी विचित्रतापूर्ण कथाने इस कहानीको मनोरम बना दिया है। किन्तु यहाँ भी घटनाओंकी अधिकताके कारण छोटी कहानीकी विशेषता नहीं रखी जा सकी मानव-हृदयका रहस्य किसी एक घटनाको केन्द्र करके विकासको नहीं प्राप्त हो सका और कहानीकी जो विचित्र संभावना थी, वह भी सम्पूर्णता नहीं पा सकी। कारण छोटी कहानी संक्षिप्त, गठी हुई होनी चाहिए; उसमें उपन्यासकी विचित्रता और विस्तारकी प्रत्याशा नहीं की जाती। पहले तो जान पड़ा था कि इस कहानीमें एक उपन्यास-पढ़ी नायिकाके मानसिक विकारका चित्र खींचा जायगा। किन्तु अनुपमाके जीवनमें जो सब घटनाएँ घटित हुई हैं, वे किसी भी सुस्थ अविकृत चित्तवाली रमणीके जीवनमें घटित हो सकती हैं, और अवस्थाके फेरमें पड़कर अनुपमाने जैसा आचरण किया है, उसमें भी विकारका कोई लक्षण नहीं है, यह कहा जा सकता है। एकके बाद एक बहुत-सी आकस्मिक घटनाएँ हुई हैं और इन घटनाओंको एक स्वल्प-परिसर छोटी कहानीके भीतर सजाया गया है। घटनाओंके इस बाहुल्यसे अनुपमाका चरित्र विकसित नहीं हो पाया।

तसवीर (छवि) कहानी छविके समान ही सुन्दर है। उपाख्यानका घटनास्थल सुदूर बर्माका एक गाँव है। समय वही है जिसे अभी बहुत अधिक दिन नहीं हुए, अर्थात् जब बर्मापर अँगरेजोंका अधिकार नहीं हुआ था। उस समय तक बर्माके राजा-रानी थे, मन्त्री-मित्र-सभासद थे, सैन्य-सामन्त थे। कहानीका

नायक चित्रकार बा-थिन रूपवान् युवक है; नायिका मा-शोये रूपवती युवती है। वह अतुल धन-सम्पत्तिकी अधिकारिणो है। मा-शोये बा-थिनकी वाग्दत्ता है, और महाजन भी। दोनों जने बचपनमें एक साथ खेले हैं, आपसमें लड़े-झगड़े हैं, मार-पीट भी की है और परस्पर प्यार भी किया है। बा-थिन चित्र बनाकर कर्ज चुकाना चाहता है, अपने कर्त्तव्यमें वह तिलभर भी लापर्वाही नहीं करता। उसकी कर्त्तव्य-निष्ठासे मा-शोयेको उसपर श्रद्धा हुई है, पर उस निष्ठापर क्षणिक असन्तोष भी उत्पन्न हुआ है। कारण, किसी भी आमोद-आह्लादमें मा-शोये अपने प्रियतमको साथ नहीं पाती; वह केवल चित्र बनानेमें लगा रहता है। यहाँ तक कि मा-शोये उससे बातचीत करने बैठती है, तो भी बा-थिन जैसे खीझ उठता है। कारण, उसे वादेके दिन चित्र पूरा करके देना ही होगा। बा-थिनका चरित्र बहुत सुन्दर बन पड़ा है। उसकी धीरता, स्थिरता, कर्तव्य-निष्ठा और कोमलताका चित्र अत्यन्त हृदयग्राही है। अवश्य ही आर्टके खयालसे सबसे सुन्दर हुई है उसके पराजयकी कहानी। मा-शोयेसे उसका विच्छेद हो गया है; मा-शोयेके घर जाकर वह अपमानित हो आया है। पर वह अपने चित्रको बनानेमें ही डूबा हुआ है—तल्लीन है। उसे बहिर्जगतके मान-अपमानका ध्यान ही नहीं है, उधरसे वह उदासीन है। किन्तु उसका चित्र लौट आया। कारण, उसने गोपा (बुद्धदेवकी पत्नी) का चित्र बनाते हुए अनजाने मा-शोयेका मुख बना डाला है। —"इतने दिन यह प्राणान्त परिश्रम करके उसने अपने हृदयके अन्तस्तलसे जो सौन्दर्य, जो माधुर्य निकालकर बाहर अंकित किया है, जिस देवताके रूपने उसे दिन-रात छला है, वह 'जातक' की गोपा नहीं है, वह उसीकी मा-शोये है।"

मा-शोयेके चरित्रको अंकित करनेका काम उतनी निपुणतासे नहीं हुआ, और यहींपर कहानीकी मौलिक त्रुटि है। बा-थिन आवश्यकतासे अधिक कर्त्तव्य-निष्ठाके कारण उसे अग्राह्य करता है, यह समझकर अभिमानसे आहत रमणीने क्षुब्ध होकर बा-थिनका परित्याग किया है, उसका अपमान किया है। इसी समय उसके साथ असीम साहसी और बलिष्ठ वीर पो-थिनका परिचय हुआ, और पो-थिन शीघ्र ही उसके प्रणयका प्रार्थी हो गया। थोड़ा घनिष्ठ परिचय होनेके बाद ही मा-शोयेने जाना कि यह बलिष्ठ युवक चरित्रमें बा-थिनकी

अपेक्षा निकृष्ट है। मा-शोयेने यद्यपि उसे निमंत्रण देकर उसका आदर-सत्कार किया, तथापि उसके प्रति मा-शोयेका मन वितृष्णा और खीझसे भर गया। अथ च, उसे केन्द्र करके ही मा-शोयेने अपनी जीवन-यात्रा नये सिरेसे शुरू की और उसकी सहायतासे वह बा-थिनको लांछित करनेके लिए उद्यत हुई। बा-थिनके लिए वह उत्कण्ठापूर्ण प्रतीक्षामें बैठी रही है, किन्तु उपयाचक होकर जब बा-थिन उसके पास उपस्थित हुआ, तब उसने अपमान करके उसे बिदा कर दिया। मा-शोयेके मनमें जिस संघर्षकी बात उल्लिखित हुई है, वह बिल्कुल ही मिथ्या है—वह मन-ही-मन बा-थिनके सिवा और किसीपर कभी आसक्त नहीं हुई। अगर पो-थिनके लिए मा-शोयेके मनमें सचमुच ही कोई आकर्षण रहता, तो इस कहानीका प्लाट जम जाता। किन्तु तब फिर यह कहानी 'गृहदाह' उपन्यासकी तरह लम्बी होती ओर पुंखानुपुंख विश्लेषणकी अपेक्षा रखती।

'बिलासी' कहानीको ठीक कहानी कहा जा सकता है कि नहीं, सन्देह है। कारण, बिलासीकी जीवन-कथाका आश्रय लेकर 'प्रबन्ध' के आकारमें बहुत-से मन्तव्य प्रकट किये गये हैं। ये सब मन्तव्य कहानीमें ठीक न बैठेंगे—यह सन्देह करके ग्रंथकारने फुटनोटमें यह सूचित किया है कि ये एक ग्रामीण बालककी डायरीसे नकल किये गये हैं। बिलासी और मृत्युंजयकी कहानी उसके उच्छ्वास प्रकट करनेका उपलक्ष्य मात्र है। किन्तु ग्रामीण बालककी आवेगमय वक्तृताका मूल्य चाहे कुछ भी क्यों न हो, कहानीके हिसाबसे यह भी उत्कृष्ट है। मृत्युंजयके बाल्य जीवनका जो संक्षिप्त इतिहास दिया गया है, उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उसकी जीवन-यात्राका ढंग अन्य चार जनोंके ढंगसे जुदा है। वह साहसी, निःसंग, प्रचलित संस्कारोंपर आस्थाहीन और सहृदय है। उसका बिलासीसे परिचय कठिन रोगकी मार्फत हुआ। उस बीमारीकी दशामें, निर्जन घरमें यह लड़की कुण्ठारहित, विश्रामहीन, सहायक-हीन सेवा करके मृत्युंजयको धीरे-धीरे आरोग्यकी राहमें ले आई। बंगालके देहातका हृदय-हीन समाज, विचार-हीन आचार और प्रीति-हीन धर्म इस निर्जन सेवा-कक्षके बाहर रहा। रोगसे छुटकारा मिलनेके बाद दोनोंका ब्याह हो गया और दोनोंने स्वच्छंदताके साथ सुखसे जीवन-यात्रा शुरू की। उनकी आनंद-मधुर जीवन-यात्राका वर्णन खूब संक्षेपमें किया गया है। किन्तु

यह संक्षिप्त वर्णन भी खूब सांकेतिक है। कारण, यह स्वच्छंदता अनायास मिली हुई नहीं है; इसे उन्होंने ईश्वरके आशीर्वादके रूपमें नहीं पाया; धर्म-संस्कारों और ढेरकी ढेर जमा हुई बाधाओंको नाँधकर पाया है। इसके भीतर भी पति और स्त्रीके मनके भावकी विपरीतता ध्यान देनेकी चीज है। बिलासी स्त्री है, स्वभावसे ही कोमल हृदयवाली। उसने जो पाया है, उसे वह जकड़कर पकड़ रखना चाहती है; बार-बार भाग्यकी परीक्षा करते बैठनेमें उसे शंका होती है। मृत्युंजयकी बात जुदी है। बिलासीसे ब्याह करनेमें ही उसे बहुत कुछ - जाति, कुल, सम्मान, धर्म, प्रतिष्ठा आदि—-छोड़ना पड़ा है। उसने जो पाया है वह बहुत कुछ छोड़कर, बहुत साहस करके ही पाया है। अतएव वह निःशंक है, जीवन उसके निकट तुच्छ है। एक दिन साँपको पकड़ने जाकर यह दुःसाहसी युवक नियति या भाग्यसे अन्तिम परीक्षामें हार गया, साँपके काटनेसे उसका इस लोकका खेल समाप्त हो गया। उसके बाप-माका दिया हुआ मृत्युंजय नाम, ससुरकी दवा और मंत्र सब मिथ्या प्रमाणित हुए। इसके सात दिन बाद बिलासीने आत्महत्या कर ली। यह कहानी संक्षिप्त है। इसमें किसी जटिल मनस्तत्वकी व्याख्याके लिए गुंजाइश नहीं। अथ च, संक्षिप्त होनेपर भी यह सांगोपांग है। मृत्युंजय और बिलासीकी कहानी केवल उनकी व्यक्तिगत कहानी नहीं है; उसके पीछे बंगालके हिंदू-समाजके आचार-भय और स्वार्थसे अंधी हो रही संकीर्णताकी जो पटभूमिका (Back Ground) है, उसकी ओर ग्रंथकारने इशारा किया है, और उसीके कारण इस कहानीमें एक परम आश्चर्यजनक विस्तार और गहराई आ गई है।

प्रकाशभंगी या प्रकट करनेके ढंगके संबंधमें भी एक बात कहनी है। 'न्याड़ा' की डायरीमें लम्बी वक्तृता है। डायरीमें वर्णित घटनाका वह साक्षी है, और उसमें उसका अपना भी हिस्सा है। उसके मन्तव्य निरपेक्ष नहीं हैं, संयत नहीं है, तो भी उनमें एक प्रत्यक्षता औरस जीवता है, जो केवल नाटकमें ही पाई जाती है; कहानी और उपन्यासमें नहीं। अथ च, इन उच्छ्वासपूर्ण मन्तव्योंमें कहींपर कहानीकी सहज स्वच्छंद गतिमें रुकावट नहीं पड़ी। मृत्युंजय और बिलासीकी जीवन-यात्रा अपनी गतिसे चली है; न्याड़ा उनकी जीवन-यात्रामें सम्मिलित हुआ है। उनके ऊपर न्याड़ाकी सहानुभूति, प्रशंसा और श्रद्धाकी सीमा नहीं है। उसकी आवेगमयी वक्त्तृतासे कहानी सजीव हो गई है, उसमें बाधा नहीं पड़ी।

'अनुराधा' के साथ 'दत्ता' का आख्यान-गत सादृश्य है। इस कहानीमें जो प्रेमका चित्र दिया गया है, वह निष्कलंक है। नायक-नायिकाके प्रेमकी राहमें बाधा खड़ी की है पारिवारिक कलहने। किन्तु 'अनुराधा' में 'दत्ता' का सौन्दर्य नहीं है। इस कहानीमें रासबिहारी और नलिनी जैसा कोई चरित्र नहीं है और विजयाके मनमें जो द्वन्द्व हुआ है, वैसे द्वन्द्वका आभास भी इस कहानीमें नहीं है। अथ च, इसका आख्यान भाग छोटी कहानीके आख्यानकी तरह सरल और छोटा नहीं है। विजय और अनुराधाकी भेंटके बाद कहानीके परिणामके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहता। विशेषकर त्रिलोचन गांगुलीका अनुराधाके ऊपर कोई दावा नहीं है या अनुराधाके मनमें उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं है। इसके अलावा अनिता धुँधली छायाकी तरह अस्पष्ट है। आख्यायिकामें या चरित्रकी सृष्टिमें, कहीं भी किसी रहस्यकी खोज नहीं है, किसी अप्रत्याशित सत्यका आविष्कार नहीं है, प्रकाशभंगीमें भी कोई चातुर्य नहीं है।

२

शरत्चन्द्रने दाम्पत्य जीवनको लेकर चार कहानियाँ लिखी हैं — 'काशीनाथ' 'बोझा', 'दर्पचूर्ण' और 'सती'। इन कहानियोंमें हम देखते हैं कि पति और स्त्रीका सम्बन्ध सहज नहीं है; इच्छा रहनेपर भी वे परस्पर एक दूसरेके संसर्गमें सुखी नहीं हो पाते। सत्येन्द्र अपनी तीसरी स्त्रीको लेकर सुखी हुआ या नहीं, यह कहानीमें नहीं लिखा। सरला और नलिनीकी मृत्यु, खासकर नलिनीके जीवनकी दुर्भाग्यमय परिणति कहानीका उपजीव्य है। पहली स्त्रीकी स्मृतिसे बोझिल मन लेकर सत्येद्रनाथने दुबारा ब्याह किया, इसीसे वह नलिनीको अपना लेनेमें असमर्थ रहा। धीरे-धीरे उनका आंशिक मिलन हुआ सही, लेकिन थोड़ा-सा अन्तर दोनोंके बीच रह ही गया। प्राणपणसे चेष्टा करके भी नलिनी पतिके मनपर अधिकार नहीं कर पाई। साधारण कारणसे ही सत्येन्द्रनाथ उसके ऊपर नाराज हो उठता है। सत्येन्द्रके रूठने और क्रोध करनेका जो चित्र दिया गया है, वह सम्पूर्ण स्वाभाविक नहीं बन पड़ा। जिस साधारण कारणसे स्त्रीपर नाराज होकर उसने तिबारा ब्याह

किया, उससे वह विकृतमस्तिष्क पागल ही जान पड़ता है। कहानीकी यही केन्द्रीय घटना है; किन्तु यह अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है।

काशीनाथ 'बोझा' की अपेक्षा निकृष्ट है यद्यपि उसका आख्यानभाग उपन्यासके लिए अधिक उपयुक्त है। काशीनाथ गरीब लड़का है; किन्तु निर्लोभ और उदासीन प्रकृतिका। कमला पतिके प्रति अनुरक्त होने पर भी अत्यन्त अभिमानिनी है। पति और स्त्री, दोनोंका स्वाभिमान बहुत तीक्ष्ण है। इनके दाम्पत्य जीवनके मूलमें एक बड़ी चीजकी कमी रही—वह यह कि ये एक दूसरेकी अवस्थाको नहीं समझ सके। पति और स्त्री परस्परको सुखी देखना चाहते हैं, पर चरित्रकी विषमताके कारण और अवस्थाके वैगुण्यसे वे सुखी नहीं हो पाते—यह बड़े भारी आक्षेपका विषय है। किन्तु इसे सत्यके रूपमें खड़ा करनेके लिए पति पत्नीके दैनंदिनके जीवनके विस्तृत विश्लेषणका प्रयोजन है। पति-पत्नीका मेल और झगड़ा प्रतिदिन अनेक तुच्छ घटनाओंको लेकर होता है और हर रोजकी इस तुच्छताको रूप न दे पाने पर यह मेल और झगड़ा सजीव नहीं होता। पर छोटी कहानीमें ऐसा होना सम्भव नहीं। अतएव शरत्चन्द्रने दो-एक बड़ी बड़ी घटनाओंका उल्लेख करके ही यह चित्र खींचनेकी चेष्टा की है। मगर उनकी यह चेष्टा सम्पूर्ण रूपसे सफल नहीं हुई। कमलाने जो सारी सम्पत्तिपर दावा किया था, उसका कारण हम समझ सकते हैं; किन्तु मैनेजरके किये काशीनाथके अपमानके सम्बन्धमें कमलाने जो कुछ मन्तव्य प्रकट किया, वह कुछ अस्वाभाविक हो गया है। अभिमानिनी कमलाके चरित्रसे भी यह मेल नहीं खाता। कमला निर्बोध नहीं है। पतिके उसके विरुद्ध गवाही देने पर भी, पतिकी बातको उसने जिस तरह अग्राह्य किया है और पतिको जिस तरह निकाल दिया है, उसे स्वाभाविक और सत्य नहीं माना जा सकता।

'दर्पचूर्ण' कहानी अपेक्षाकृत पक्की अवस्थाकी रचना है; किन्तु शरत्-प्रतिभाके नमूनेके खयालसे यह मूल्यहीन है। धनीकी बेटी झोंकमें आकर चरित्रवान् गुणवान् पतिसे ब्याह कर सकती है, किन्तु प्रतिदिन उसके साथ गिरस्ती चलानेमें उसका अहंकार, धन और भोगकी उसकी ख्वाहिश और धनहीनके प्रति उसकी घृणा प्रकट हो पड़ना असम्भव नहीं है, और इससे पतिका जीवन भी विषमय हो जायगा। बंगालके अभिजात सम्प्रदाय या बड़े घरोंके

साथ शरत्चन्द्रका परिचय उतना गहरा नहीं है, इसीसे जहाँ उन्होंने इस सम्प्रदायका चित्र खींचा है, वहीं वह निर्जीव और एकांगी हो गया है। 'दर्पपूर्ण' कहानीकी नायिका इन्दुमती मानव ही नहीं जान पड़ती। वह जैसे नरेन्द्रनाथको पीड़ित करनेका यंत्र मात्र है—उसमें न अनुभूति है, न समझ है, न उसके प्राण है। वह समझकर भी नहीं समझती। आसपासके जगत्के बारेमें वह सम्पूर्ण अचेत है। चरित्रकी विचित्रता दिखानेके लिए ग्रंथकारने उसके भीतर अनुभूतिके संचारका आभास दिया है, किन्तु उसकी यह चेष्टा सफल नहीं हुई, और अन्तिम अंश निकाल देनेपर वह हृदयशील मानव ही नहीं जान पड़ती। इस कहानीके आख्यानकी परिकल्पना अनिन्द्य है; किन्तु इसके चरित्र (खासकर नायिका इन्दु) निर्जीव हैं।

'सती' कहानी शरत् बाबूकी प्रतिभाका एक श्रेष्ठ दान है। यह सब देशोंकी और सब समयोंकी श्रेष्ठ कहानियोंके साथ समान श्रेणीमें गिनी जा सकती है। यह कहानी व्यंग्य-रसात्मक है। किन्तु यह व्यंग्यरस तीक्ष्ण विद्रूपके द्वारा कटु नहीं हुआ। यह प्रभातके प्रकाशकी तरह उज्ज्वल और मधुर है। अतिरिक्त सतीत्वके साथ संदेहपरायणताका संस्रव होनेपर बेचारे निरीह पतिका जीवन कितना असह्य हो सकता है, इसका अतिमधुर और बहुत ही स्पष्ट चित्र इसमें खींचा गया है। यह चित्र हास्यरससे उज्ज्वल और करुणासे स्निग्ध है।

चाहे जिस ओरसे इस कहानीपर विचार किया जाय, इसमें असाधारण शिल्प-कौशल देख पड़ता है। पहले तो इसके गठन-कौशलपर ध्यान जायगा। खूब संक्षेपमें हरिश्चंद्रके ब्याहका इतिहास दिया गया है। उसके बाद कई एक अतिशय कौतुकजनक घटनाओंकी सहायतासे हरिश्चन्द्रके दाम्पत्य-जीवनका रेखा-चित्र खींचा गया है। निर्मलाका संदेह इतना गुरुतर, इतना स्पष्ट है कि इसके वर्णनमें बालकी खाल निकालनेवाले विश्लेषणकी जरूरत नहीं है। इस प्रकारके चरित्रकी विशेषता यह है कि वह ज्वालामुखीके विस्फोटकी तरह कब अपनेको अकस्मात् प्रकट कर बैठेगा, इसका कुछ ठीक नहीं, और कोई आदमी किसी तरह किसी भी उपायसे इसके हाथसे अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा। निर्मलाके प्रत्येक सन्देहकी अभिव्यक्ति ही अचानक होती है और प्रत्येक अभिव्यक्ति ही उसके चरित्रके साथ सुसंगत या स्वाभाविक है। अतर्कित और स्वाभाविकका यह अपूर्व

सम्मिलन इस कहानीकी कलाका एक प्रधान उपादान है। कीर्तनवालीका गान सुननेके मामलेसे लेकर निर्मलाके विष-पान तक, कहानीकी एक सुशृंखला-युक्त प्रगति देखी जाती है, फिर भी कहीं जटिलता नहीं है, वैचित्र्यका विश्लेषण नहीं है। छोटी कहानीके संक्षिप्त होनेकी बातको ग्रन्थकारने कहीं नहीं भुलाया।

निर्मलाकी सन्देहपरायणता कहानीका विषय है; किन्तु उसका केन्द्र है उत्पीड़ित अभागा हरिश्चन्द्र। बेचारा कुछ भी क्यों न करे, सती स्त्रीकी अति उग्र दृष्टिसे छुटकारा नहीं पा सकता। मवक्किलके साथ बात करना, कीर्तन सुनना, क्लब जाना, कुछ भी उसके लिए निरापद नहीं है। सच बोलकर उसने देख लिया, झूठका सहारा लेकर देख लिया, पर किसी तरह उसकी जान नहीं बची। मानों सत्य और मिथ्याने मिलकर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया है। खुद उसने जो एक झूठकी दीवाल खड़ी की, वह अब्दुलकी केवल एक बातसे, लावण्यकी निःशब्द प्रगल्भतासे धूलमें मिल गई। यहाँतक कि माटीकी देवता शीतला तक उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करती है। किसी तरह उसका बचाव या छुटकारा नहीं है। जान पड़ता है जैसे वह एक ज्वालामुखीके ऊपर चल रहा है और चाहे जितना सँभालकर दबे पैरों चले, किसी तरह आत्मरक्षा न कर सकेगा। यहाँतक कि रोगसे छुटकारा पाना भी उसके उपायहीन जीवनका एक चरम, सबसे बड़ा अभिशाप है। कहानीका उपसंहार भी बहुत ही मजेका हुआ है। लांछना जब हद दर्जेको पहुँच गई है, तब उसने मनके क्षोभसे व्रजनाथ (कृष्ण) के साथ अपनी तुलना की है। राधिकाके एकनिष्ठ प्रेमकी कथा युग-युगमें गाई गई है, युग-युगमें भक्त लोग उसे सुनकर विमुग्ध हुए हैं; किन्तु यह प्रेम ही व्रजनाथ श्रीकृष्णके लिए नितान्त अस्वस्तिका कारण हुआ होगा—वह परेशान हो गये होंगे, और इसीके पंजेसे अपनेको बचानेके लिए मथुरा भाग गये होंगे, राधा-कृष्णकी कहानीकी यह व्याख्या बिल्कुल नई है, और श्रीकृष्णके साथ हरिश्चन्द्रकी तुलना बहुत ही सुन्दर है।

३

'बाल्यस्मृति', 'हरिचरण', 'एकादशी बैरागी', 'मुकदमेका नतीजा' 'हरिलक्ष्मी' और 'परेश'—इन कहानियोंमें पारिवारिक और सामाजिक

जीवनके छोटे छोटे चित्र दिये गये हैं। 'एकादशी बैरागी' एक नक्सा * है। इसमें प्लाट नहींके बराबर है। एकादशी बैरागी छोटी जातिका है और फिर बड़ा ही कृपण और सूदखोर है। देनदारों या ऋणियोंके साथ उसका बर्ताव बड़ा ही कड़ा और निर्मम है। वह किसीको एक पैसा भी सूद नहीं छोड़ता; किसीको सहजमें एक रुपया भी उधार नहीं देता। अथ च, उस कठोर अर्थ-पिशाचके हृदयमें स्नेहकी गुप्तधारा फल्गुनदीके जलकी तरह निरन्तर बहा करती थी। उसकी बहनका पैर गल्तीसे कुराहमें पड़ गया था। उसे अपने घरमें आश्रय देनेके फलस्वरूप वह जाति, कुल, गाँव, और समाज छोड़नेको बाध्य हुआ, किन्तु तो भी विचलित नहीं हुआ। उसका स्नेह जैसे असीम है, वैसे ही सत्साहस भी अतुल है। इस घृणित, कठिन आदमीके चरित्रका एक प्रशंसनीय श्रेष्ठ पहलू भी है। उसका सत्साहस और स्नेहपरायणता उसकी न झुकाई जा सकनेवाली ईमानदारीके द्वारा परिपुष्ट हुई है। उसे जो मिलना चाहिए, उसे वह छोड़ता नहीं, और दूसरेका जो न्यायानुकूल प्राप्य है, उसे वह कभी हड़पता नहीं। यह ईमानदारी और सत्साहस कोमल स्वभाववाली गौरी और कठिन एकादशी बैरागीके बीचका मिलन-सूत्र है। कहानी छोटी है, इसका प्लाट मामूली है; लेकिन तो भी कहानी पढ़ते समय पहले एकादशी बैरागीके सम्बन्धमें हमारी जो धारणा बनती है, वह कहानीके उपसंहार पर पहुँचकर एकदम बदल जाती है। अथ च, यहाँ कोई आकस्मिक घटना नहीं है; पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें कोई विपरीतता नहीं है।

'मुकदमेका नतीजा', 'हरिलक्ष्मी' और 'परेश'—ये तीनों कहानियाँ बड़े परिवारके अन्तर्गत लोगोंकी प्रतिद्वंद्विता (लाग-डाँट) और शत्रुताको लेकर लिखी गई हैं। इनमें ग्रन्थकारने यह भी दिखाया है कि लाग-डाँट और शत्रुताकी आड़में मिलनका स्वर्ण-सूत्र किस तरह रहता है। इन तीन कहानियोंमें 'परेश' कहानी सबसे निकृष्ट है। स्वार्थकी प्रेरणासे किस तरह परेशने अपने प्रतिपालक स्नेह-परायण चाचाकी प्रतिकूलता की, इसका वर्णन अस्पष्ट है। गुरुचरणके महत्त्व और गिरावटका उल्लेख है; किन्तु कैसे धीरे-धीरे इस देशपूज्य मनुष्यका अधःपतन हुआ, इसका परिचय नहीं है। जब बाहरके जगत्में वह सताया जा रहा था,

* हास्यरसकी रचना, जिसे अँगरेज़ीमें skit कहते हैं।

तब किस तरह उसका हृदय मेघाच्छन्न हो रहता था, इसका आभास भी नहीं है। अथ च, आर्टके हिसाबसे यह रहस्य ही मुख्य है।

'मुकदमेका नतीजा' कहानीका गठन-कौशल अति मनोहर है। शिबू और शम्भूके प्रतिदिनके जीवनका अति सुन्दर चित्र खींचा गया है। बाँस गाड़नेके लिए उनका झगड़ा है। बात साधारण है, पर इसी बातको लेकर दोनों भाई और उनकी औरतें प्रतिदिन कुरुक्षेत्रकी-सी लड़ाई लड़ती हैं—जबानकी लड़ाई, जमींदारके पास दौड़-धूप, थानेमें रिपोर्ट, इसके बाद अदालतमें मुकदमा। इस भ्रातृ-विरोधमें मन्त्री या सलाहकार बननेके लिए तीसरे पक्ष पाँचूको भी लाया गया है। मामला जब खूब जोर पकड़ गया, जब सारा साज-सरंजाम तैयार हो गया, उसी समय अत्यन्त अचानक सब भरमण्ड हो गया। प्रतिपक्ष शम्भू और उसके पुत्र गंगारामके विरुद्ध आईनसे अनुमोदित सब अस्त्र-शस्त्र सजाकर शिबूने देख पाया कि उसकी स्त्रीने छिपकर गयारामके पास जाकर आश्रय लिया है। इसके बाद शत्रुताकी डोर आगे खींचते चलना शिबूके लिए (शायद शम्भूके लिए भी) असम्भव हो गया। गंगामणिका भागना और गया-रामकी झोपड़ीमें उसका मिलना—इस एक आकस्मिक घटनाको केन्द्र करके यह कहानी गठित हुई है। इससे गंगामणिका चरित्र भी अप्रत्या-शित रूपसे खिल उठा है। गंगामणि 'ग्रामीण समाज' की विश्वेश्वरीकी तरह कोई कल्पनालोककी रहनेवाली नहीं है; वह सचमुच ही ग्रामीण समाजकी स्त्री है। गयारामके ऊपर उसे स्नेह है; किन्तु उस स्नेहमें कहींपर अस्वाभाविकता नहीं है, आतिशय्य भी नहीं है। क्रोधके समय उसने गयारामको तरह तरहके कटु वाक्य कहे हैं, और गयारामके पिता तथा सौतेली माताके साथ उसका वैर शिबूके वैरभावसे कम नहीं है। गयारामके आश्रयसे भ्रातृविरोधने जो नया रूप धारण किया, उससे यह निश्चित होने पर भी कि वह गयारामका विरोध नहीं करेगी, यह पहले अनुमान नहीं किया गया कि ठीक किस भावमें उसका मातृस्नेह अपनेको प्रकट करेगा। अतएव कहानीकी परिणति सम्पूर्ण रूपसे आकस्मिक न होने पर भी अप्रत्याशित अवश्य है। गंगामणिका चरित्र जिस तरहसे विकसित हो उठा है, उसमें

असामंजस्य कहींपर नहीं है, तो भी जान पड़ता है, कहानीके उपसंहारमें हमने मातृ-हृदयके रहस्यका नया परिचय पाया।

'हरिलक्ष्मी' कहानीमें हरिलक्ष्मीके चरित्रका जो सूक्ष्म विश्लेषण दिया गया है, वह अति अपूर्व है। छोटी कहानीमें जटिल मनस्तत्त्वके विश्लेषणका अवकाश नहीं होता; किन्तु इस कहानीमें दो-एक छोटी-छोटी घटनाओंकी सहायतासे मानव-हृदयके रहस्यका जो पता दिया गया है, उसकी तुलना विरल है। कहानीके प्रथम अंशमें असाधारणताका कोई चिह्न नहीं है। शरत्चन्द्रके आर्टकी पराकाष्ठा शेष अंशमें देख पड़ती है, जहाँ विपिनकी स्त्री कमलाकी लांछना करवानेमें हरिलक्ष्मी स्वयं उससे अधिक अपमानित होती है। एकाएक क्रुद्ध होकर हरिलक्ष्मीने अपने बर्बर पतिको प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित किया, और उसके बाद प्रतिपक्षीको छोटा बनानेमें हरिलक्ष्मी स्वयं ही छोटी होने लगी। ऐसा जान पड़ता है कि कहानीके परिणाममें दैवके निष्ठुर परिहासकी झलक है। पतिकी जिघांसाको शान्त करने जाकर हरिलक्ष्मीने देखा कि उसने ऐसा करके उसके क्रोधकी आगमें और ईंधन डाल दिया है। मानव-हृदयकी गति अति सूक्ष्म है। हरिलक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिए शिवचन्द्रने भी अपनी बुआ कमलाको पगपग पर उत्पीड़ित किया है। उस उत्पीड़नको कमलाने चुपचाप सह लिया है। किन्तु इस बर्बर अत्याचार और उत्पीड़ित कमलाकी नीरव सहिष्णुतासे हरिलक्ष्मीका उत्साह बुझ गया है, वह विमूढ़ बन गई है। वह केवल अपनी ही दृष्टिमें छोटी नहीं हो गई, वह जानती है कि कमलाकी दृष्टिमें भी वह छोटी हो गई है। उसने केवल सोचा है कि "मँझली बहूको एक सान्त्वना तो बाकी है—वह है विना दोषके दुःख सहनेकी सान्त्वना। किन्तु उसके अपने लिए कहाँ क्या बच रहा है?" इस प्रकार उसके लिए विजयकी माला पराजयकी ग्लानि ही ले आई है। मिथ्या चोरीके अभियोगमें मँझली बहूको 'विचार' के लिए उसके पास पकड़कर लाया गया, "उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उसे जान पड़ा, इतने लोगोंके सामने जैसे वही पकड़ी गई है और विपिनकी स्त्री (कमला) ही उसका विचार या फैसला करने बैठी है।"

'बाल्यस्मृति' और 'हरिचरण' गरीब नौकरके निपीड़ित जीवनपर लिखी गई कहानियाँ हैं। गरीब लोगोंके जीवनके साथ शरत्चन्द्रका गहरा और घनिष्ठ

परिचय है। इनकी बात उन्होंने जहाँ कहीं लिखी है, वहीं उनकी घनिष्ठ अभिज्ञताका निदर्शन मौजूद है। 'हरिचरण' कहानी अपेक्षाकृत निकृष्ट है। इसका प्लाट बहुत ही साधारण है, इसमें अवास्तव बातें भी यथेष्ट हैं। ट्रेजिडीके मूलमें जो घटना है, वह आकस्मिक है। दुर्गादास बाबूका अत्याचार इच्छा-कृत नहीं है। जीवनमें और आर्टमें आकस्मिकके लिए स्थान न हो, यह बात नहीं है; किन्तु उसीको काव्य और नाटकमें केन्द्रीय घटना बनानेसे आर्टके धर्मकी रक्षा नहीं की जा सकती। जो अचानक आया है, उसके साथ स्वाभाविक और प्रात्याहिक (रोजमर्रा) का सामंजस्य दिखाना होगा। 'बाल्यस्मृति' कहानी निर्दोष है। गदाधर ठाकुरके क्षुद्र जीवनका क्षुद्र इतिहास बड़ी निपुणताके साथ वर्णन किया गया है। जिस 'मेस' में वह नौकरी करता था और जिस तरहसे उसे नौकरी करनी पड़ती थी, उसके वर्णनद्वारा गदाधरके जीवनका प्रतिवेश या उसके आसपासका वातावरण रचा गया है। यह वर्णन संक्षिप्त, अथ च सर्वांगसुन्दर है। इसके बाद लालटेनकी चिमनी टूटना, रुपया चुराना, उसकी नौकरी छूटना और डेढ़ रुपया मनीआर्डरसे भेजना—इन कुछ मामूली घटनाओंके माध्यमसे उसके जीवनकी कहानी विकसित हो उठी है। वर्णनमें कहीं फाल्तूपन नहीं है, घटनाओंकी बहुलता नहीं है; किन्तु कहीं भी अस्पष्टता या असम्पूर्णता नहीं रह गई। दो-एक कूची फेरनेसे ही चित्र परिपूर्ण, प्रोज्ज्वल और सजीव हो गया है। इस कहानीकी एक और विशेषता है। केवल गदाधरकी कहानी ही निपुणताके साथ नहीं वर्णन की गई है, सुकुमारका शिशु-हृदय भी विचित्र रंगसे रंजित हो उठा है। गदाधरके जीवनकी प्रत्येक घटना इस शिशुके मनमें गहरी बैठ गई है; उसके हृदयकी वृत्तियाँ गदाधरके संस्पर्शमें आकर परिपुष्ट हुई हैं, उसकी अभिज्ञताका घेरा बढ़ गया है।

'अभागीका स्वर्ग' और 'महेश', ये दोनों कहानियाँ अभागे गरीबोंके जीवनपर लिखी गई हैं। किन्तु इनके भीतर—खासकर 'महेश' कहानीमें—जो शिल्पकी निपुणता है, वह असाधारण है। इन दोनों कहानियोंमें जिन सब नारियोंकी बात कही गई है वे मुख्य होने पर भी गौण हैं, और जो सब घटनाएँ वर्णन की गई हैं; उनका कोई अपना मूल्य नहीं है। यहाँपर कहानीके नायक-नायिकाओंकी सहायतासे बृहत्तर समाजका चित्र खींचा गया है। यहाँ बड़े अद्भुत

या सुन्दर उपायसे पटभूमिका (बैक ग्राउण्ड) को विकसित किया गया है — उसे उभारा गया है, और उस पटभूमिकाका ही मूल्य अधिक है। इस कारण इन दोनों कहानियोंमें जो विस्तीर्णता है, वह साधारणतः छोटी कहानीमें नहीं पाई जाती। साधारणतः छोटी कहानी एक साधारण कहानीके सहारे गठित होती है, और बृहत्तर समाजका चित्र देना हो तो बड़ा उपन्यास लिखनेकी जरूरत होती है। बृहत्तर समाजके प्रति ग्रन्थकारोंकी दृष्टि आकृष्ट होती है, इसीलिए आजकलके उपन्यास लंबेसे लंबे लिखे जाते हैं। किन्तु शरत्चन्द्रने छोटी कहानीकी सहायतासे ही विराट् ग्राम्य समाजको रूप दिया है, साकार किया है। इन दोनों कहानियोंमें लंबे कलेवरके उपन्यासके विस्तार और पुंखानुपुंख विश्लेषणके साथ छोटी कहानीकी रसघन निविड़ताका समन्वय या मेल हुआ है। 'अभागीका स्वर्ग' 'महेश' की अपेक्षा निकृष्ट है। कारण, पति-परित्यक्ता अभागीकी व्यक्तिगत कहानीने आवश्यकतासे अधिक प्रधानता पाई है। जमींदारका गुमाश्ता, दरबान, मुखर्जी, उनका बेटा, नाईकी जोरू, बिन्दी बुआ, रसिक बाघ—इन सबको लेकर जिस समाजकी सृष्टि हुई है, उसके चित्रने अभागीके जीवनको विशालता दी है; किन्तु तो भी अभागीके अपने दुर्भाग्यने बीच-बीचमें पटभूमिकाको अस्पष्ट कर दिया है।

'महेश' शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ छोटी कहानी है। दुनियाके साहित्यमें बहुत कम ऐसी छोटी कहानियाँ गिनाई जा सकती हैं, जिनमें महेशका-सा विस्तार और निविड़ता हो। इस कहानीमें बंगदेशके उत्पीडित, दुर्भाग्यमय जीवनकी कथा विचित्र रंगोंमें प्रकाशित हुई है। गफूर निरन्न या भूखा किसान है। दिन-भर परिश्रम करके वह बड़े कष्टसे अपना और अपनी कन्याका आहार जुटा पाता है। इसके ऊपर अकाल पड़नेपर वह कम आहार और भी कम हो जाता है। गफूरकी लड़की जानती है कि भातका माँड़ तक नहीं फेका जा सकता; वह भी उनके भोजनकी सामग्री है। जिस घरमें वे रहते हैं, वह जीर्णसे भी जीर्ण हो रहा है, और अन्तःपुरकी लाज तथा इज्जत पथिकोंकी करुणाको आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त हो गई है। भगवान्का दिया पानी तक उन्हें मुश्किलसे मिलता है। कारण, वे अस्पृश्य हैं। पोखरका पानी छू नहीं सकते। और सब लोग यथेष्ट और अयथेष्ट मात्रामें जल लेकर दया करके जब उन्हें थोड़ा-सा दे देते हैं, तभी वे पा सकते हैं।

'इस दरिद्र किसानका एकमात्र साथी और बंधु उसका बैल महेश है। कसाईके लिए बैल प्रिय वस्तु है; वह उसे काटकर मांस बेचता है। ब्राह्मणके लिए गाय देवता है; किन्तु ब्राह्मण्यधर्म, आचारकी ज्यादतीसे, लुप्त हो गया है, इसलिए ब्राह्मणके निकट जीवित गायकी अपेक्षा गो-सम्बन्धी आचार ही अधिक सत्य है। किन्तु गफूर गरीब किसान है। उसके लिए महेश अन्नदाता है, बन्धु है, उसकी गरीबीका साक्षी, साझी और साथी है। ब्राह्मण जमींदारने गोचरभूमि हड़प ली है, गफूरके पैरोंपर गिरनेपर भी पयालका एक तिनका तक नहीं छोड़ा। गफूरने आप भूखे रहकर भी महेशको खिलाया-पिलाया है। पयाल या घास न रहनेपर अपने घरकी छाजनका फूस निकालकर उसे खिलाया है। जमींदारने महेशको पकड़कर काँजीहाउस भेज दिया है; गफूर अपना आखिरी सहारा (बर्तन आदि) गिरों रखकर महेशको वहाँसे छुड़ा लाया है। लाचार होकर गफूरने अन्तको कसाईके हाथ महेशको बेच डालना चाहा है; किन्तु जब बेचनेका समय आया, तब वह उसे बेच नहीं सका। कसाईने जिस तरह (टटोल-टटोलकर) महेशके चमड़ेकी कीमत ठीक की है, उसे देखकर वह काँप उठा है। ब्राह्मण जमींदारने उसका यह अ-हिन्दू प्रस्ताव (कसाईके हाथ बैल बेचनेकी बात) सुनकर विधर्मी गफूरको जो दण्ड दिया है, उस न्याय-दण्डको गफूरने खुशीसे मंजूर कर लिया है। उपायहीन, अपमानित, भूखे-प्यासे गफूरने क्षोभसे, क्रोधसे, सताये जानेसे ज्ञान-शून्य होकर महेशपर ऐसा प्रहार किया कि वह मर ही गया ! तर्करत्न पण्डितने इसपर उसके लिए प्रायश्चित्तकी व्यवस्था की ! उसी प्रायश्चित्तके लिए वह अपना घर-बार, लोटा-थाली छोड़कर चटक (मिल) में काम करनेके लिए चल दिया है, जहाँ जानेके लिए पहले सैकड़ों दुःख सहनेपर भी वह राजी नहीं किया जा सका था।

इस कहानीका आर्ट अति अपूर्व है। महेशको केन्द्र करके ग्राम्य समाजके बहुतसे प्रतिनिधियोंका चित्र खिल उठा है—ब्राह्मण जमींदार, शुद्धाचारी ब्राह्मण पण्डित तर्करत्न, कायस्थ मानिक घोष, गोमांस-व्यवसायी कसाई और गो-प्रतिपालक किसान गफूर। इन सबके चरित्र इनकी दो-एक बातोंमें ही परिस्फुट हो उठे हैं, और गफूरके साथ अन्य सबका अन्तर सर्वत्र चमक रहा है। वर्णनका बाहुल्य नहीं है, रंगकी प्रचुरता नहीं है, लेकिन तो भी चित्र सर्वाङ्ग-

सुन्दर बन पड़ा है। जान पड़ता है, चित्रकारने पट (कैनवास) के ऊपर दो-एक रेखाएँ खींच दी हैं, और सारा पट सुन्दर चित्रोंसे भर गया है। इस कहानीमें और एक बात ध्यान देनेकी यह है कि मूक महेश तक मनुष्यकी कहानीका अंग बना है। जान पड़ता है, वह जैसे सब समझ पा रहा है; वह चुपचाप सारे अन्याय, सारे अत्याचार सह रहा है और जब असह्य हो उठा है, तब मानों अन्यायके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए ही बाहर निकल पड़ा है।

९—नाटक

१

शरत्चन्द्र उपन्यासलेखक थे। उन्होंने नाटक नहीं लिखे। अपने कई उपन्यासोंको अभिनयके लिए उन्होंने नाटकका रूप अवश्य दे दिया है। नाटक और उपन्यासके आर्टमें बहुत अन्तर है—बहुत विभिन्नता है। नाटक दृश्य काव्य है। यह साधारणतः रंगमंच पर खेलनेके लिए ही रचा जाता जाता है। दर्शक थोड़े समयमें अभिनय देखकर विमुग्ध होना चाहता है। देखनेके समय वह कहींपर चुपचाप बैठकर अदृश्य तत्त्व या रहस्यका विचार नहीं करता। इसीसे हर घड़ी थोड़ी विस्मयजनक मनोहर घटनाकी जरूरत होती है। इसी कारण नाटकका प्लाट बहुत लम्बा या जटिल नहीं हो सकता। अथ च, उसमें जल्दी जल्दी परिवर्तन और विचित्रता न रहनेसे दर्शक अधीर हो उठता है। छोटी छोटी घटनाओंकी सहायतासे नाटकका प्लाट नहीं बनता। कोई एक विषय लेकर अधिक देर तक उसमें उलझे रहनेकी गुंजाइश नाटकमें नहीं है। उसका प्लाट संक्षिप्त, स्वल्प विस्तृत, किन्तु घटना-बहुल और वैचित्र्यमय होना चाहिए। जल्दी-जल्दी पट-परिवर्तन करना होता है, इसलिए नाटककी कहानी केवल वैचित्र्यमय होती है, यह बात नहीं है; वह खूब चलती हुई या गतिशील भी होती है। चित्र-शिल्प मानव-जीवनकी स्थितिशीलताका परिचय देता है; पर नाटकके अभिनयमें हम जीवनकी परिवर्तनशीलता और द्रुतगतिका चित्र पाते हैं।

नाटक प्रधानतः अभिनयके लिए रचा जाता है, और अभिनयकी सुविधा-असुविधाके ऊपर उसका रूप निर्भर होता है। नाट्याधिकारीके अधीन अगणित अभिनेता नहीं रहते; अतएव नाटकमें अभिनेता-अभिनेत्रियोंकी संख्या बहुत

अधिक होनेसे काम नहीं चलता। टामस हार्डीके The Dynasts को रंगमंच पर अभिनय करना किसी भी नाट्यसंस्थाके लिए आसान नहीं है—कष्टकर है। इसी कारण नाटककी कहानी उपन्यासकी कहानीकी अपेक्षा स्वल्पविस्तृत होती है। इसके सिवा जिस कहानीमें लम्बे समयका इतिहास लिखा गया है, उसका अभिनय करनेमें अनेक असुविधाएँ हैं। एक ही चरित्रमें बाल्यावस्थासे लेकर प्रौढ़ावस्था तककी कहानी लिखी जानेपर उसकी भूमिका (पार्ट) में एकसे अधिक अभिनेता लेने पड़ते हैं। ऐसा होने पर अभिनयकी विशेषता जाती रहती है। Buddenbrooks श्रेणीके उपन्यासोंको नाटकका रूप देना असम्भव है। 'बिराज बहू' उपन्यासमें पूँटीके बचपन और जवानीका चित्र है। इस उपन्यासको नाटकके रूपमें बदलकर नाट्यमंदिर संस्थामें जो अभिनय दिखाया गया था, उसमें (दो अभिनेत्रियों द्वारा) पूँटीके जीवनकी विभिन्न अवस्थाओंको रूप देकर दिखानेकी चेष्टा यद्यपि बिलकुल ही व्यर्थ नहीं हुई; लेकिन तो भी जान पड़ा कि इस अभिनयमें एक मौलिक अवास्तविकता रह गई है। *

नाटकके लेखकको और भी एक ओर ध्यान देना होता है। सभी अभिनेता और अभिनेत्री समान निपुण नहीं होते। दर्शकगण प्रधान अभिनेता और अभिनेत्रीको रंगमंचपर बार-बार देखना चाहते हैं। उनके कृतित्व या निपुणता-पर नाटककी सफलता निभर रहती है। अतएव नाटकमें नायक-नायिकाका स्थान बहुत बड़ा है। उनके चरित्रका विकास करनेके लिए ही जैसे और-और चरित्रोंकी सृष्टि हुई है। एक विख्यात समालोचकने कहा है कि उपन्यासके आकारमें अगर लिखा जाता तो 'हैमलेट' और भी उच्च श्रेणीका ग्रन्थ होता। हैमलेट नाटककी कहानी इतनी जटिल और लम्बी है कि जान पड़ता है, उपन्यास ही उसका वाहन होता; किन्तु उपन्यासके रूपमें हैमलेटमें डेन्मार्कके राजकुमार (हैमलेट) की प्रधानता कम हो जाती। 'देना-पावना' विशेषरूपसे षोड़शीके जीवनकी कहानी है। इसके नाटकरूपका नाम रखा गया है 'षोड़शी'। किन्तु नाटकमें जीवानन्द प्रधान व्यक्ति हो गया है। उसीको केन्द्र करके कहानी गठित हो गई है। इस प्रधानताका मूल कारण शिशिरकुमार भादुड़ीकी अभिनय-प्रतिभा है।

---

* एक ही अभिनेत्रीसे काम चलाने पर भी अवास्तविकताका दोष दूर न होता।

शरत्चन्द्रके जो नाटक हैं, वे पहले उपन्यासके रूपमें लिखे गये थे और वे प्रधानतः नाटककार नहीं हैं। अतएव उनके नाटकोंका विचार केवल नाटकके हिसाबसे अगर किया जाय तो उनपर सुविचार हो सकनेमें सन्देह है। तो भी नाटकका विचार तो नाटकके ही हिसाबसे करना पड़ेगा। शरत्चन्द्रने जो कई नाटक लिखे हैं, उनमें 'रमा' और 'विजया' की विषय-वस्तु नाटकके लिए वैसी उपयोगी नहीं है। नाटकका अभिनय कुछ घण्टोंमें ही हो जाता है, इसलिए उसकी विभिन्न घटनाओंके बीच एक सरल संयोग-सूत्र रहनेकी आवश्यकता है। एक घटनाके साथ दूसरी घटनाका सम्पर्क स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक दृश्यके बाद ही दर्शकके मनमें यह कौतूहल जगना चाहिए कि इसकी परिणति कहाँ और क्या होगी। बीचमें कोई और विच्छिन्न घटना आ पड़नेपर दर्शकका चित्त विक्षिप्त हो जाता है। उपन्यास पढ़ा जाता है धीरे-धीरे, इसीसे उसमें विस्तृत वर्णनकी गुंजाइश है। किन्तु नाटकमें केन्द्रीय घटना और चरित्रकी परिणतिको ही मुख्य बनाना पड़ता है। 'ग्रामीण समाज'में ग्राम्य समाजकी अनेक विचित्रताओंका चित्र है। बनर्जीके साथ बनमाली पाडुईका, कैलास नाईके साथ सनातन हाजराका कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। रमा, रमेश और बेनी घोषाल—ये उपन्यासके प्रधान चरित्र हैं, और सभी इनके सम्पर्कमें आये हैं। इनके द्वारा बिखरी हुई घटनाओंके बीच एक संयोगकी सृष्टि हुई है, यद्यपि यह संयोग बिल्कुल ही ढीले-ढाले ढंगका है।

नाटकमें यह शिथिलता न होनी चाहिए। इसी कारण वर्तमान युगके एक लेखक चेस्टरटनने कहा है कि सामाजिक शक्तिकी क्रिया-प्रतिक्रिया नाटकके आकारमें नहीं लिखी जा सकती। जिन सब प्रतिभाशाली नाटककारोंने समाज-शक्तिको रूप देनेकी चेष्टा की है, वे एक अभिनव उपायसे शिथिल घटना-बहुलताके बीच ऐक्यको लाये हैं। वे किसी एक आदमीके जीवनको केन्द्र बनाते हैं और यह दिखानेकी चेष्टा करते हैं कि नायक या नायिकाके जीवनमें जितनी विचित्र घटनाएँ घटित होती हैं, वे विभिन्न होनेपर भी उनके भीतरसे एक ही अभिज्ञता आती है, वे सभी एक ही तथ्यको प्रकट करती हैं। कुमारी विब्रि वारेनने अनेक लोगोंके ऐश्वर्यकी जड़का पता लगाकर यह समझ पाया कि अभिजातोंके आभिजात्य (बड़प्पन) और मध्यवित्त लोगोंकी भद्रताकी तहमें

गरीबोंका निर्यातन छिपा हुआ है। इसी तरह बर्नार्ड शॉने व्यक्तिके जीवन और समष्टिकी शक्तिका चित्र खींचा है और दोनोंके बीच संयोग-सूत्रका आविष्कार किया है। अन्यान्य श्रेष्ठ नाटककारोंने भी ऐसे ही उपायका सहारा लिया है। किन्तु 'रमा' नाटकमें इस तरहकी कोई चेष्टा नहीं है। फल-स्वरूप यह नाटक कुछ अलग-अलग चरित्रों और घटनाओंकी समष्टि (मजमुआ) बन गया है। उनमें जैसे कहीं कोई मेल नहीं है, किसीके साथ किसीका योग नहीं है। यहाँ तक कि इसमें नायक रमेश भी दर्शक और दाताके हिसाबसे आया है; ग्राम्य समाजके साथ उसका कोई गहरा सम्पर्क नहीं है। उपन्यासमें इस प्रकारका बिखरापन वैसा मारात्मक दोष नहीं है, और बहुत-सी क्षुद्र-क्षुद्र घटनाओंका वर्णन रहनेके कारण अनेक अलग-अलग घटनाओंके बीच एक ऐक्यका आभास पाया जाता है। किन्तु नाटकमें अपेक्षाकृत विस्मय-जनक कहानी ही सन्निविष्ट हुई है, इसीसे अनेक विचित्र कहानियाँ कहीं ऐक्य नहीं पा सकीं। रमेशके जीवनमें—तथा ग्रामीण समाजके इतिहासमें—कैलास नाई और मोतीलालका उच्छ्वास-हीन संकल्प, सनातन हाजराकी वक्तृताकी अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी चीज है; किन्तु नाटकमें सनातन हाजराकी वक्तृताके लिए तो स्थान दिया गया है पर कैलास और मोतीलालका उल्लेख भी नहीं है।

'दत्ता' में समाजकी शक्तिको रूप देनेकी चेष्टा नहीं हुई, तो भी इसकी कहानी भी नाटकके लिए उपयोगी नहीं है, और उपन्यासमें जो सब नाटको-चित गुण थे, उनकी रक्षा ग्रंथकार नाटकमें नहीं कर सके। नाटककी कहानी क्रमशः परिपुष्ट होकर अंतिम दृश्यमें चरम (क्लाइमेक्स) में पहुँच जाती है। कमेडीमें कहानीका चरम मुहूर्त्त ही उसके अन्तका समय होता है। दर्शकका कौतूहल और आग्रह क्रमशः बढ़कर अन्तिम दृश्यमें पराकाष्ठाको पहुँच जाता है। अगर यह चरम मुहूर्त्त या क्लाइमेक्स नाटकके प्रथम भाग या मध्यभागमें आ पड़े, तो नाटकका अन्तिम अंश अपेक्षाकृत हल्का हो जाता है—दर्शकका उत्साह फीका पड़ जाता है। 'दत्ता' उपन्यासमें नरेन्द्र और विजयाके मिलनकी कहानीके साथ रासविहारीकी पराजय जुड़ी हुई है। विजया और रासविहारीके बीच जो संघर्ष चुपचाप चल रहा था, उसका सारा पर्दा उस दृश्यमें हट गया, जिसमें विजयाकी सम्पत्तिके कागजात हस्तगत करनेके लिए जाकर

रासविहारी विफल-मनोरथ हो गये और उन्होंने विजयासे अपने मनका भाव स्पष्ट रूपसे कह दिया। यहीं इस नाटकका चरम मुहूर्त्त या क्लाइमेक्स है। इसके बाद जो कहानीका अंश है, उसे सजीव रखना कष्टकर है। इसके बाद जो रासविहारी रंगमंचपर आते हैं, वह जैसे अब पहलेके रासविहारी नहीं है। उपन्यासमें भी हम देख पाते हैं कि अन्तमें रासविहारी मानो हतप्रभ हो गये हैं; किन्तु नाटकमें उनकी वह निष्प्रभता एक भारी त्रुटि बन गई है।

उपन्यासमें देख पाते हैं कि नरेन्द्र और नलिनीके एकत्र पढ़ने-पढ़ानेका दृश्य देखकर विजयाका मन नरेन्द्र और दयालके विरुद्ध वितृष्णासे भर गया है। उसने समझ लिया है कि सभी मर्द स्वार्थपर हैं, और विलासविहारीका अपराध ही सबसे कम है। इसीसे दयालके घरसे लौटकर उसने सन्तुष्ट चित्तसे विलासके साथ ब्याहके कागजपर दस्तखत कर दिये। इस तरह कहानीके भीतर रस संचारित हो उठा; पाठकका कौतूहल फिर जाग उठा। परन्तु नाटकमें शरत्-चन्द्रने आख्यायिकाके इस अंशको एकदम बिगाड़ डाला है। उपन्यासके शेष भागमें जो नाटकोचित सम्भावना है, वह नाटकमें सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो गई है। ब्याहकी लिखा-पढ़ीके कागजपर दस्तखत करनेका केवल उल्लेख मात्र हुआ है, वह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाया नहीं गया। विजयाके दयालके घरसे चले आनेके बाद नलिनी (और दयालकी स्त्री) ने उसके और नरेन्द्रके मनके भावकी व्याख्या की है। यह व्याख्या किसी नवीन रहस्यका पता नहीं देती—बल्कि इसने नाटककी गतिमें बाधा खड़ी कर दी है। इसीसे जान पड़ता है कि नाटक यहींपर अथवा इसके पहले ही समाप्त हो गया। इसके बादके दृश्य फिर जम नहीं पाये। अन्तके दृश्यमें रासविहारीकी चरम पराजय लड़कोंका खिलवाड़ जान पड़ती है। शिशिरकुमार भादुड़ीने (नाटकमें अभिनयके लिए) इस अंशको बढ़ाकर सजाकर नाटकोचित बनानेकी चेष्टा की है; किन्तु उनकी यह चेष्टा प्रशंसाके योग्य होनेपर भी सफल नहीं हुई। ग्रन्थकारने आप ही इसे चौपट कर डाला है।

'देना-पावना' शरत्चन्द्रका एक श्रेष्ठ उपन्यास है। इसकी कहानीमें नाटकीय संभाव्यता भी यथेष्ट है। 'षोड़शी' नाटकमें वह संभाव्यता सार्थक हुई है। इसका गठन-कौशल निर्दोष है। चरित्रके विकासकी दृष्टिसे यह नाटक

उपन्यासकी तुलनामें अनेक अंशोंमें अपूर्णांग है; किन्तु गठन-कौशलमें 'षोड़शी', 'देना-पावना' की अपेक्षा निकृष्ट तो है ही नहीं, बल्कि जगह-जगह श्रेष्ठताका ही दावा कर सकता है। षोड़शीके साथ जीवानन्दका परिचय, हैमवती और निर्मलका आगमन, षोड़शीको निकाल बाहर करनेका उद्योग-आयोजन, जीवानन्दका शत्रुता करना और प्रेमकी भिक्षा माँगना, षोड़शीका भैरवी-पद छोड़ना, जीवानंदका सम्पूर्ण परिवर्त्तन और मृत्यु—इन सब अनेक विचित्र घटनाओंके भीतर जीवानंद और षोड़शीके देने-पावनेकी कहानी गठित हुई है। कहींपर अतिशयता नहीं है, कहानी कहींपर ठप नहीं हुई है। प्रत्येक घटनाके साथ अन्यान्य घटनाओंका और मूल कहानीका लगाव खूब स्पष्ट है। 'देना-पावना' की आलोचनामें डाक्टर श्रीकुमार बनर्जीने कहा है—"निर्मल और हैमवतीका उपाख्यान मूल कहानीके साथ गहरा मेल नहीं पा सका।" निर्मल और हैमवतीकी शान्त आनन्दमय जीवनयात्राकी बात जानकर ही षोड़शीका मन भैरवी-जीवनके विरुद्ध अधिक वितृष्ण या उचाट हो गया था। उक्त उपाख्यानकी यही सार्थकता है। किन्तु उपन्यासमें यह कहानी बहुत लम्बी हो गई है, इसीसे मूल कहानीके साथ परिपूर्णरूपसे मिल नहीं सकी, उसका अंग नहीं हो सकी। पर नाटकमें कहा जा सकता है कि यह त्रुटि बिलकुल नहीं है। इस आख्यानके आवास्तव अंशको संपूर्ण रूपसे छोड़ दिया गया है, और मूल कहानीके साथ इसका लगाव खूब अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया गया है। यहाँतक कि षोड़शीने हैमकी जीवन-यात्राका हाल सुनकर कहाँपर अपने जीवनकी शून्यताका अनुभव किया, इसका भी निर्देश कर दिया है। इस सुनिर्दिष्ट संकेतमें अतिशयता अवश्य है, किन्तु मूल कहानीके साथ क्षुद्र-क्षुद्र घटना या आख्यानका संयोग कहाँपर है, इस सन्देहके लिए जगह नहीं रहती।

'षोड़शी' नाटकके उपसंहारमें जो नयापन है, उसका भी उल्लेख करनेकी जरूरत है। 'देना-पावना' में हम देखते हैं, षोड़शी आकर जीवानन्दको हाथ पकड़कर अपने द्वारा स्थापित कुष्ठाश्रममें काम करनेके लिए ले गई। पर नाटक-की समाप्ति जीवानन्दकी मृत्युमें हुई है। जीवानन्दने अपने लिए जो कार्यक्षेत्र छाँट लिया था, वहाँसे उसे बिदा होना पड़ा, यही कहानीका परिणाम या परिणति है। षोड़शीके उसका हाथ पकड़कर ले जानेसे यह बिदा

सम्पूर्ण सामंजस्यके साथ होती है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उपन्यासके इस उपसंहारमें नाटकोचित चमत्कार नहीं है। कहानीके अन्यान्य अंशोंकी तुलनामें यह अंश अपेक्षाकृत नीरस है। इसीसे नाटकमें जीवानन्दकी मृत्युका वर्णन करके कहानीकी समाप्तिको गम्भीर बनाया गया है। जीवानन्दकी मृत्यु आकस्मिक दुर्घटनाकी मार्फत आई है; किन्तु यह मृत्यु आकस्मिक होने पर भी अस्वाभाविक नहीं है। जीवानन्दने अपना बहुत दिनोंका अभ्यास छोड़ दिया था और दूसरोंके लिए ऐसा परिश्रम करना शुरू कर दिया था जिसे कोई मनुष्य साधारणतः नहीं कर सकता। डाक्टरों तकने यह कहकर उसे डराना शुरू किया था कि ऐसा करनेसे प्राण जानेका अंदेशा है। अतएव उसकी यह मृत्यु एकदम अप्रत्याशित नहीं है, और इसके वर्णनमें कहीं भी बाहुल्य नहीं है, अनावश्यक उच्छ्वास नहीं है। जो अकस्मात् आया है, उसके माध्यमसे नायक-नायिकाका चरित्र सुस्पष्ट हो उठा है। जो बात षोड़शीके मनमें बहुत दिनोंसे जमा थीं, वह अनिवार्य वेगसे प्रकाशित हो पड़ी। जीवानन्दने कहा था कि मौतको जिस दिन वह रोक न सकेगा, उस दिन सबकी आँखोंके सामने ही वह चला जायगा। जो मरण सहसा आया, उसे उसने साहसके साथ स्वीकार किया। अपने कामके अपूर्ण रहने पर उसने क्षोभ नहीं प्रकट किया, षोड़शीके साथ मिलनेके लिए लोभ नहीं किया; बल्कि सूर्यकी अंतिम किरणमें अपने अस्त हो रहे जीवनके चरम रहस्यका परिचय पा लिया।

२

शरत्चन्द्रके नाटकोंके आख्यानभागकी आलोचनाके बाद यह विचार करना होगा कि वह नाटकके टेकनिकको बनाये रख सके हैं या नहीं। नाटक दृश्य काव्य है, अतएव उसमें प्रधानता घटनाकी रहती है, वर्णनकी नहीं। नाटकका भाव कार्यके द्वारा, इंगितकी सहायतासे, प्रकट करना पड़ता है। उसमें वाक्बाहुल्य या बातोंकी भरमार रहनेसे कहानीकी गति रुक जाती है। शेक्सपियरके नाटकोंमें लम्बी लम्बी वक्तृताएँ है; किन्तु अधिकांश स्थलोंमें—खासकर हैमलेट, इयागो आदिके स्वगत कथनमें—सुदीर्घ वक्तृताके साथ बाहरके कार्यकलापका खूब घनिष्ठ सहयोग है। अन्यान्य स्थानोंमें लम्बी वक्तृताओंने शेक्सपियरके नाटकोंके माहात्म्यको घटा

दिया है। वाणीका संयम साहित्यका एक प्रधान गुण है, और नाटकका तो यह अपरिहार्य अंग है। शरत्चन्द्र असलमें नाटककार नहीं हैं। उनकी प्रतिभाका विकास या निखार उपन्यासमें हुआ है। जिस समय उन्होंने अपने उपन्यासोंको नाटकका रूप देनेकी चेष्टा की है, उस समय उनकी सृष्टिकी वह प्रथम प्रेरणा चली गई है। इसीसे वह सारे रहस्यको ही स्पष्ट करके दिखाना चाहते हैं। साहित्य रहस्यकी सृष्टि करता है, उसका मूल कहाँ है, इस ओर संकेत करता है। व्याख्या करना टीकाकारका काम है।

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ नाटक षोड़शीको ही लिया जाय। षोड़शीने जीवानंदके सम्पर्कमें आकर अपने लुप्त नारीत्वका पहले पहल स्वाद पाया। इसके बाद उसके मनने भैरवीके काममें लगना नहीं चाहा। हैमके साथ वार्तालाप करके, उसकी शान्त स्वच्छ जीवनयात्रा देखकर, उसने अपने जीवनकी शून्यताका अनुभव किया। इसके पहले बहुत-से नर-नारी उसके आगे अपने जीवनके सुख-दुःखकी बातें कह चुके थे; किन्तु षोड़शीके हृदयकी भीतरी तह तक वे बातें प्रवेश नहीं कर सकी थीं। षोड़शीने हैमके जीवनका जो साधारण थोड़ा-सा परिचय पाया, उसीसे उसका चित्त उद्वेलित हो उठा। इसका कारण यह था कि इसके पहले जीवानन्दके संस्पर्शमें आकर उसने एक नई तरहके स्पंदनका अनुभव किया है। षोड़शीके जीवनमें जो गहरा परिवर्तन आया, उसकी जड़में दो नवीन संस्पर्शोंका सम्मिलन था। षोड़शीका एकान्तमें चिन्तन, सागर सरदारके साथ उसकी बातचीत, फकीर साहबका व्यग्रताके साथ प्रश्न करना और षोड़शीका संकोचके साथ उत्तर देना, इन नाना प्रकारके उपायोंसे उपन्यासमें इस अभिनव संस्पर्शकी क्रिया-प्रतिक्रियाका चित्र खींचा गया है। षोड़शी अपने जीवनके जिस रहस्यको आप ही अच्छी तरह नहीं जानती थी, उसके ऊपर उपन्यास-लेखकने बहुत तेज रोशनी डाली है। पर नाटकमें इन दोनों प्रभावोंकी क्रिया-प्रतिक्रियाका चित्र नहीं है *। हैमके प्रभावसे षोड़शीका जीवन किस तरह बदल गया है, इसकी स्पष्ट और निर्दोष वर्णना है। यह वर्णना सुन्दर है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु एक प्रभावको अतिशय स्पष्ट करनेकी

* उदाहरण-स्वरूप नाटकके द्वितीय अंकके प्रथम दृश्यके साथ उपन्यासके उन्नीसवें परिच्छेदकी तुलना की जा सकती है।

चेष्टामें दूसरे प्रभावको प्रायः छोड़ ही दिया गया है। जीवानन्दके लगावमें आनेसे षोड़शीके मनमें कैसा प्रलयंकर विप्लव उपस्थित हुआ है, वह केवल नाटक पढ़कर या उसका अभिनय देखकर हम अनुमान नहीं कर सकते। हैमवती और षोड़शीके संवादको यथोचित स्थान दिया गया है; किन्तु दो-एक बातें अत्यन्त अनुपयोगी जान पड़ती हैं। जैसे—हैमके चले जानेके बाद षोड़शीने स्वगत उक्ति करके कहा—" हैम, तुम आज मेरा कितने ही युगोंका आँखोंपर पड़ा हुआ पर्दा उठा गई बहन ! " इस प्रकारकी व्याख्या नाटकमें अत्यन्त अशोभन होती है। हैम जो षोड़शीकी आँखें खोल गई, यह उसके परवर्ती जीवनके कार्यसे प्रकट होना चाहिए; उसके लिए किसी टीका-टिप्पणीका प्रयोजन नहीं है।

इस तरहकी लघु उच्छ्वासपूर्ण स्वगत उक्तियोंके अन्तर्गत अ-नाटकोचित व्याख्याके द्वारा ' विजया ' और 'रमा' नाटक सबसे अधिक बोझिल हो गये हैं। विजया पिताके हाथकी लिखी चिट्ठी देखकर " बापू ! बापू ! " कहकर चीत्कार कर उठी है। मृत पिताकी चिट्ठी देखकर अभिभूत होना विजयाके लिए स्वाभाविक है—खासकर उस चिट्ठीको देखकर जिसने उसके संकटके सुखमय समाधानकी ओर इशारा किया है। किन्तु यह बात बहुत कुछ अस्वाभाविक और अत्यन्त अशोभन है कि वह उस चिट्ठीको देखकर दूसरे आदमीके सामने चीत्कार कर उठे। इसी कारण अभिनयमें यह चिल्ला उठना निकाल दिया गया है। रमेश भी गोपाल सरकारके मुँहसे अपने मृत पिताके महत्त्वकी बात सुनकर " बाबूजी ! बाबूजी ! " चिल्ला उठा है। यह भी कच्ची नाट्य-प्रतिभाका परिचय है। ' ग्रामीण समाज 'में रमा और रमेशके प्रणयने अनेक विरुद्ध शक्तियोंकी प्रेरणासे बाधा पाई है, किन्तु वह परिपुष्ट हुआ है। नाटकमें इस कहानीकी जटिलताका पुंखानुपुंख विश्लेषण नहीं है। उसके बदले उसमें आया है आवेगपूर्ण उच्छ्वास। एक उदाहरण देनेसे यह पार्थक्य स्पष्ट हो जायगा। राधापुरकी डकैतीके बाद पुलिस जिस दिन खाना-तलाशी लेने रमेशके घर आई, उस दिन रमा वहीं थी और पुलिसके पास रमेशको छोड़कर जानेमें उसने आपत्ति की थी। उपन्यासमें इस घटनाका वर्णन इस तरह किया गया है—

" रमेशने घरकी ओर देखकर कहा—' अब घड़ी भर भी यहाँ न ठहरो रमा। खिड़कीकी राह यहाँसे निकल जाओ। पुलिस खाना-तलाशी लिए बिना न

छोड़ेगी।' रमाका चेहरा नीला पड़ गया। वह उठ खड़ी हुई बोली—'तुम्हें तो कोई खतरा नहीं है?' रमेशने कहा—'कह नहीं सकता। यह तो अभी नहीं जानता कि क्या होगा, कहाँ तक होगा!' एक बार रमाके होंठ काँप उठे। एक बार उसे याद आ गया कि पुलिसमें उस दिन उसने खुद रिपोर्ट की थी। इसके बाद ही वह एकाएक रो पड़ी। बोली—'मैं नहीं जाऊँगी।' रमेश विस्मयसे घड़ीभर अवाक् रहा। इसके बाद बोला —'छी! यहाँ ठहरना ठीक नहीं है रमा। जल्दी यहाँसे निकल जाओ।' "

इस वर्णनमें आवेग है--घबराहट है; पर उच्छ्वास नहीं। एक और बात लक्ष्य करनी होगी। रमाके इस त्रासके साथ उसका पश्चात्ताप और आशंका मिली हुई है। शायद रमेशकी इस विपत्तिके लिए वह आप जिम्मेदार है। यह संयत, अथ च आवेगमय वर्णन नाटकमें इस प्रकार बदल गया है —

" रमेश—यतीन सो गया है, वह रहे। लेकिन तुम और घड़ी भर भी न ठहरो रमा, खिड़कीकी राह निकल जाओ। पुलिस खाना-तलाशी लिये विना न छोड़ेगी।

रमा (उठ खड़ी होकर डरी हुई आवाजमें)—तुम्हें अपने लिए तो कोई डर नहीं है?

रमेश—कह नहीं सकता रमा। कहाँतक क्या मामला खड़ा हुआ है, सो तो अभीतक मुझे मालूम नहीं।

रमा—तुमको भी तो पुलिस गिरफ्तार कर सकती है?

रमेश—हो सकता है।

रमा—पीड़न भी तो कर सकती है?

रमेश—असम्भव नहीं है।

रमा (सहसा रो उठकर)—तो मैं नहीं जाऊँगी रमेश दादा!

रमेश (भयके साथ)—जाओगी नहीं कैसे?

रमा—तुम्हारा अपमान पुलिस करेगी, तुमको सतावेगी। मैं किसी तरह नहीं जाऊँगी रमेश दादा।

रमेश—छी छी! यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं है। तुम क्या पागल हो गई हो रानी?"

नाटकमें रमा ‘ रानी ’ हो गई है। उसके भयका विस्तृत वर्णन दिया गया है। अथ च, इस आशंकाके साथ पछतावा किस तरह सम्मिलित था, यह प्रकट नहीं हुआ। रमाके प्रणयकी विशेषता इस तरह लुप्त हो गई है।

विजया नाटकमें भी यह अनावश्यक व्याख्याकी भरमार है, जिसने कहानीकी गतिको रोक दिया है। रासबिहारी-विलासबिहारीके साथ पहले विजयाके मनमें कोई विरोधका भाव नहीं था और रासविहारीकी इस तरहकी धारणाका परिचय पाया जाता है नरेन्द्रनाथके साथ विजयाका घनिष्ठ परिचय होनेके बाद, कि यह विवाह किसी तरह कर डालनेसे ही अन्तको कोई गोलमाल न रहेगा। और यही स्वाभाविक है। नाटकमें हम देखते हैं कि रासविहारी पहले दृश्यमें ही अपनी योजना खोलकर कह देते हैं। यह सुसंगत नहीं है। उनके मनका भाव धीरे धीरे प्रकट होनेसे ही दर्शकका कौतूहल सजीव रहता। प्रथम दृश्यमें रासविहारीको रंगमंचपर लानेका कोई प्रयोजन न था। नलिनी और नरेन्द्रके बीच प्रणयका संचार हुआ है—इस सन्देहसे विजयाका मन वितृष्णासे भर गया था और इस सन्देहके दूर होनेके बाद ही वह नरेन्द्रके साथ मिलित हो सकती। सन्देह और वितृष्णाकी तीव्रताने ही उसके भीतर छिपे हुए प्रेमको बाहर प्रकट होनेमें सहायता की। नाटकमें नरेन्द्रके साथ वार्तालापमें (तृतीय अंक, प्रथम दृश्य) विजयाकी आशंकाने अलक्षित रूपसे अपनेको प्रकट कर दिया है। यह दृश्य नाटककी एक अपूर्व सृष्टि है। किन्तु नाट्यकार यहींपर नहीं थमे। उपन्यासमें (२५ वाँ परिच्छेद) नरेन्द्रने विजयासे कहा है—“ नलिनीकी बातको लेकर आप व्यर्थ क्यों कष्ट पा रही हैं ? मैं जानता हूँ, उनका मन कहाँ अटका हुआ है। और मैं भी क्यों पृथ्वीके और एक प्रान्तको भागा जा रहा हूँ, यह वह भी ठीक ठीक समझेंगी ।” उपन्यासमें जो आभासमें प्रकट किया गया है, नाटकमें उसीकी विस्तारके साथ व्याख्या की गई है—उसके लिए अनुपस्थित ज्योतिषको लाया गया है। केवल यही नहीं नलिनीने नरेन्द्रसे प्रश्न किया है कि विजयाको देखनेके लिए उसका जी चाहता है कि नहीं ? और नरेन्द्रने उत्तरमें कहा है कि “ चाहता है, दिन-रात चाहता है। ” यह विना संकोचके स्वीकृति अनावश्यक, अशोभन और हास्यजनक है।

उपन्यासके अंतिम परिच्छेदमें जिस परिणतिका वर्णन दिया गया है, वह अचानक आई है। जिस परिणतिकी आकांक्षा पाठकने की है, किन्तु प्रत्याशा वह नहीं कर सका, उसके इस अलक्षित आगमनसे पाठकका मन अनेक अनुभूतियोंसे भर जाता है। नाटकमें यह रस नष्ट हो गया है। दयालके घरमें दयाल, उसकी स्त्री और नलिनीकी बातचीत*से समझा जाता है कि दयाल पूर्वाह्णमें चकित-सा होकर कुछ कर रहा है, अतएव विजया और नरेन्द्रका मिलन अवश्य होनेवाला है। इस प्रकार आख्यायिकाकी अचानक परिणतिका माधुर्य नष्ट कर दिया गया है। इसके सिवा किसी विषयका एक बार वर्णन करके ही नाट्यकार नहीं थमे। जब जब उसके पुनः उल्लेखका प्रयोजन हुआ है, तब तब उसका विस्तृत वर्णन दे दिया है। इस पुनरुक्तिके दोषसे 'विजया' और 'रमा' का आर्ट अनेक अंशोंमें बिगड़ गया है।

पहलेके एक परिच्छेदमें हमने दिखाया है कि शरत्चन्द्रकी रचनाका एक लक्षण भावप्रवणता है। वह वास्तवपंथी (यथार्थवादी) हैं, अथ च, भाव-प्रवण हैं। उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें जहाँ भावप्रवणता और यथार्थ-प्रियताका समन्वय हुआ है वहाँ वह मानव-मनकी सबसे गहरी तहमें प्रवेश कर सके हैं। किन्तु किसी-किसी उपन्यासमें भावप्रवणतासे वास्तवता-बोध नष्ट हो गया है और वे सब उपन्यास अपेक्षाकृत निकृष्ट हैं। नाटकमें भावप्रवणताका यह आतिशय्य लुप्त नहीं हुआ, बल्कि जगह-जगह पर बढ़ ही गया है। 'ग्रामीण समाज' में विश्वेश्वरीका यथार्थ चित्र नहीं है। नाटकमें यह अवास्तवता और भी बढ़ गई है। वह केवल भावके आतिशय्यसे पूर्ण बातोंका समूह मात्र हैं; धरतीकी धूलके साथ उनका कोई लगाव नहीं है। केवल एक विषयपर ध्यान देनेसे ही इस नाटककी निकृष्टता प्रमाणित हो जायगी। उपन्यासमें हम देखते हैं कि रमेशके प्रति उनका स्नेह रहने पर भी, वह क्रोध और खीझसे शून्य नहीं हैं और रमेशके साथ उनके सम्बन्धमें कभी कभी तीखापन भी आ गया है। यहाँ तक कि

---

* उपन्यासमें दयालने विजयासे कहा है—"नलिनीसे मेरी अबतक यही बात हो रही थी। वह सब कुछ जानती थी।" उल्लिखित कथोपकथन इसी अति संयत इंगितकी विस्तृत व्याख्या है।

एक बार रूढ़ भावसे ही उन्होंने रमेशको यह स्मरण करा दिया है कि वह बेनीके विरुद्ध रमेशका पक्ष लेंगी, इसकी प्रत्याशा करना रमेशके लिए अत्यन्त असंगत होगा। किन्तु नाटकमें उनके चित्रका यह रुख पुँछ गया है; वह भावप्रवणतामें अपनेको भूल गई हैं। जब सनातन हाजराने बेनी घोषालको डराना शुरू किया, तब अपने एकमात्र पुत्रपर विपत्ति आनेकी आशंकासे भी वह विचलित नहीं हुई। बल्कि व्यंगमिश्रित कण्ठसे उन्होंने गोविन्दसे पूछा—"गांगुली देवरजी, छोटे लोगोंके मुँहसे ऐसी आस्पर्द्धाकी बात सुनकर भी तुम खूब चुप खड़े हो?" पुत्रकी विपत्तिकी सम्भावनामें माताकी यह व्यंगोक्ति केवल कठोर ही नहीं, अस्वाभाविक भी है।

रमाका चरित्र भी नाटकमें उपन्यासकी अपेक्षा अयथार्थ हो गया है। उपन्यासमें हम देख पाते हैं कि उसने जो रमेशके विरुद्ध आचरण किया है, उसके मूलमें विविध प्रवृत्तियोंका समावेश है। बेनी जो उसकी खुशामद करता है, इससे वह सन्तुष्ट होती है। बेनी बहुत दिनोंसे जमीन-जायदादके बारेमें उसका सलाहकार है। रमेशके आवश्यकतासे अधिक साहस और दूसरोंके प्रति अवहेलाके भावसे रमाका अपने श्रेष्ठ होनेका बोध जाग उठा है। हिन्दू आचारके प्रति रमेशके अनादरसे अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाली विधवाके मनमें खीझ पैदा हो गई है। रमेशको सबक सिखानेके लिए उसने लठैत अकबरको खुद बाँध पर पहरा देनेके लिए भेजा है। समाजके कलंकसे वही डरी है। फिर यह प्रश्न भी उसके मनमें उठा है कि जिस समाजके भयसे वह एक निन्दनीय काम कर बैठी है, वह समाज कहाँ है?— इस तरहकी विचित्र और विरुद्ध प्रवृत्तियोंके आने-जानेसे रमाका चरित्र सत्य यथार्थ हो उठा है। नाटकमें उसे भावप्रवण रमणीके रूपमें पेश किया गया है। उसमें वह चरित्रकी विचित्रता नहीं है, उसमें वह तेज नहीं है। उसने पुलिसमें रिपोर्ट नहीं की, उसने लठैत अकबरको प्रस्तुत नहीं किया। जान पड़ता है, केवल कलंकके भयसे ही वह नियंत्रित हुई है *। उसकी आँसू बहानेकी निपुणता और मानसिक दुर्बलताको ही प्रधानता दी गई है।

---

* इसी कारण तृतीय अंकके दूसरे दृश्यमें लक्ष्मीको प्रधानता दी गई है; किन्तु लक्ष्मीकी माका उल्लेख तक नहीं है। (ग्रामीण समाजका १३ वाँ परिच्छेद देखिए।)

और भी दो-एक विषयोंमें शरत्चन्द्र नाटकके टेकनिककी रक्षा नहीं कर सके। नाटकका आख्यान भाग नाट्यकारकी बुद्धिके द्वारा नियन्त्रित होने पर भी उसकी गति सहज और उसका प्रवाह स्वतःस्फूर्त होना चाहिए; नाटकके पात्र नर-नारी अपने प्रयोजनसे, अपने अपने उद्देशको लेकर स्वाधीन भावसे आवें और जायँ और दर्शकको यह न जान पड़े कि वे पात्र सृष्टि करनेवालेके एक विशेष उद्देश्यको पूरा करनेके लिए सृष्ट हुए हैं। अगर ऐसा न हुआ तो वे सजीव न होंगे; वे यंत्रचालित कलके पुतले-से जान पड़ेंगे। इस तरह नाटकके कल-कब्जे ठीक रहते है; इनका गठन-कौशल निर्दोष होता है; किन्तु ये प्राणहीन होते हैं। फ्रान्सके नाट्यकार सार्डू और अँगरेज नाट्यकार पिनेरोके अनेक नाटकोंमें इसी प्राणहीनताका परिचय पाया जाता है। इनके नाटकोंमें एक समस्या रहती है, उस समस्याके समाधानके लिए ही चरित्रोंकी सृष्टि होती है और उनकी सहायता करनेके लिए अनेक प्रकारके कौशलोंका सहारा लिया जाता है—दर्वाजों-खिड़कियोंका सुविधाजनक रखा जाना, चिट्ठी, तार इत्यादि। शरत्चन्द्रके किसी किसी नाटकमें यह यांत्रिकता देख पड़ती है, यद्यपि सार्डू-पिनेरोके वर्णन किये कल-कब्जे उनके भीतर नहीं हैं। विजया नाटकमें, प्रथम अंकके तृतीय दृश्यमें, हम देखते हैं कि नदीके किनारे विजया और नरेन्द्रनाथकी एकाएक भेंट हो गई और नरेन्द्रनाथके चले जानेके बाद उसी जगह रासबिहारी उपस्थित हुए, और उनके आनेके तनिक बाद ही विलासबिहारी भी वहीं हाजिर हो गया। इस तरह नदीके किनारे एक लंबी बातचीत और आलोचना शुरू हुई। नरेन्द्रनाथ और विजयाकी भेंटमें जो आकस्मिकता थी, वह चली गई। जान पड़ता है, ये सब शतरंजके खेलकी गोटी हैं, खिलाड़ीके प्रयोजनके अनुसार एक निर्दिष्ट मार्गमें विचरण कर रहे हैं। इस दृश्यके अंतमें दिखाया गया है कि विजया झपटकर चली गई। यह जैसा अति नाटकीय है, वैसा ही अशोभन। विजया नाराज होकर रातको प्रकाश्य मार्गसे तेजीसे दौड़ पड़े, यह एकदम अस्वाभाविक है। खासकर तब, जब कि एक रोगग्रस्त विकारकी अवस्थाको छोड़कर उसने और कहीं भी संयमके बाँधको नहीं नाँघा।

इस नाटकमें और भी ऐसे दो-एक दृश्य हैं, जिनमें पात्र-पत्रियोंके आने-जानेसे इस यांत्रिकताका अनुभव किया जाता है। जिस दृश्यमें माइक्रोस्कोप

दिखाया जाता है, उसमें नरेन्द्रका चला जाना और पुनः प्रवेश, संपूर्ण स्वाभाविक नहीं है। अन्यत्र हम देखते हैं—विलासबिहारीने दयालको गालियाँ दीं और दयाल चले गये; दम भर बाद ही नरेन्द्रने आकर विजयासे कहा कि उसने दयालके मुँहसे सभी कुछ सुन लिया है। यह देखकर मनमें आता है कि नरेन्द्रनाथका इस समय आना जैसे पहलेहीसे ठीक किया हुआ था और उससे सब बातें कहनेके लिए ही दयाल बाबू वहाँसे चले गये थे। उपन्यासमें विभिन्न परिच्छेदोंमें वर्णित कहानीको नाटकमें एकत्र कर देनेसे आख्यायिका जगह जगह अस्वाभाविक हो गई है। उपन्यासमें माइक्रोस्कोपकी चर्चा उठाई गई थी एक दिन, फिर और एक निर्धारित दिनमें नरेन्द्रनाथ उसे विजयाको दिखाने लाया था। विजयाके पिताकी चिट्ठीकी बात एक दिन एकाएक उठ पड़ी थी और उसके बाद विजयाने वह चिट्ठी मँगाई थी। नाटकमें अलग अलग दिनोंकी यह कहानी एक ही दृश्यमें वर्णित हुई है, मानों विजयाको दिखानेके लिए ही नरेंद्रनाथ माइक्रोस्कोप और वह चिट्ठी लेकर आया था। जो आकस्मिकता दत्ता उपन्यासका प्रधान माधुर्य है, वह विजया नाटकमें लुप्तप्राय हो गया है। इस प्रकारकी त्रुटि ‘ षोड़शी ’ नाटकमें नहींके बराबर है। किन्तु ‘ रमा ’ नाटकके किसी किसी दृश्यमें इसका परिचय प्राप्त होता है। विशेष रूपसे दूसरे अंकके चौथे दृश्यकी बात याद आती है। यह दृश्य बाईस पृष्ठोंमें समाप्त हुआ है। पहले रमा और रमेशने पानी निकाल देनेके बारेमें बातचीत शुरू की; इसके बाद बेनी और गोविन्द आकर अपना मत प्रकट कर गये; तदनन्तर रमा और रमेशके बीच मान-अभिमान, अनुनय-विनय और डराने-धमकानेकी लीला आरंभ हुई। इसके बाद रमेशका तेजीसे चल देना और घायल अकबरके साथ बेनी और गोविन्दका प्रवेश और रमाके साथ उनकी बहस और आलोचना है। रमाके साथ रमेशके कथोपकथनसे लेकर अकबर लठैतके प्रस्थानतक सब बातें होनेमें बहुत समय लगा होगा, या बहुत समय लगना चाहिए। इन बाईस पृष्ठोंमें वर्णित घटनाओंके बीच रमा प्रायः सब समय अपनी बाहरी बैठकमें खड़ी रही है। यह जिस तरह असंभव है, वैसे ही नाटकमें उचित भी नहीं है।

३

पूर्ववर्ती अंशमें शरतचन्द्रके नाटकोंकी भूलचूकका उल्लेख किया गया है। शरत् बाबूकी प्रतिभाका विकास उपन्यासमें हुआ है, अतएव उनकी नाटक-रचना जो निर्दोष नहीं हुई, इसमें विस्मयकी कोई बात नहीं है। किन्तु कहीं कहीं नाटकमें भी उनकी प्रतिभा चमक गई है। उनके नाटकोंमें षोड़शी सर्व-श्रेष्ठ है। इस नाटकके अंतिम दृश्यके माधुर्यका उल्लेख पहले ही हो चुका है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक उल्लेखयोग्य गुण इसमें हैं। पहले तो इसका गठन-कौशल निर्दोष है। उपन्यासमें जो सब अवास्तविक उपाख्यान थे, जिन सब कहानियोंके साथ मूल-कहानीका धनिष्ट सम्पर्क नहीं है उन्हें छोड़ दिया गया है, अथवा उन्हें छोटा करके मूल कहानीके साथ उनका सम्पर्क सुस्पष्ट कर दिया गया है। हम नाटकमें विपिन माइतीको देख नहीं पाते, सागर सरदार और फकीर साहबने पहलेकी अपेक्षा कम स्थान घेरा है। निर्मल और हैमवतीकी कहानीका अवास्तव अंश निकाल दिया गया है और नाटकमें उनकी यथार्यता अधिक स्पष्ट होकर निखर आई है। प्रथम दृश्यमें जो कहानी शुरू हुई है, वह अप्रतिहत वेगसे समाप्तिकी ओर आगे बढ़ी है।

परिवर्जन और परिवर्तनके बाद कहानीने नाटकमें जो रूप पाया है वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है। दो-एक उदाहरण देनेसे ही नाटककी विशेषता स्पष्ट हो जायगी। षोड़शीके साथ बीजगाँवके लोगोंका जो संघर्ष हुआ है, उसका आरम्भ हैमकी पूजाके बीच हुआ है और वह सभामण्डपके उस दृश्यमें अन्तिम सीमाको पहुँच गया है, जिसमें षोड़शीने जमींदारको भय दिखाया है। उपन्यासमें यह संघर्ष अनेक बिखरी हुई घटनाओंके द्वारा प्रकाशित हुआ है। इससे उपन्यासकी महिमा खण्डित हुई है ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु यह बिखरापन नाटकके लिए उचित नहीं है। नाटकमें सारा मामला एक दृश्य (प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य)में केन्द्रीभूत हुआ है और वहाँ भी घटनाओंकी या पात्रोंकी कोई अनावश्यक भीड़ नहीं है। सीढ़ी-सीढ़ी करके संघर्ष चरम स्थितिको पहुँचा है और उसके भीतरसे पात्र-पात्रियोंका चरित्र विकसित हुआ है। प्रथम अंकके प्रथम दृश्यमें भी ऐसा ही नाटकोचित परिवर्तन और केन्द्रीकरण है।

प्रफुल्ल और जीवानन्दके संक्षिप्त कथोपकथनमें दोनोंके चरित्रकी झलक पाई जाती है, और उसके बाद एककौड़ी और जीवानन्दके बीच षोड़शीके बारेमें आलोचना सम्पूर्ण होते ही षोड़शी उपस्थित होती है। षोड़शीको किस तरह लाया गया, यह बताना उपन्यासमें बेमतलब नहीं है; किन्तु नाटकमें उसका वर्णन देनेसे मूल-कहानीकी गतिमें बाधा पड़ती। इस प्रकारके जो जो परिवर्तन नाटकमें किये गये हैं, उनसे कहानीमें अपेक्षाकृत वेग आया है, वह नाटकोचित हो गई है, और जीवानन्दका चरित्र अधिक विकसित हुआ है। पहले ही लिखा जा चुका है कि नाटकमें षोड़शीका चरित्र उपन्यासकी अपेक्षा निष्प्रभ और अस्पष्ट रह गया है, और नाटककी यही मौलिक त्रुटि है।

'विजया' नाटकका अपना खास माधुर्य प्रायः कुछ भी नहीं है। केवल उपन्यासमें नलिनीके सम्बन्धमें ईर्ष्याका जो इंगित है, वह नाटकमें अधिक स्पष्ट हो गया है। 'रमा' नाटकमें सबसे अधिक उल्लेखके योग्य बेनीपर प्रहार होनेका दृश्य है। उसमें गोविन्द गांगुली और दरबानके चरित्रका एक पहलू अति निपुण भावसे चित्रित हुआ है।

१०—शरत्-साहित्यमें नीति

जब शरत्चन्द्रके उपन्यास निकलने शुरू हुए, तब उनकी दुर्नीतिसे भद्रसमाज सिहर उठा। उसके अनेक भले आदमियोंने अपने घरकी स्त्रियोंको इन उपन्यासोंके पढ़नेसे रोक दिया। बंगला-साहित्यके स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिए न जाने कितने आदमी परिश्रम करने लगे। शरत्चन्द्रकी रचनाओंकी अश्लीलताके प्रति यह वितृष्णा या अरुचि अब भी बिलकुल लुप्त नहीं हो गई। लेकिन असलमें शरत्चन्द्र एक संभोग-विरोधी नीतिज्ञ हैं, जिसे अँगरेजीमें Puritan कहते हैं। उनके अधिकांश नायकों और नायिकाओंने सभी समय अपनेको यौन-मिलनसे दूर रखा है। उन्होंने स्वयं ही कहा है – "हम लोगोंके समाजमें इस चीजको लोग छिपाये रखना चाहते हैं, इसीसे, जान पड़ता है, बहुत दिनोंके संस्कारसे यूरोपके साहित्यकी नाईं इसके प्रकाश्य (Demonstration प्रदर्शन) में वे लजाते हैं।" बात बहुत कुछ सच है। हमारे संस्कारकी गहराई और उसके दुश्छेद्य बन्धनकी जकड़का वह बहुत कुछ अनुभव कर चुके थे। राखाल पण्डित और शिबू पंडितने जिन वेद-मन्त्रोंका उच्चारण किया था, वे भूत झाड़नेवाले ओझाके मन्त्रकी तरह ही अर्थहीन थे। "किन्तु तब भी तो इनका कोई मन्त्र विफल नहीं हुआ। इनका दिया हुआ विवाहका बन्धन आज भी वैसा ही दृढ़ है, वैसा ही न टूटनेवाला है।" हिन्दू-रमणीकी पतिके प्रति प्रीति कितनी घनी, कितनी गहरी होती है, इसकी खबर सौदामिनीको तब हुई, जब उसने पतिको छोड़ दिया। किसी दूसरे परिच्छेदमें मैंने दिखाया है कि सावित्री और राजलक्ष्मीके मनमें जिन दो शक्तियोंका निरन्तर संघर्ष चला है, उनमें एक था हिन्दू स्त्रीका जन्मसे ही प्राप्त संस्कार। इसी कारण वे मन और हृदयसे अपने प्रेमास्पदको ग्रहण नहीं कर सकीं। राजलक्ष्मीके सम्बन्धमें

श्रीकान्तने कहा है— "उसका बेकाबू हृदय और सजग धर्म-वृत्ति, ये दोनों प्रतिकूलगामी प्रचण्ड प्रवाह किस प्रकार किस संगममें मिलकर उसके इस दुःखके जीवनमें तीर्थकी तरह सुपवित्र हो उठेंगे, इसका कोई कूल-किनारा नहीं देख पड़ता।" श्रीकान्तके लिए भी यही बात लागू है। वह राजलक्ष्मीके लिए सब कुछ छोड़ सकता है, किन्तु अपने सम्मान और प्रतिष्ठाको नहीं छोड़ सकता। केवल यही नहीं, श्रीकान्तने सबसे अधिक श्रद्धा और आवेगके साथ अपनी अन्नदा दीदीके सम्बन्धमें लिखा है। अथ च, अन्नदा दीदीने समाजके विरुद्ध विद्रोह तो किया ही नहीं, बल्कि समाजने उन्हें जो पति दिया था, उसी बर्बर पशुको, तनिक भी मुँह मैला किये, ग्रहण करके वह जन्मभर सती धर्मका पालन करती रही। वह जो समाजसे निकल गई थीं, सो समाजके आदर्शको अक्षुण्ण रखनेके लिए ही। उन्हें लोग कलंकिनी कहकर बदनाम करते थे, पर वास्तवमें वह हिन्दूरमणी-शिरोमणि थी। कमल इस कहानीको सुनती तो प्रश्न करती कि शाहजी जैसे बर्बरको वरण करनेमें सत्यका महत्त्व क्या है? त्याग ही तो केवल एकमात्र गौरवकी सामग्री नहीं है। अन्नदा दीदीने जो समाजको छोड़ा, सुखको छोड़ा, नेकनामी तककी पर्वाह नहीं की— उसे भी छोड़ दिया, उसके बदलेमें उन्होंने पाया क्या? उनके इस त्यागने उनके जीवनमें किस सुखकी आमदनी की? शाहजीको उन्होंने ब्याहके मन्त्र पढ़कर अवश्य पाया था, किन्तु उसने क्या अपने घृणित चरित्रके कारण अपनेको समग्र अधिकारसे वंचित नहीं कर डाला? एक मन्त्र पढ़नेसे संबद्ध संस्कार क्या सत्यसे भी बढ़ जायगा? शाहजीका संग, संस्पर्श —इसमें आकांक्षाकी, उपभोगकी, गौरवकी क्या चीज है? इस त्यागकी महिमा कहाँ है? किन्तु शरत्चन्द्रने इस तरहका एक भी प्रश्न नहीं उठाया। अन्नदा दीदीके जीवनकी सेवाका महत्त्व ही उन्होंने देखा है। उस सेवामें कितनी विडम्बना थी, इस ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। जान पड़ता है, इसका एक कारण यह है कि शरत्चन्द्र मूलतः संभोग-विरोधी हैं—उनकी दृष्टिमें भोग और ऐश्वर्यकी अपेक्षा त्यागका मूल्य अधिक है।

शरत्चन्द्रके अंकित चरित्रोंमें केवल दो आदमियोंने भोगका वरण किया और उनका जीवन सबसे अधिक ऊसर (निष्फल) हुआ। किरणमयी न धर्मको मानती थी, न शास्त्रको, स्वयं भगवान्को भी नहीं मानती थी। उसकी दृष्टिमें

किसी आचार, किसी संस्कारका मूल्य न था। उसकी नजरमें परलोकका भी कोई मूल्य नहीं। इसीसे वह केवल इस लोकके सुखको, केवल देहके आनन्दको मानती थी, इसीको सब कुछ समझती थी। उसके प्रेम-प्यारमें भी इसकी छाप है। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको अगर नहीं पाती तो भी उसका प्यार वैसा ही तीव्र रहता, उसका मन वैसा ही निष्कलंक उज्ज्वल रहता। चरित्रहीनकी सरोजिनीके प्रति सावित्रीके मनमें तनिक भी ईर्ष्या नहीं थी, यह बात जोर करके नहीं कही जा सकती। किन्तु उसमें कण भर भी विद्वेष नहीं था। पर उपेन्द्रने जैसे ही किरणमयीके प्रेमका प्रत्याख्यान किया, उसे स्वीकार नहीं किया, वैसे ही उसकी प्रतिहिंसा-वृत्ति जाग उठी, और उसने जिस उपायसे बदला लिया, वह जैसा नीच, वैसा ही बीभत्स भी है। उसके इस बदलेकी जड़में उसका नीति और धर्मके प्रति एकान्त विद्वेष ही है। वह प्रेमका मतलब यौन-मिलन ही समझती थी, इसीसे उसने पुत्रस्थानीय बालकके मनमें काम-वृत्तिको जगाकर उपेन्द्रसे बदला लिया। किन्तु इस प्रेम-लालसा और बदलेकी भावनामें कल्याण करनेवाला कुछ भी नहीं है। इस आगमें दिवाकर भस्मीभूत हो सकता है; किन्तु किरणमयीको सुख नहीं मिला। उन दोनोंके अराकान-प्रवासके आखिरी दिनोंमें हम देखते हैं कि किरणमयीने दिवाकरके मनमें जो सम्भोगकी लालसा जगा दी है, वही उसके लिए सबसे बड़ा बोझ बन गई है।

स्त्रियोंमें जिस तरह किरणमयीने केवल दैहिक मिलन चाहा, उसी तरह पुरुषोंमें यह चीज सुरेशने चाही। किरणमयीका पाण्डित्य असाधारण है; वह युक्ति-तर्कसे ईश्वरके अस्तित्वका खण्डन करती थी। सुरेशके पास उसकी जैसी दार्शनिक विद्या नहीं थी। वह अपने सहजात संस्कारके बलसे ही पाप-पुण्य, आत्मा आदिको नहीं मानता था। उसने आप ही बार-बार कहा है कि वह नास्तिक है, धर्म-हीन है, पाप-पुण्यकी खोखली आवाजकी पर्वाह नहीं करता। उसकी प्रवृत्ति उच्छृंखल है और उसी प्रवृत्ति ताड़नासे उसने एक ही समयमें सबसे महत् और सबसे नीच काम किया है। अपने जीवनको संकटमें डालकर उसने महिमके जीवनकी रक्षा की है और फिर महिमकी गैरहाजिरीमें उसीकी भावी पत्नी और ससुरको उसीसे फिरंट—असन्तुष्ट करनेकी चेष्टा भी। अन्तको बीमार मित्रकी ब्याहता स्त्रीको चुराकर उसने विश्वासघातकी हद कर दी है। इस तरुणी रमणीका शरीर ही उसकी आकांक्षाकी एकमात्र वस्तु था — उसकी यही

धारणा थी कि वह देह पा जानेसे ही उसका जीवन सफल हो जायगा। किन्तु अन्तको उसने समझ पाया कि केवल देहको पानेसे कोई लाभ नहीं है। वह जिस अचलाको पानेके लिए इतना व्यस्त हो पड़ा था, वह अचला ही अन्तको उसके लिए दुर्वह भार हो गई। पहले वह उसे पानेके लिए उन्मत्त हो उठा था, अब इसके लिए व्यस्त हुआ कि किस तरह उसको छुटकारा देगा; क्योंकि अब उसका भार जैसे उससे उठाया नहीं जाता था। शरत्चन्द्रने सुरेशकी भूलका खूब स्पष्ट वर्णन किया है। "कुछ दिनसे ही उसे अपनी भूल समझमें आ रही थी; किंतु यह धूलिलुंठित देहलता, यह वेदना—इसके सम्मिलित माधुर्यने जैसे उसकी आँखोंपरके पर्देको पल भरमें ही हटा दिया। उसे जान पड़ा, प्रभातके सूर्यकी किरणोंसे जो ओसकी बूँद पत्तीके ऊपर डोलती रहती है, उसके उस अद्भुत सौन्दर्यको जो लोभी हाथमें लेकर उपभोग करना चाहता है, ठीक उसीकी सी भूल उसने की है। वह नास्तिक है, वह आत्माको नहीं मानता। झरनेके झरनेमें जो असीम सौन्दर्य निरन्तर झरता है, वह असीम उसके निकट मिथ्या है, इसीसे स्थूलपर ही सारी दृष्टि एकाग्र करके उसने निःसंशय समझा था कि इस सुन्दर देहपर अधिकार करनेमें ही उसका पाना आप ही-आप सम्पूर्ण हो जायेगा। किन्तु आज उसका भूलका हवाई महल घड़ी भरमें ही चूर-चूर हो गया। प्राप्तिकी उस अदृश्य धरतीसे विच्युत करके पाना कितना बड़ा बोझा, कितनी बड़ी भ्रांति है—इस तथ्यने आज उसके मर्मस्थलमें जाकर चोट पहुँचाई। अचलाकी ओर ताककर वह केवल इसी सत्यको देखने लगा कि ओसकी बूँद मुट्ठीमें आकर भी किस तरह एक बूँद पानीकी तरह देखते-देखते सूख जाती है। हाय रे! पल्लव-प्रान्तमात्र ही जिसकी भगवान्की दी हुई जगह है, उसे वह ऐश्वर्यकी मरुभूमिमें लाकर कैसे बचाये रख सकेगा?"

शरत्चन्द्रने एक बार कहा था कि किसी प्रकारके शारीरिक मिलनकी बात उन्होंने नहीं लिखी। 'बंगवाणी'* में उन्होंने लिखा था--"आलिंगन तो दूर रह, मैं अपनी पुस्तकोंमें कहीं चुम्बन भी नहीं दे सका।" बात बहुत सच है; लेकिन इसमें थोड़ी-सी भूल भी है। आराकान-यात्राके समय जहाजमें किरणमयी दिवाकरके होठ चूमकर खिलखिलाकर हँस उठी थी। सुरेश

* बंगलाकी एक उच्च कोटिकी मासिक पत्रिका, जो कलकत्तासे प्रकाशित होती थी।

अचलाका केवल चुम्बन करके ही शान्त नहीं हुआ, एक दुर्योग (आँधी-पानी), की रातके दुरतिक्रम्य अभिशापसे उसने उसे हमेशाके लिए असीम अन्धकारमें डुबा दिया है। किन्तु दोनों जगह देखा गया है कि केवल शारीरिक मिलन कितना पीड़ा देनेवाला, कितना बीभत्स है। दिवाकर किरणमयीके चुम्बनसे सिहर उठा था; सुरेशके चुम्बन करनेपर अचलाके दोनों होठ इस तरह जल उठे थे, जैसे बिच्छूने डंक मार दिया हो। जिस अँधेरी रातमें राम बाबूकी सुरमा (अचला) लज्जाके बहुत गहरे पंकमें डूब गई, उसके दूसरे दिन वृद्धने देखा कि सुरमाका मुख मुर्देका-सा सफेद पड़ गया है, दोनों आँखोंके कोनोंमें गहरी स्याही दौड़ गई है, और काले पत्थरके ऊपर जैसे झरनेकी धारा उतर आती है, ठीक वैसे ही दोनों आँखोंके कोनोंसे निकलकर आँसू बह रहे हैं। दूसरी ओरसे सहृदय सहमति न रहनेपर यौन मिलनका आकर्षण कितना जघन्य हो सकता है, यही यहाँपर प्रमाणित हुआ है।

कमलको छोड़कर शरत्-साहित्यमें और एक नारीने अम्लान वदनसे हिन्दू नारीके सतीत्व-धर्मको अग्राह्य करके समाजसे विद्रोह किया है। वह है अभया। श्रीकान्तसे उसने कहा था —"मुझसे जिन्होंने ब्याह किया था, उनके पास आये विना मेरे लिए कोई उपाय नहीं था, और आनेपर भी कोई उपाय नहीं हुआ। इस समय उनकी स्त्री, उनके बालबच्चे, उनका प्यार, कुछ भी अब मेरा नहीं है। तो भी उन्हींके पास, उनकी एक गणिका (रखैल) की तरह पड़े रहनेमें ही क्या मेरा जीवन फूल-फलकर खिल उठकर सार्थक होता श्रीकान्त बाबू? और इस निष्फलताके दुःखको ही जीवनभर लादे फिरना ही क्या मेरे नारी-जीवनकी सबसे बड़ी साधना है? रोहिणी बाबूको भी आप देख गये हैं; उनका प्यार भी तो आपसे छिपा नहीं है? ऐसे आदमीके सारे जीवनको पंगु बनाकर मैं अब सती नाम खरीदना नहीं चाहती श्रीकान्त बाबू।" किन्तु अभयाके चरित्रमें भी सुदीर्घ समयका संकोच फूट उठा है। अभया सम्पूर्ण अन्तःकरणसे रोहिणी बाबूको स्वीकार नहीं कर सकी। उसने पहले पतिकी गिरिस्ती करनेकी चेष्टा की थी, और वह पति अगर कण भर भी दया या प्रेम दिखाता, तो रोहिणी बाबूके प्रेमकी मर्यादा कहाँ रहती? अतएव रोहिणी बाबूके साथ जो उसका मिलन है, उसकी जड़ व्यर्थतामें है। वह परभृत (पराया पाला हुआ) है; वह अपनी शक्तिसे अपनेको शक्तिशाली नहीं कर सका।

२

शरत्चन्द्र एक अद्भुत प्रकारके प्यूरिटन (Puritan = पवित्रतावादी) हैं। भोगविरोधी धर्मनिष्ठ प्यूरिटन लोग मानव-मनकी एक वृत्तिको स्वीकार करते हैं—वह है उसकी बुद्धि। जो केवल इंद्रिय-ग्राह्य है, जो केवल सुन्दर है, उसके प्रति उन्हें असाधारण विद्वेष होता है। इसीसे हृदयके आवेग और उच्छ्वासके प्रति भी उनकी अनन्त वितृष्णा (नफरत) है। वे सब बातोंका बुद्धिसे विचार करते हैं। मगर शरत्चन्द्रकी प्रधान विशेषता यह है कि उन्होंने बुद्धिसे किसीका विचार नहीं किया, सहानुभूतिसे सभीको समझनेकी चेष्टा की है। उन्होंने अपनी विस्तीर्ण सहानुभूतिसे मानव-जीवनके सारे सुख-दुःख और आघात-संघातकी वेदनाको समझनेकी उसकी उपलब्धिकी चेष्टा की है। इसी लिए, यद्यपि वह संभोग विरोधी हैं, यद्यपि रिरंसा (संभोग) की वृत्तिको उन्होंने कहीं भी शिरोधार्य नहीं किया, तथापि मानव-मनकी चिरन्तर मिलन कामना और उसके आवेग एवं अनुभूतिके माधुर्यको वह अपनी रचनाओंमें ले आये हैं।

इस विषयमें बर्नार्ड शॉके साथ उनका भेद ध्यान देने योग्य है। बर्नार्ड शॉको भी कोई कोई Puritan कहते हैं। उनकी भोगसे वितृष्णा इतनी विस्तृत है कि वह मानव-हृदयकी प्रेमकी चाहको समझ नहीं सके। उन्होंने प्रणयके गौरवको स्वीकार नहीं किया; उन्होंने हृदयके उच्छ्वासपर व्यंग-विद्रूप किया है। हम जानते थे कि प्रेमिकाके लिए प्राण दिये जाते हैं; किन्तु शॉके नायकने उस रमणीके लिए प्राण दिये हैं, जिसे वह प्यार नहीं करता। किन्तु रिरंसा (रतिकी इच्छा) के विरोधी होकर भी शरत्चन्द्रने प्रेमके गौरवकी घोषणा की है। श्रीकान्तने दुःखके साथ कहा था कि संसारके लोगोंने उसकी हारको ही बड़ा करके देखा; किन्तु उसकी अ-म्लान कान्त विजय-माला किसीको भी न देख पड़ी। प्रेमकी यह अ-म्लान दीप्ति ही शरत्साहित्यमें जगमगा रही है। सुरेश और किरणमयीके जीवनमें यथार्थ माधुर्य बहुत कम था। किन्तु उनके जीवनको भी शरत्चन्द्रने समवेदनाके साथ समझनेकी चेष्टा की है। उन्होंने दिखाया है कि उनका अपराध केवल इतना है कि उन्होंने समझनेमें भूल की। यह पाप नहीं है। उन्होंने पापी कहकर उनसे घृणा नहीं की; भ्रान्त कहकर उनपर

करुणा दिखाई है । मनुष्यके अन्तरतम अन्तस्तलमें जिस आकांक्षाने घोंसला बनाया है, उसे अस्वीकार करनेकी चेष्टा मूढ़ता है। शरत्चन्द्रकी रचनामें अश्लीलताकी जड़ यहींपर है, और इसीके लिए कठोर नीति-वादी प्यूरिटन लोग उनकी रचनासे सिहर उठे हैं, यद्यपि वह स्वयं एक Puritan ही हैं। मनुष्यकी भ्रान्ति और दुर्बलताके लिए उनके हृदयमें अक्षय वेदना है।

अचलाने रामचरण बाबूकी धर्मपरायणता और स्नेहशीलताका यथेष्ट परिचय पाया था, और इसकी भी यथेष्ट अभिज्ञता उसे हुई थी कि वह धर्मपरायणता उनको कितना निर्मम और कठोर बना सकती है। रामचरण बाबूके व्यवहारपर महिमने भी प्रश्न किया है—"जिस धर्मने स्नेहकी मर्यादा नहीं रखने दी, असहाय आर्त नारीको मौतके मुँहमें छोड़ जानेमें थोड़ी भी दुविधा नहीं आने दी, जिस धर्मने आघात पाकर इतने बड़े स्नेहशील वृद्धको भी ऐसा चंचल, प्रतिहिंसाकी भावनासे इतना निष्ठुर बना दिया, वह काहेका धर्म है? इस धर्मको जिसने स्वीकार किया है, वह किस वस्तुको पकड़े हुए है?" और भी एक बात आप ही आप हमारे मनमें आती है। वह यह कि किसने अधिक भूल की थी—सुरेशने या महिमने? किसने अधिक गड़बड़ पैदा की, झंझट खड़ा किया—सुरेशकी उच्छृंखल प्रवृत्तिने या महिमकी निश्चल चुप्पीने? ब्रह्मचर्यमें गौरव अवश्य है, किन्तु उसमें एक वंचना भी है। षोड़शीने हैमके दाम्पत्य जीवनके माधुर्यको देखकर यह बात समझी थी कि जवानीको निपीड़ित करके, प्रवृत्तिका उच्छेद करके उसने जो धर्मचर्चा की है, वह अन्तःसार-शून्य (खोखली) थी। और इसीलिए वज्रानन्दको घर-गिरस्तीमें लौटा लानेके लिए राजलक्ष्मी इतनी व्यग्र और उद्विग्न हुई थी, और इसीके लिए अजितको हरेन्द्रके ब्रह्मचर्य-आश्रमसे अलग करनेके लिए कमल इतनी व्यस्त देख पड़ती है। वास्तवमें, हरेन्द्रके आश्रममें निष्ठा है, दारिद्र्यकी चर्चा है, वह पापसे अछूता है; किन्तु वहाँ परिपूर्ण मनुष्य तैयार होता है—ऐसा नहीं जान पड़ता। आश्रमवासियोंकी सारी चेष्टा जैसे व्यर्थतासे भरी है। वे जोर करके कोई कामना नहीं करते, वे सारी शक्तिसे हृदयकी आकांक्षाको, उमंगको रोकते भर हैं। इस आश्रमके लगावमें जो लोग आये हैं, उनमें राजेन्द्र सच्चा महामानव है। किन्तु इस विप्लवी कर्मीके साथ आश्रमका कोई निबिड़ आकर्षण नहीं है। वह इसके आदर्शपर विश्वास नहीं करता और आश्रमके कर्ता-धर्ता लोगोंने साधारण कारणसे

ही उसे छोड़ दिया है। ब्रह्मचर्यकी यह शून्यता देखकर ही कमलने कहा था— "इन सब बच्चोंको लेकर प्रचण्ड आडम्बरके साथ इस निष्फल दारिद्र्य-चर्चासे लाभ क्या है हरेन बाबू ? ये ही सब शायद आपके ब्रह्मचारी हैं ? हरेन बाबू, आपके हृदय है; इनको अगर मनुष्य बनाना चाहते हैं तो साधारण सहज राहपर चलाकर बनाइए। मिथ्या कुसंस्कारसे दुःखका जेलखाना न तैयार कीजिएगा। असंयममें सत्य नहीं है, इस खयालसे अतिसंयमको भी सत्य समझनेकी भूल न कीजिएगा। वह भी इतना ही बड़ा मिथ्या है।" संन्यासी वज्रानन्द भी यही अनुभव करता था। उसने संसारको घृणा करके नहीं छोड़ा है; उसे और अपना कर पानेके लिए छोड़ा है। इसीसे बंगाल देशकी हजारों मा-बहनोंके लिए उसके मनमें अनन्त वेदना है, अक्षय स्नेह है। संसारके रूप, रस और गंधसे उसका मन भरपूर है। सभीको और अधिक प्यार कर सकनेके लिए ही उसने एक परिवारके छोटे घेरेकी ममता छोड़ दी है।

वज्रानन्दके जीवनमें जो द्वैध भाव हम देख पाते हैं, वह स्वयं शरत्चन्द्रके जीवनमें भी मौजूद है। वह संभोगके विरोधी हैं; किन्तु परिपूर्ण संन्यासके प्रति भी उनकी सहानुभूति नहीं है। यह द्वन्द्व उनके साहित्यकी श्रेष्ठ सम्पदा है, और यही उनकी प्रधान दुर्बलता भी। रोहिणीके साथ बंकिमचन्द्रने अन्याय किया है, इसकी चर्चा उन्होंने बार बार की है और लिखा भी है। कलकत्ता-विश्वविद्यालयकी बी० ए० की परीक्षामें शरत्बाबूने एक प्रश्न यह दिया था कि "नारीत्वके दृष्टिकोणसे रोहिणीका जीवन जो व्यर्थ हो गया सो किस अपराधसे और किसके अपराधसे ? संसारिक दृष्टिकोणसे भ्रमरका जीवन जो व्यर्थ हो गया, वह किस अपराधसे और किसके अपराधसे ?" रोहिणी और भ्रमरका जीवन किसके अपराधसे व्यर्थ हुआ, यह मैं नहीं जानता; किन्तु शरत्चन्द्रके उपन्यासोंकी नारियोंका जीवन भी नारीत्वके दृष्टिकोणसे और सांसारिक दृष्टिकोणसे, दोनों दृष्टियोंसे व्यर्थ हो गया है। मृणालके अत्याज्य सतीधर्म*का चित्र उन्होंने ऐसा

* शरत्चन्द्रने इस प्रसंगमें कहा है कि अचलाके पदस्खलनका एक कारण यह है कि उसकी शिक्षा और संस्कार हिन्दूकी शिक्षा और संस्कार नहीं हैं। अचलाके चरित्रकी जटिलता और दुबिधता या दोहरे भावकी बात पहले आलोचित हो चुकी है। उसके साथ किसी धर्म या संस्कारका सम्बन्ध है, ऐसा तो नहीं जान पड़ता। उपन्यासमें इस विषयका

खींचा है कि उसमें कोई त्रुटि नहीं रह गई है। ब्राह्म केदार बाबू भी उसके आचरणसे मुग्ध हो गये हैं, पर-स्त्री-लोलुप सुरेशतक उसके आगे नतशिर हुआ है। किन्तु इस 'सतीधर्म' ने क्या केवल देहके आश्रित रहकर ही अपनी रक्षा नहीं की है? अचलाको सौत कहकर उसने जो हल्की-सी दिल्लगी की है, उसके भीतर एक गहरी व्यथाका करुण सुर है। साधारण सामाजिक कारणसे उसके प्रेमास्पद महिमने उससे ब्याह नहीं किया, और वृद्ध पति और उससे भी अधिक बूढ़ी सासकी सेवा करके ही उसे अपना जीवन बिताना पड़ा! इस सेवाके भीतर चरम व्यर्थता भरी पड़ी है, और उसके सारे आचरण और बातोंमें इस व्यर्थताके विरुद्ध विद्रोहका सुर छिपा हुआ है।

पार्वतीने बड़े घरकी मालकिन होकर सभीका मन पाया था—सभी उसे मानते और चाहते थे; पर उसका अपना मन देवदासके पास पड़ा रहा। वह धर्म-कर्म करती थी साधु-संन्यासियोंकी सेवा करके, अन्धों-अपाहिजोंकी सेवा करके समय काटती थी; किन्तु इस सबके भीतर एक हद दर्जेकी प्रवंचना थी। उसे असती नहीं कहा जा सकता; किन्तु उसके सतीत्वका ही क्या मूल्य है? उससे चौधरी (पति) को क्या मिला?

समाजके तथाकथित आदर्शके विरुद्ध जिन्होंने विद्रोहकी घोषणा की है—जैसे बर्नार्ड शॉ, बर्ट्रेंड रसल—उनमें द्विधाहीन निष्ठाका परिचय पाया जाता है। वे कहते हैं, देहके अन्यान्य आनन्दोंकी तरह यौन-मिलनमें भी चित्तकी स्फूर्ति होती है। इसे घृणा करनेसे कोई लाभ नहीं है, इसे अस्वीकार करनेका उपाय नहीं है। इसे सहज भावसे ग्रहण करना होगा। मन्त्र पढ़नेसे ही यह पवित्र न होगा और मन्त्र न पढ़नेपर भी यह निन्दित न होगा। यह स्वाभाविक वृत्ति है; इसकी आवृत्ति या आचरणमें पाप भी नहीं है, पुण्य भी नहीं है। यह पार्थिव चीज है, स्वर्गकी सुषमा नहीं है, पुण्य भी नहीं है। Isadora Duncan वर्त्तमान युगकी एक श्रेष्ठ नर्तकी थी और उसकी लिखी अपनी जीवनी इस युगकी एक

उल्लेख न करना ही अच्छा था। जिस निष्ठुर समस्याका कोई समाधान ही अचला नहीं कर सकी, वह किसी भी समयकी किसी भी नारीके सामने उपस्थित हो सकती थी। नर-नारीके चित्तका यह जो कठोर द्वन्द्व है, इसे किसी एक विशेष धर्म अथवा सामाजिक संस्कारके द्वारा सीमाबद्ध करके देखना इसके प्रति अविचार करना होगा।

बहुत लोकप्रिय पुस्तक है। उसने आत्मचरितमें लिखा है—" यह बात सुनकर शायद अनेक लोग सिहर उठेंगे, किन्तु उनके मनका भाव मैं समझ नहीं पाती। तुम चाहे जितने धार्मिक क्यों न हो, देह-धारणके कारण ही जब तुमको थोड़ा-सा क्लेश सहना पड़ता है, तब सुयोग मिलनेपर उसी देहसे तुम चरम आनन्द और परम परितृप्ति पानेकी चेष्टा क्यों न करोगे? जो आदमी दिनभर कठिन दिमागी परिश्रममें लगा रहता है—जो कठिन प्रश्नों और दुश्चिन्ताओंमें उलझ कर कभी कभी पीड़ित होता है वह क्यों न, इन (मेरे) सुकुमार बाहुओंके आलिंगन-पाशमें बँधकर कुछ घण्टोंके लिए आनन्द पाके सब कष्ट भूलकर सौन्दर्यका उपभोग करें? मुझे विश्वास है कि जिनको मैंने आनन्द दिया है, वे भी उसी तरह उसे याद रखेंगे, जिस तरह मैं उन्हें स्मरण करती हूँ।" नीतिसे विद्रोह करनेवालोंकी यही सहज सरल नीति है। शरत्चन्द्र दोनों धाराओंके खिंचावमें पड़ गये हैं। उनके उपन्यासोंके नर-नारी जिसके विरुद्ध विद्रोह करते हैं, उसीको फिर वे मान लेते हैं। जो उनके जीवनकी श्रेष्ठ सम्पत्ति है, उसे भी वे दैनिक सम्पत्ति नहीं बना ले सके। उनके जीवनमें प्रेमके विजय-गौरवकी घोषणा हुई है, और फिर उसकी व्यर्थताका सुर भी बज उठा है। उन्होंने प्रेमका स्वीकार किया है, किन्तु उसकी परिसमाप्तिको ग्रहण करनेमें वे समर्थ नहीं हुए।

कमलको बाद देनेसे शरत्-साहित्यमें नीतिकी आलोचना असम्पूर्ण ही रहेगी। कमलकी माता हिन्दू विधवा है; जिसके रूप था, किन्तु रुचि नहीं थी। उसके पिता चाय-बागानके बड़े साहब थे। कमलका पहला ब्याह एक आसामके क्रिश्चियनके साथ हुआ, बादको दूसरा ब्याह शैवमतसे शिवनाथके साथ हुआ। इसके बाद वह अजितसे मिली। इस मिलनको वह किसी वैवाहिक अनुष्ठानसे बोझिल बनानेको प्रस्तुत नहीं हुई। कमलका जन्म, आचरण, बातचीत—सभीके द्वारा प्रचलित रीति-नीतिके विरुद्ध विद्रोह मूर्तिमान् हो उठा है। यह चरित्र जिन्होंने श्रद्धाके साथ अंकित किया है, उनकी नीति क्या विद्रोहकी नीति नहीं है? इसके बाद हम देख पाते हैं कि इस ग्रंथमें एक चरित्र व्यंग्य-विद्रूपसे जर्जरित हुआ है—वह है प्यूरिटन (पवित्रतावादी) अक्षय। इस ग्रन्थमें जिस मतवादका परिचय मिलता है, उसके साथ शरत् बाबूके अन्यान्य ग्रन्थोंमें व्यक्त

मतवादका सम्पर्क कहाँ है ? जिन्होंने अन्नदा दीदीकी सृष्टि की थी, उन्हींकी कल्पनाने कमलको भी मूर्तिमान् किया है। इन दोनोंके आदर्शके बीच क्या कोई संयोगका सूत्र नहीं है ? कमल क्या सजीव चरित्र नहीं है ? वह क्या केवल कवि-कल्पनाका एक क्षणिक खयाल भर है। डाक्टर श्रीकुमार वंद्योपाध्यायने कमलमें जीवनका परिपूर्ण विकास नहीं देख पाया। शरत् बाबूके अन्यान्य उपन्यासोंके साथ इस उपन्यासकी भिन्नताके प्रति इशारा करते हुए उन्होंने कहा है—" वह (कमल) सावित्री, अभया, राजलक्ष्मीकी सहोदरा या स्वजातीया नहीं है। ये (सावित्री आदि) बंगाली हैं; इनका विद्रोह जिसके विरुद्ध युद्ध करके प्रकट होता है, वह है सारा समाज और युगयुगान्तरव्यापी धर्म-विधिकी सम्मिलित शक्ति...इसका (कमलका) जैसे कहीं कोई नाड़ीका लगाव या सम्पर्क नहीं है। छोटा-बड़ा कोई खिंचाव इसे वेदनासे मथित नहीं करता...कमल एक बुद्धिग्राह्य मतवादकी सुस्पष्ट और जोरदार अभिव्यक्ति मात्र है...वह इंजनकी सीटी है, हृदयका स्पन्दन नहीं।"

कमलके चरित्रकी विशेषतापर अन्यत्र आलोचना की जा चुकी है। यहाँ केवल उसके मतवादका विचार करना होगा। पहले ही यह कह देना जरूरी है कि शरत्बाबूके अन्यान्य ग्रन्थोंमें जिस विद्रोहका परिचय पाया जाता है, उसके साथ कमलके विद्रोहकी कोई मौलिक असंगति नहीं है। शरत्चन्द्र रुचिवागीश नहीं हैं, रक्षणशील (कट्टर) भी नहीं हैं। उन्होंने राजलक्ष्मी, सावित्री आदिके जीवनकी व्यर्थताके प्रति उँगलीसे इशारा करके यही कहना चाहा है कि जिस आचारने, जिस धर्मने इनको जीवनकी चरम सार्थकतासे वंचित किया, उस आचार अथवा धर्ममें कोई सत्य है कि नहीं, यह विचार करके देखना होगा। यह बात शरत्चन्द्रने कई उपन्यासोंमें, कई स्त्रियोंके जीवनके भीतर प्रकाशित की है। कमलने केवल इसी बातको विना किसी संकोचके, कोई सन्देह न करके, प्रचारित किया है। सावित्री, राजलक्ष्मी, रमा आदिके जीवनमें जो प्रश्न उठा है, उसीका अकुंठित उत्तर कमलने दिया है। वह वैवाहिक अनुष्ठानकी प्रयोजनीयताको भी अग्राह्य नहीं करती। उसका कहना यह है कि अनुष्ठान मनुष्यके लिए बनाया गया है, अनुष्ठानके लिए मनुष्य नहीं। मनुष्यका कल्याण ही उसका आदर्श है; किसी आचार या निष्ठाको सिर झुकाकर स्वीकार कर लेना नहीं। जो अनुष्ठान मनुष्यके

जीवनकी सार्थकताका विरोधी है, उसे शिरोधार्य करनेसे मंगलकी अपेक्षा हानिकी संभावना ही अधिक है। इस पहलूसे देखा जाय तो देख पड़ेगा कि कमलका विद्रोह आकस्मिक नहीं है। वह किसी विशेष घटनासे उत्पन्न नहीं हुआ, किसी खास विरुद्ध शक्तिके प्रतिघात (टक्कर) ने इसे संजीवित नहीं किया। किन्तु अन्नदा दीदीसे लेकर अभया तक जितनी नारियोंके चित्र शरत्-चन्द्रने खींचे हैं, उन सबकी अभिज्ञता जमा करनेसे जो प्रश्न, जो विद्रोह उठना अनिवार्य हो जायगा, केवल उसीको कमलने खुलासा करके कह दिया है। इस तरह कमलके चरित्रने शरत्साहित्यको सम्पूर्णता प्रदान की है।

और एक बातपर भी लक्ष्य करना होगा। कमलने ब्रह्मचर्यके अतिसंयम और आत्मदमनकी निन्दा की है; किन्तु असंयम अथवा उच्छृंखलताका जय-गान नहीं किया। बल्कि स्वतःसिद्ध अन्तःकरणसे इस बातको ग्रहण करके कि असंयममें कोई सत्य नहीं है, उसने अपना मतवाद व्यक्त किया है। उसके आहार और साजसज्जामें असंयमका चिह्न तक नहीं है। उसने अम्लान वदनसे एक एक करके तीन पुरुषोंसे सम्बन्ध जोड़ा है, किन्तु किसीको भी उसने धोखा नहीं दिया; कहीं अनियंत्रित कामुकताका परिचय नहीं दिया। दारिद्र्यके बीच भी वह संयत और शान्त है। अजितने जब उन्मत्त प्रणय भिक्षा माँगी है, तब भी वह अविचलित ही रही है। उसकी बातोंमें निःसंकोच प्रगल्भताका परिचय मिलता है; किन्तु उसके आचरणमें लेश मात्र संयमहीनता नहीं है। उसकी जिन्होंने सृष्टि की है, वह कट्टर नहीं हैं, रुचिवागिश नहीं हैं, किन्तु वह असंयमका प्रचार करनेवाले भी नहीं हैं। इस उपन्यासमें और एक चरित्रको कमलके पास न रखनेसे ग्रन्थकारके प्रति अविचार होगा। ग्रन्थकारके मतके एक पहलूको कमलने खूब जोरदार ढंगसे व्यक्त किया है; किन्तु उसका और एक पहलू आशुबाबूके चरित्रसे—उनकी बातचीत, आचरण, सबसे बढ़कर उनकी निर्मुक्त हँसीसे - सुस्पष्ट हुआ है। कमलका यथार्थ प्रतिपक्ष अक्षय नहीं, आशुबाबू हैं। अतएव कमलके मतको आशुबाबूके मतके साथ मिला न लेनेसे शरत्चन्द्रके मतवादके संबन्धमें हमारी धारणा अस्पष्ट रह जायगी। आशु बाबू और कमलमें मत-भेद बहुत है; किन्तु मन दोनोंका बेमेल नहीं है—इन दोनोंके बीच श्रद्धा, स्नेह और आग्रहका सम्बन्ध है। जान पड़ता है, ग्रन्थकार यह कहना चाहते हैं कि वही मतवाद आदर्श है, जो इन दोनों परस्पर-विरोधी विचार-धाराओंके बीच सामंजस्य सम्पन्न कर सके।

—०—

११—शरत्-साहित्यमें हास्यरस

हँसी आनन्दका झरना है। बच्चा अपनी माको देखकर हँसता है, विजयी वीर अपने गौरवकी अनुभूतिमें हँसता है। यह हँसी विधाताका वरदान है—आदिम मानव विश्वके रूपको देखकर यही हँसी हँसा था। किन्तु सभ्यताकी श्रीवृद्धिके साथ साथ हमने और एक प्रकारके हास्यरसका आविष्कार किया है, जिसके मूलमें एक विशेष प्रकारकी आनन्दकी अनुभूति है। हमने उसका नाम दिया है व्यंग्य-कौतुक। हम उसपर व्यंग्य करते हैं, जो नीतिकी ओरसे हमारी अपेक्षा हीन है, और हम कौतुक या ठट्ठा उसको लेकर करते हैं, जो बुद्धिमें हमारी अपेक्षा निकृष्ट है। इन सब मामलोंमें मानव-समाजका एक विशेष मानदण्ड है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य स्वार्थमें अन्धा होता है, तो भी समाजशक्तिकी जड़ स्वार्थत्यागमें है। सभी अगर अपना अपना ही स्वार्थ खोजते तो समाज एकदम अचल होता - उसका काम चल ही न सकता। इसी लिए तो हिंस्र पशुओंका कोई समाज नहीं होता। मानवकी सामाजिक बुद्धि स्वार्थ-लिप्साको उसके प्रतिकूल चाबुक मारकर आत्मरक्षा करती है। इसके अलावा मनुष्यके बुद्धिजीवी होनेपर भी उसकी निर्बुद्धिता भी अनन्त है। बुद्धिमान मनुष्य दूसरेकी निर्बुद्धिताका ठट्ठा करके, मजाक उड़ाकर, आनन्द पाता है। इसीसे हास्यरसपूर्ण साहित्यके मूलमें ये दोनों चीजें रहती हैं। जो स्वार्थसे दूषित, नीच है और जो मूढ़ है, उसीने सदासे इस प्रकारके साहित्यको रसद पहुँचाई है। साहित्यकी प्रकृतिके अनुसार हास्यरसका रंग बदलता है। जिन्होंने साधारण मनुष्योंकी उपेक्षा की है, घृणा की है, उनकी हँसी मुँह चिढ़ानेवाली हँसी है। जिन्होंने जन साधारणको प्यार किया है; उन्होंने देखा है कि मनुष्य भूलें और अन्याय करेगा ही; कारण, वह रक्तमांसका बना मनुष्य है—पत्थरका बना हुआ

देवता नहीं है। उसकी भ्रान्ति और अन्यायके साथ उसकी आकांक्षा, उसकी अनुभूति, उसके जीवनका सारा माधुर्य लिपटा है। उसके जीवनका जो काव्य है, उसका छन्द भूलों और असंगतियोंसे बँधा है। वह अगर केवल साधु भाषा ही बोलता और अच्छे काम ही करता, तो उसका जीवन नीरस कठिन गद्य ही होता। इन सब साहित्यिकोंका हास्यरस माधुर्यसे भरपूर होता है—उसमें श्लेष नहीं है, ताना नहीं है—मुँह चिढ़ाना नहीं है।

शरत्चन्द्रकी रचनाओंमें यह दोनों ही प्रकारका हास्यरस मिलता है। उनमें समाजके चिरकालसे चले आ रहे संस्कारके विरुद्ध एक प्रच्छन्न विद्रोह मिलता है। उन्होंने दिखाया है कि समाजने पतिता कहकर जिन्हें गाली दी है, चरित्र-हीन कहकर दूर ठेल दिया है, उनका हृदय ऐसा मधुर है कि समाजके तथाकथित नेता लोग उनके आगे नतशिर हो सकते हैं। बेनी घोषालने रमाको कलंकिनी कहकर उसकी निन्दा की थी; किन्तु किसका चरित्र महत्तर है—बेनी घोषालका या रमाका ? श्रीकान्तने राजलक्ष्मीको अपनी स्त्री कहकर जब उसका परिचय दिया तब डाक्टर बाबू और ठाकुरदादा सन्त्रस्त हो उठे; किन्तु राजलक्ष्मीके चरित्रमें जो ऐश्वर्य और जो माधुर्य है, उसकी तुलना कहाँ है ? यह है शरत्-चन्द्रकी गम्भीरतर रचनाका मूलसूत्र। उनकी रस-रचनाकी मूल बात भी यही है। सामाजिक कलंककी आड़में जो महिमा छिपी हुई है, उसे उन्होंने खोलकर दिखाया है, और जिन्हें हमने सनकी और मूर्ख कहकर अग्राह्य किया है, उनके जीवनमें भी उन्होंने माधुर्य भर दिया है। इस संसारके कुटिल मार्गमें कुछ ऐसे लोगोंसे भेंट होती है जो विश्वको भूले हुए होते हैं। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होती, शायद वे बिल्कुल ही अबोध (भोंदू) होते हैं; किन्तु उनके अन्तःकरणकी उदारताने उन्हें महिमामण्डित कर दिया है। उनमें सांसारिक बुद्धि या स्वार्थ-सिद्धिकी क्षमता नहीं है। इस दिशासे वह ठट्ठेके पात्र हैं। किन्तु उन्हें घृणा करने या उनकी अवज्ञा करनेका उपाय भी नहीं है। कारण, वे कोई छोटा या नीच काम नहीं कर सकते। संसार-संबंधी उनकी अनभिज्ञताने कवचकी तरह सब तरहकी नीचताओंसे उनकी रक्षा की है। कैलास चाचाके दिमागमें समाज-नीतिके कूट तर्क नहीं खेलते थे, वह राजनीतिक नेता नहीं हो सकते थे। विश्वकी शतरंजके खेलके बड़े-बड़े हाथी और घोड़े उनके नहीं थे—उनका वजीर केवल असीम स्नेहकी अनुभूति थी।

'ब्राम्हनकी बेटी' के प्रियनाथ डाक्टर और 'दत्ता'के नरेन्द्र डाक्टर, दोनों ही अद्भुत आदमी हैं। ऐसे लोग एकदम संसारसे अनभिज्ञ होते हैं। संसारमें ये स्वप्नाविष्टकी तरह चलते हैं और इसी कारण ये कौतुकके पात्र हैं। सजग लोगोंके लिए सबसे अधिक कौतुकका विषय वे सब स्वप्नचालित लोग हैं, जो जागते हुए भी सोते होते हैं और सोते हुए भी जागते हैं। यहाँकी इस दुनियाकी आब-हवाको ये कुछ भी नहीं समझते; पृथ्वीकी सब राहोंको ये कुछ भी नहीं समझते; पृथ्वीकी सब राहोंको ये नहीं जानते; जिसे जानते हैं उसे भी स्वप्नके आवेशमें अच्छी तरह देखते नहीं; संसारकी विचित्रतासे ये कोई सम्बन्ध नहीं रखते। दुनियाकी कोई एक राह ये जानते हैं और स्वप्नकी खुमारीमें केवल उसीमें घूमते फिरते हैं। किन्तु संसारमें कोई भी राह सहज और सरल नहीं है। सब राहें मिलकर एकमें उलझ गई हैं, इसीसे तो इसका नाम गोरखधंधा है। इसीसे जैसे ही इनकी अभ्यस्त राह और राहसे मिल जाती है, वैसे ही ये लोग उलझन पैदा कर देते हैं। प्रियनाथ डाक्टर रोगीको देखना और रेमेडी (Remedy) सिलेक्ट करना (दवा चुनना) जानते हैं; किन्तु रोगीका मन कितनी विचित्रता रखता है, इसका उन्हें कुछ पता नहीं। रोगी जो सचमुच मृत्युका भय न करके भी कह सकता है कि वह व्यथासे मरा जा रहा है, अथवा वह पड़े पड़े मर जायगा; उसके मनकी गति या अनुभूति पुस्तकके लेखकी तरह सहज और सुस्पष्ट नहीं है—इस बातको वह नहीं जानते थे। उन्होंने पुस्तकमें केवल यही पढ़ा है और देखा है कि व्यथाके वर्णनमें घर्षण, मर्षण, सुईका चुभना-सा या बिच्छूका डंक मारना-सा लिखा है। उन्हें यह बात कौन समझावे कि ये सब बातें केवल बातें हैं, मूल चीज व्यथा ही है। वह प्रायः ही कहते थे कि महात्मा हेरिंगने कहा है—रोगोंकी चिकित्सा करना, रोगीकी नहीं। किन्तु उनके लिए रोग और रोगी, दोनों ही केवल पुस्तकमें लिखी बात भर थे। इसी लिए वह परान डाक्टरसे लागडाँट या ईर्ष्या रखते थे—रोगीकी चिकित्सा करके नहीं। उसने उनकी होमियोपैथी दवा खाकर दिखाया है कि उससे कोई हानि नहीं होती और इन्होंने भी उसका दिया केस्टर आयल (एरंडीका तेल) पीकर महात्मा हनेमन और हेरिंगकी मर्यादाको बनाये रखा। पर स्वप्नचालितके लिए जैसे होमियोपैथी दवा वैसे ही केस्टर आयल। वह संसारमें रहते अवश्य थे,

किन्तु उनका संसार केवल कुछ होमियोपैथिक पुस्तकों और कुछ कल्पित रोगियोंमें ही सीमित था। विपिन और परान डाक्टर धन कमाकर जीविका चलानेके लिए डाक्टरी करते थे और वह जीवन धारण ही करते थे चिकित्सा करनेके लिए। अतएव विपिन और परानको रोगी खोजते फिरते थे और प्रियनाथ डाक्टर रोगियोंको खोजते फिरते थे। उनके लिए और किसी चीजका अस्तित्व नहीं था।

'दत्ता' के नरेन्द्र डाक्टरका पेशा है जीवाणुओंके बारेमें आलोचना करना-जाँच करना। पर उसे इसकी कोई खबर नहीं थी कि पास ही एक जीती जागती आत्मा उसके लिए प्राण दे रही है। मानव मनकी जितनी प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें प्रेम ही सबसे बढ़कर जटिल है; किन्तु नरेन्द्र डाक्टरकी बुद्धि जीवाणुओंकी जटिलताकी खोजमें ही समाप्त हो गई थी। वह हृदयके आदान-प्रदानकी बात समझता ही नहीं था। उसका हृदय जैसा सरल था, वैसे ही उस रमणीकी जो उसके लिए व्यथित पीड़ित होकर मर रही थी, प्रेमकी चाह जटिल थी। उसने ऋण चुकानेके उपलक्ष्यमें नरेन्द्रका सर्वस्व ले लिया है, उसे गृह-हीन कर दिया है, उसका ब्याह और एक आदमीके साथ तय हो गया है।—इसकी आड़में कितना गहरा प्रेम आत्मरक्षा कर रहा था और अपनेको प्रकट करनेके लिए हजारों उपाय ढूँढ़ता मरता था, इसकी कोई खबर नरेन्द्रको नहीं थी। इसीसे वह समझ नहीं पाता कि विजया उसका क्यों इतना खयाल करती है, विलासविहारी क्यों उससे जलता है—ईर्ष्या करता है, क्यों एक पागल भूत उसके सिरपर सवार था और क्यों विजया कभी कभी उससे ऐसा व्यवहार करती है, जैसे उसे पहचानती ही नहीं या उसकी अवहेला करती है। स्वप्न-मूढ़ डाक्टरकी यह अज्ञता या नादानी ही यहाँ हास्यरसका मूल आधार है।

प्रियनाथ डाक्टरको एक खास सनक थी और नरेन्द्र डाक्टर किसी खास मामलेमें एकदम बेखबर था। 'निष्कृति' के गिरीश सभी मामलोंमें पूरे भोलानाथ थे। वह कुछ भी नहीं समझते थे। छोटा भाई रमेश कोई काम-धाम नहीं करता—पाटकी दलालीमें चार हजार रुपए उसने मिटा दिये। वह उनके अपने कष्टसे कमाये हुए धनको और बर्बाद न कर सके, इसलिए वह उसे बुलाकर प्रश्न करने लगे, और अपने

मवक्किल बागबाजारके खाँ-बाबुओंका दृष्टान्त दिया। किन्तु वे लोग पाटकी दलाली करते थे या फूसकी दलाली करते थे, यह वह भूल ही गये हैं। जो स्वप्नचालित है, उसके निकट पाट जो है वही फूस भी है। वह रमेशको और रुपए नहीं दे सकेंगे, अब उसे और बैठे-बैठे खिला न सकेंगे. इसीलिए उन्होंने यह राय दी कि "एक बार हजार रुपए गये तो गये, कुछ परवाह नहीं—फिर चार हजार दो। लेकिन इसके यह माने नहीं कि मैं मेहनत कर करके मरूँगा और तुम बैठे-बैठे खाओगे।...मैं सवेरे बैंककी आठ हजारकी चेक दूँगा। चार हजार रुपयेका फूस खरीदना और चार हजार रुपये जमा रहेंगे। जब ये चार हजार खतम हो जायँ, तब उन रुपयोंमें हाथ लगाना, उसके पहले नहीं, समझे! मैं तुम लोगोंको बिठाकर न खिला सकूँगा।" रमेश उनके कष्टसे कमाये हुए धनको नष्ट न कर सके, इसका कैसा विचित्र, कैसा बढ़िया उपाय है! इन्होंने रमेशसे मुकदमा लड़ा और अन्तमें रमेशको ही छकानेके लिए अपनी सारी सम्पत्ति रमेशकी स्त्रीके नाम लिख दी।

गिरीशकी स्त्री सिद्धेश्वरी और 'वैकुण्ठका दानपत्र' का गोकुल भी बहुत कुछ इसी प्रकारके आदमी हैं। वे कुछ भोंदू - कुछ दुर्बल-चित्त हैं। सिद्धेश्वरीने सुना है कि पचास रुपए ढेर-से रुपए होते हैं। यह बात उन्होंने किसी तरह नहीं मानी कि बारह गंडे रुपयोंमें दो रुपये मिलानेसे पचास रुपये हो जाते हैं! गोकुल ऐसा भोंदू है कि वह क्लासकी परीक्षा पास नहीं कर सकता और नकल करनेकी जो विद्या और सब लड़के जानते हैं, वह तक उसकी जानी नहीं है। ये पात्र अपनी एकान्त स्नेहशीलतासे हास्यरसको जगाते हैं। संसारका नियम है स्वार्थका नियम। उसमें स्नेहका स्थान बहुत ही नपा-तुला होता है। इसीसे जब किसीका भी स्नेह सारी नियत सीमाको नाँघकर उमड़ पड़ता है तब उसके माधुर्यसे हम अभिभूत होते हैं, साथ ही उसको अद्भुत निर्बुद्धतामें कौतुकका अनुभव करते हैं। सिद्धेश्वरीने शैलजाको एक तरहसे घरसे भगा ही दिया था; किन्तु कन्हैया और पटलको खानेको मिला या बिना खाये भूखे ही सो गये—इन सब बातोंको सोचकर उन्हें नींद नहीं आई और दूसरे ही दिन मुकदमा दायर करके दोनों बालकोंको (शैलजाके पाससे) ले आवेंगी, यह निश्चय करके रात बिताई।

भाइयोंके बीच मनमुटाव होता है, साधारण प्रकारका मेल भी रहता है; किन्तु अण्डरग्रेजुएट भाईके लिए गोकुलकी प्रीति सब सीमाओंको नाँघ गई थी। भाईके परीक्षा पास न करनेपर भी वह गर्वके साथ घोषणा करता था कि उसके भाईने डबल प्रोमोशन पाया है। विनोदकी गर्भधारिणी भवानी गोकुलकी सौतेली मा थी; किन्तु गोकुल जानता था, वह उसीकी मा है। विनोदके घर आकर वह कह गया—"सब झूठ है। कलिकाल है—अब क्या धर्म-कर्म कुछ रह गया है? बापूने मरते समय माको मेरे हाथमें सौंपकर कहा था कि 'बेटा गोकुल, यह लो अपनी मा।' मैं सीधा-सादा भला आदमी हूँ, नहीं तो विनोदके बापकी मजाल क्या है कि वह मेरी माको जोर करके ले आवे। क्यों, क्या मैं लड़का नहीं हूँ? मैं चाहूँ तो अभी जोर करके माको ले जा सकता हूँ। यही है बापूका असल विल।" खूब! बापकी सम्पत्तिपर सभी दावा करते हैं, किन्तु यह है विमातापर दावा करना। बैमात्र भाईकी Monopoly (मोनोपोली एकाधिकार) पर हस्तक्षेप।

गिरीश या गोकुल जैसे अपनेको भूले हुए भोले लोग बिरले हैं। मानव-जीवनकी मूल बात है अहंज्ञान। अपनेको जाहिर करना, अपनी सुविधा कर लेना, यह सभी लोगोंके जीवनका मूल-मन्त्र है। मगर मनुष्यकी इस हाड-मांसमें समाई हुई प्रवृत्तिको लेकर लोग ठट्ठा भी करते हैं। मनुष्य जैसे अपनेको जाहिर करता है, वैसे ही दूसरेके अहंज्ञानपर ठट्ठा भी करता है। रस-रचनाकी यह भी एक प्रधान विषय-वस्तु है। शरत्चन्द्रके साहित्यमें इसका उत्कृष्ट परिचय पाया जाता है, और इसमें भी शरत्चन्द्रकी विशेषता खिल उठी है। दुःख-दुर्बलता-पूर्ण मानव-जीवनके प्रति उनकी सहानुभूति अनन्त है। उन्होंने दिखाया है कि यह अहंज्ञान एक मधुर दुर्बलतामात्र है। यह हमारे सब कामों और सब चिन्तनोंकी आड़में रहकर बीचबीचमें झाँकता हुआ हास्यसे उज्ज्वल प्रकाश डालता है। रंगूनके विख्यात हरिपद मिस्त्रीसे श्रीकान्तने रंगूनके प्रसिद्ध नन्द मिस्त्रीका ज्यों ही परिचय पूछा, त्यों ही उस आदमीने एक तरहका असम्मान-सूचक मुँह बनाकर कहा—"उः मिस्तिरी! इस तरह सभी अपनेको मिस्तरी कहलवाते हैं महाशय, पर मिस्तरी होना सहज नहीं है। मार्कट साहबने जब मुझसे कहा था कि हरिपद, तुम्हारे सिवा मिस्तरी होने योग्य आदमी

तो और कोई मैं देख नहीं पाता, तब आप जानते हैं, बड़े साहबके पास कितनी बेनामी चिट्ठियाँ आई थीं ? एक सौके लगभग। अरे आरी वसूलेका जोर रहते क्या बेनामी चिट्ठियाँ कुछ कर सकती हैं ? अरे मैं काटकर जोड़ दे सकता हूँ।" राखाल पण्डितने कहा था—"मधु डोमाय कन्याय नमः।" शिबू पण्डितने कहा—"यह मन्त्र मिथ्या है। असल मन्त्र यह है—'मधु डोमाय कन्याय भुज्यपत्रं नमः, जितने दिन जीवनं-धारणं, उतने दिन रोटी-कपड़ाप्रदानं स्वाहा।" इस तरह उसने प्रमाणित कर दिया कि असल मन्त्र अकेले वही जानता है; और सब पण्डित यजमानको ठगकर अपना पेट पालते हैं। इन पंडितोंका झगड़ा सुनकर रतनने अपने आभिजात्यके गौरवसे छाती फुलाकर कहा - तुम डोम लोगोंका कोई ब्याहमें ब्याह है। यह तो हम बाम्हन-कायथ या नवशाको* के घरका ब्याह नहीं है। यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि रतन जातिका नाई है

यह हरिपद मिस्त्री, रतन नवशाक, शिबू पंडित या पटल डाँगाके मेसका पाचक चक्रवर्ती ब्राह्मण—इन्होंने और दस आदमियोंकी तरह सुखमें, दुखमें जीवन बिताया है। इनकी जीवनयात्राके भीतर यही बहुत तीव्र अहंकार झलकता है। इस अहंकारने उनके दुःख-दैन्यसे प्रपीड़ित जीवनको अपेक्षाकृत सहने लायक बना दिया है। इसमें मुँह चिढ़ानेकी, घृणा करनेकी कोई बात नहीं है। शरत्चन्द्रने भी इसपर व्यंग नहीं किया। उन्होंने केवल यही दिखलाया है कि यह अहंकार साधारण प्रतिदिनके जीवनको कितना सरस कर देता है। उनकी इस रस-रचनाके मूलमें उनकी प्रखंड सहानुभूति विद्यमान है। शरत्चन्द्रने जो लोग अपांक्तेय (पंगतके बाहर) हैं, मूढ़ हैं, उनके जीवनको उन्हींकी तरह समझनेकी कोशिश की है। सव्यसाची जब गिरीश महापात्र बने थे तब उन्होंने ठीक वैसे ही नीबूका तेल सिरमें डाला था, और ठीक उसी तरह गाँजेकी चिलम पकड़ी थी, जैसे एक निर्जीव नशाखोर छोटा आदमी सिरमें तेल डालता है और जिस तरह गाँजेकी चिलम पकड़ता है। रंगून-यात्राका जो

* नवशाख—बंगाली हिन्दुओंकी नवशाखा या उपजातियाँ—सद्गोप (अहीर), हलवाई, जुलाहा, तेली, माली, लोहार, बढ़ई, बारुई (तमोली) और नाई।

वर्णन शरत्चन्द्रने दिया है, वह जो इतना मधुर और सजीव हुआ है, उसका कारण यह है कि उन्होंने साधारण लोगोंकी अज्ञता, भय और आनन्दको ठीक उन्हींकी तरह देखा और अनुभव किया है। उन्होंने दिखाया है कि उन लोगोंका जीवन ठीक सुसभ्य, भद्र, शिक्षित लोगोंका-सा अवश्य नहीं है, किन्तु उनकी आनन्दकी अनुभूति हम लोगोंकी तरह ही तीव्र है और चूँकि उन लोगोंका जीवन ठीक हमारे साँचेमें ढला नहीं है, इसी लिए वह हमारे कौतुकका विषय है। वे बीथोवन + (Beethoven) के संगीतको नहीं साधते, किन्तु उनका भी एक संगीत है। काबुली पठान भी गाना गाते हैं। उनका जीवन दैन्यसे प्रपीड़ित है; किन्तु उसमें ऐसा एक खुलापन है, जो सुसभ्य लोगोंके जीवनमें नहीं है। डेकमें यात्रा करनेवालोंके जीवनमें ऐश्वर्य नहीं है, किन्तु उसकी एक सहज स्वतःस्फूर्त गति है, जो प्रथम श्रेणीके यात्रीके जीवनमें नहीं है। इसी बातको शरत्चन्द्रने अपनी रचनामें सजीव बना दिया है। यह कौतुकमय है; क्योंकि आनन्दमय है। सभ्यताके विधि-निषेधसे इसकी सहज सावलील गतिमें बाधा नहीं पड़ती। यह हमारे सुसभ्य जीवनकी अपेक्षा विभिन्न और अनेक अंशोंमें निकृष्ट है। जो लोग सुसभ्य नियमोंको मानकर चलते हैं, वे नियमका व्यतिक्रम, कोई बात कुछ विकृत या अद्भुत देख पाते ही हँसते हैं। इस हँसीमें प्रधानताका बोध छिपा रहता है। इन सब तथाकथित छोटे लोगोंकी जीवनयात्रा देखकर जो हँसी आती है उसमें भी यह प्रधानताका बोध निहित है—यह बात सत्य है; किन्तु उनकी सहज, स्वतःस्फूर्तिको प्राप्त प्राणशक्तिका परिचय पाकर हम कृतार्थ भी हो जाते हैं। हमारी हँसी सहानुभूतिके रससे संजीवित होती है। मानव-जीवनके प्रति यह विस्तृत सहानुभूति शरत्चन्द्रकी रचनाकी प्रधान विशेषता है।

यह विस्तीर्ण सहानुभूति उनके शिशु चरित्रोंमें भी व्यक्त हुई है। शिशुके जीवनकी छोटी छोटी आशाओं, आकांक्षाओं और अनुभूतियोंको उन्होंने शिशुकी-सी सरलतासे समझनेकी चेष्टा की है। थिएटरमें ग्रीनरूमका गोपन रहस्य देखनेकी आकांक्षा, स्टेजपर मेघनादका वीरत्व – इनका उन्होंने सजीव वर्णन किया है। " धन्य वीर ! धन्य वीरत्व ! अनेकने अनेक प्रकारके युद्ध देखे हैं, यह मैं मानता हूँ; किन्तु धनुष नहीं है, बाएँ हाथकी हालत भी युद्ध-

+ एक प्रसिद्ध पाश्चात्य संगीतज्ञ।

क्षेत्रके अनुकूल नहीं है—केवल दाहने हाथ और खाली तीरसे लगातार युद्ध करना कब किसने देखा है! अन्तको उसीसे जीत हो गई। शत्रुको इस बार भागकर ही अपने प्राण बचाने पड़े!" बालक यह नहीं समझता कि अभिनयका युद्ध सचमुचका युद्ध नहीं है। शरत्चन्द्रके इस वर्णनमें बालककी सरल विस्मयको अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। शिशु अपनी सहज सरलतासे प्रेमके आदान-प्रदानमें कैसी असुविधा डाल देता है; नारी-हृदयको गुप्त बातको वह कैसे प्रकट कर देता है—इसका चित्र रवीन्द्रनाथने 'बख्तियार' सतीशमें दिया है। 'दत्ता' का परेश भी कम नहीं है। उसके लिए बताशे खरीदना नरेन्द्रकी खबर लेनेसे कहीं अधिक आवश्यक है और जो बात विजया बहुत छिपा रखना चाहती है, उसे उसने सहज ही अनायास प्रकट कर दिया है।

केवल शिशु ही क्यों - भयके मारे या निराश प्रेममें वयस्क व्यक्ति भी कैसे शिशुका-सा व्यवहार कर सकते हैं, इसका चित्र भी शरत्चन्द्रने अंकित किया है। छिनाथ (श्रीनाथ) बहुरूपिया बाघका रूप बनाकर श्रीकान्तके घरमें जब आया तब उसे असली बाघ समझकर श्रीकान्तके फूफा और भट्टाचार्य जिस तरह चिल्ला उठे और गम्भीर प्रकृतिके मँझले दादा 'दि रायल बेंगाल टाइगर' देखकर जिस तरह आर्तनाद करके मूर्च्छित हो गये, वह बिल्कुल शिशु-सुलभ था। महिमकी गैरहाजिरीमें सुरेशने अचला और केदार बाबूपर खूब रंग जमा लिया था कि वहाँ एक दिन भूतकी तरह महिम आ उपस्थित हुआ। तब अचला सुरेशको अग्राह्य करके महिमसे बातें करने लगी। यह देखकर सुरेश एकाएक आँधीकी तरह वेगसे भीतर घुसकर कह उठा -"मुझे माफ करना होगा केदार बाबू। अब और एक मिनट भी मैं यहाँ ठहरनेमें असमर्थ हूँ ना, ना, इस भूलकी क्षमा नहीं है। मेरा अन्तरंग मित्र आज प्लेगमें मर रहा है और मैं सब भूलकर यहाँ बैठे-बैठे समय नष्ट कर रहा हूँ।" इत्यादि इत्यादि। यही सुरेश अब तक अचलाके साथ बैठा हुआ चित्र देख रहा था। एकाएक इस तरह स्वार्थत्यागका किस्सा गढ़कर उसने अचलाको यह जतानेकी चेष्टा की कि वह महिमकी अपेक्षा कितना महान् है! यह अभिमानसे आहत आस्फालन एकदम बालसुलभ है। टगर वैष्णवी और नन्द मिस्त्रीकी जीवन-यात्राके भीतर भी इस प्रकारके शिशुजीवनकी सरलता है। टगर बहुत दिनोंसे नन्दके घर बैठी

है, उसने उसे सब कुछ समर्पण कर दिया है; किन्तु अपने आभिजात्यको बनाये रखा है। वह नन्दकी गृहिणी हो सकती है; किन्तु इस वैष्णवकी लड़कीने अपनी जाति नहीं नष्ट होने दी - बीस बरसमें एक दिन भी उसने नन्दको अपने चौकेमें घुसने नहीं दिया! इसीसे जब नन्दने इस बीस बरसकी गृहिणीका अपनी स्त्री कहकर परिचय देना चाहा, तब टगर क्रोधके साथ व्यंग कर उठी— "वाह रे सात भाँवरोंके मेरे स्वामी...मुझे कहते हैं अपनी घरवाली! जाति-वैष्णवकी बेटी मैं कैवर्त (मल्लाह) की जोरू होऊँगी और क्या!" इस तरह बिना विश्रामके उन दोनोंकी लड़ाई और मार-पीट चलने लगी। नन्दको टगरने अपना सचमुचका मान समर्पण कर दिया था —अन्तको जातिके मिथ्या अभिमानसे उनमें लड़ाई-झगड़ा और मार-पीट होती थी। जैसे दो बच्चे मामूली खिलौनेके लिए लड़ते झगड़ते हैं, यह कलह ठीक वैसी थी और उन बच्चोंका झगड़ा जैसे आपहीसे दम भरमें मिट जाता है, वैसे ही इनका झगड़ा भी अधिक नहीं टिकता था।

मानव-जीवनके क्षुद्र क्षुद्र मान-अभिमानके आकर्षण-विकर्षण आदिके भीतर जो कौतुककी धारा बहती है, उसे शरत्चन्द्रने इसी प्रकार प्रकट किया है। रतन नाईका आत्माभिमान, राजलक्ष्मीकी श्रीकान्तके प्रति सामयिक उपेक्षा, कुंज वैरागीकी पत्नी-प्रीति इन सभीपर उन्होंने कौतुक-हास्यकी उज्ज्वल किरणें बिखेरी हैं। और भी एक प्रकारके लोग हैं, जो नीच और स्वार्थपर हैं, जो सांसारिक बुद्धिमें पक्के हैं, किन्तु मनुष्यकी जो सच्ची सम्पत्ति है उससे कंगाल हैं। शरत्चन्द्रने उनपर व्यंग्य किया है, कसकसकर कोड़े लगाये हैं। कपटी, ढोंगी, पाखंडी, स्वार्थपर लोगोंके सम्बन्धमें उन्होंने विद्रूप किया है और दिखाया है कि वे किस तरह पगपगपर स्वार्थहीन भले आदमियोंसे पराजित हुए हैं। इस प्रकारके चरित्रोंमें प्रधान हैं 'शेष प्रश्न' के अक्षय और 'दत्ता' के रासबिहारी। अक्षय इतिहासका अध्यापक है, सब कुछ जाननेका दम भरनेवाला समाजनीतिक। वह हिन्दूधर्म और नीतिकी ध्वजा है—किसी तरहका अन्याय या व्यभिचार उसे स्पर्श नहीं कर सकता। उसे ठगा नहीं जा सकता। वह शिवनाथकी लम्पटता और मद्यपानकी बातका सर्वत्र प्रचार करके आगरा-समाजकी पवित्रताकी रक्षा करता है। कमल और सबीको

ठग सकती है; किन्तु अक्षय जानता है कि वह कुल्टा है, उसका लगाव सर्वथा त्याग करने योग्य है। किन्तु यह संकीर्णचित्त मनुष्य पग-पगपर अपदस्थ हुआ है, उसने नीचा देखा है—सभीने उसकी संकीर्णताका उपहास किया है। शरत्चन्द्रने दिखाया है कि यह अनुदार अध्यापक ही असलमें अपांक्तेय है—समाजमें स्थान पाने योग्य नहीं है, चरित्रहीन शिवनाथ या कमल नहीं। 'दत्ता' के रासविहारी कुछ भिन्न प्रकृतिके मनुष्य हैं। वह कपटताके प्रतीक हैं। दूसरे किसी परिच्छेदमें उनके चरित्रकी आलोचना की गई है। यहाँपर केवल एक बात कहना जरूरी है। यह जरूरतसे ज्यादा बुद्धिमान् मनुष्य बार-बार असफल हुआ है; उसकी सारी पेशबन्दी चूरमा और बेकार हो गई है। और यह जो परास्त हुआ है सो किसी कौशली सुचतुर शत्रुसे नहीं। वह हारा है एक जवान लड़कीसे (जिसका वह स्वयं अभिभावक था) और एक सब कुछ भूले हुए युवकसे, जिसका सर्वस्व उसने छीन लिया था। शरत्चन्द्रके साहित्यमें इन भोलानाथोंकी ही जय हुई है।

और भी कई स्वार्थान्ध लोगोंका परिचय हमें शरत्-साहित्यमें मिलता है। जैसे श्रीकान्तके मँझले दादा और नये दादा। मँझले दादाके आक्रमणके क्षेत्रका दायरा छोटा था; किन्तु इसी बीचमें बालकोंके ऊपर वह जैसे जैसे विधिपूर्वक अत्याचार करने लगे थे, उसकी तुलना बिरल है। श्रीकांतके नये दादा अखण्ड स्वार्थपरताके जीते जागते दृष्टान्त हैं। उनकी विलासिता, साधारण मनुष्यके प्रति घृणा, मिथ्या सभ्यताका अभिमान, संगीतका व्यर्थ अनुराग, यथार्थ बलिष्ठताका अभाव, इन सब दुर्बलताओंपर शरत्चन्द्रने तीव्र व्यंग्य किया है—खूब मुँह चिढ़ाया है। 'वैकुण्ठका दानपत्र'का जयलाल बनर्जी इसी तरहका एक और नीच-प्रकृतिका मनुष्य है। वह गोकुल, भवानी, विनोद, निताई राय आदि सभीकी खुशामद करके उन लोगोंमें विरोध उत्पन्न करके स्वार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टामें लगा रहता था। अभयाके मंत्र पढ़कर बनाये गये स्वामीको हमने बहुत कम देखा है; किन्तु उतने ही अवकाशमें शरत्चन्द्रने इस पाजीके दुश्मुलपन और झूठ बोलनेकी आदतपर यथेष्ट व्यंग्य-विद्रूप किया है। नारीकी सभी महिमा पूर्णरूपसे धो-पुँछ जाने पर उसका मन कितना निर्लज्ज, कितना कुत्सित हो सकता है, इसका व्यंग्यचित्र शरत्चन्द्रने रासी बाम्हनी, मोक्षदा और कामिनी

बाड़ीवालीके चरित्रमें अंकित किया है। किन्तु उनकी प्रतिभाका श्रेष्ठ विकास इस जगहपर नहीं हुआ है। मानवी जीवनके छिपे हुए माधुर्यको उन्होंने गहरी सहानुभूतिके साथ समझ लेनेकी जो चेष्टा की है, उसीमें उनकी विशेषता है। रस-रचनामें वह सिद्धहस्त हैं; किन्तु इसका भी विकास उनकी सहज सरल गहरी अनुभूतिमें—स्वार्थबुद्धिहीन, दुनियाको भूले हुए चरित्रोंको अंकित करनेमें हुआ है। जो जिठानीजी देवरकी लड़की ज्ञानदाको अनेक प्रकारसे पीड़ित या परेशान करती थीं, उन्होंने उसी स्वर्णमंजिरी (जिठानी) को विद्रूप किया है। किन्तु उनकी प्रतिभाका विशेष विकास उस जिठानीका चरित्र अंकित करनेमें हुआ है, जिन्हें इस चिन्तासे रातको नींद नहीं आई कि उनके देवरके लड़केको उनके पाससे हटा लिये जानेपर बदस्तूर खानेको मिला होगा या नहीं और जिन्होंने यह हास्यकर प्रस्ताव गम्भीर भावसे उठाया था कि वह मुकदमा लड़कर उन बच्चोंको उनकी माके पाससे ले आवेंगी। कलंककी आड़में जीवनकी जो महिमा छिपी हुई है, उसे शरत्चन्द्रने ढूँढ़ निकाला है और निर्बुद्धिताके नीचे मनुष्यत्वकी जो छिपी हुई धारा निरन्तर बहती रहती है, उसे उन्होंने हँसीके कलरवसे मुखरित कर दिया है।

१२—गठन-कौशल

शरत्‌चन्द्रकी रचना-रीतिकी आलोचना करते समय पहले ही कहानीके गठन-कौशलपर दृष्टि पड़ेगी। नाटक या उपन्यासके चरित्र और कहानीमें कौन प्रधान है, इस प्रश्नको उठाकर समालोचकोंने बड़ी बहस की है। ट्रेजेडीकी आलोचनामें अरिस्टोटल (अरस्तू) ने कहा है कि प्लाट चरित्रसृष्टिकी अपेक्षा मुख्य है। उनके इस मतको अनेक लोग नहीं मानते। यहाँतक कि ग्रीक ट्रेजेडीके सम्बन्धमें भी यह मत ग्रहण करने योग्य नहीं जान पड़ता। वर्तमान कालके समालोचक कहानीकी अपेक्षा चरित्रकी सृष्टिको ही प्रधान बतलाते हैं। इस विषयमें कोई सर्वसम्मत निर्देश देना कठिन है। कहानीका उद्देश्य मानव-मनके निगूढ़ रहस्यको अभिव्यक्त करना है, और मानव-मनका निगूढ़ रहस्य कहानीके माध्यमसे ही प्रकाशित होता है। श्रेष्ठ आर्ट इन दोनों उपादानोंके समन्वयकी चेष्टा करता है।

शरत्‌चन्द्रके उपन्यासोंकी गहरी आलोचना करनेपर जान पड़ता है कि उनका प्रधान लक्ष्य चरित्रकी सृष्टि है। आख्यायिका चरित्रसृष्टिके वाहनके रूपमें ही उद्‌भावित हुई है। मानव-मनकी परम आश्चर्यमय विशेषता देखकर उनकी प्रतिभा स्फुरित हुई है और उसे प्रकट करनेके लिए ही उन्होंने कहानीके सूत्रको गूँथा है। केवल 'परिणीता' में ही हम देखते हैं कि कहानीके रहस्यने चरित्रकी विशेषताको दबा लिया है। शेखरकी भूल ही इस उपन्यासकी प्रथम और प्रधान बात है। इसको छोड़कर अन्य सब कहानियोंमें चरित्रके रहस्यने प्रधानता प्राप्त की है। इसी कारण, शरत्‌चन्द्रकी अपेक्षाकृत कच्ची रचनाकी शिल्पकलाको विचारकर देखनेसे पाया जायगा कि उसमें चरित्र-सृष्टिके लिए उपयुक्त कहानी उद्‌भावित नहीं हुई, और उसका यह दैन्य अविश्वसनीय घटना या भावकी अति-

शयतासे परिपूर्ण वक्तृतासे भरना पड़ा है। 'देवदास' उपन्यासकी चन्द्रमुखीसे संबंध रखनेवाली कहानी, 'स्वामी', और 'बिराजबहू' का प्रथम अंश, 'बड़ी बहिन'का उपसंहार और 'विप्रदास' इसी कचाईका परिचय देते हैं*। शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें हम देखते हैं कि चरित्रका और कहानीका बहुत सुन्दर सामंजस्य हुआ है। कही आवश्यकतासे अधिक बाँधाबाँधी या खींच-तान नहीं है; कहानी स्वाभाविक स्वच्छंद गतिसे आगे बढ़ती गई है—वह नायक या नायिकाके हृदयकी अभिव्यक्तिके लिए कहींपर थमती नहीं। अथ च चरित्रका प्रत्येक अणु-परमाणु - छोटेसे छोटा अंश—कहानीके भीतरसे प्रकाशित हुआ है, जैसे नायक-नायिकाके हृदयका गूढ़ रहस्य प्रकट करनेके लिए कहानी पहलेसे ही सजाई हुई थी। 'गृहदाह' शरत्चन्द्रका श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें नारी-हृदयके गहरेसे गहरे रहस्यकी अपूर्व अभिव्यक्ति और पुंखानुपुंख विश्लेषण दिया हुआ है। गठन-कौशलकी दृष्टिसे भी यह उपन्यास अद्वितीय है। कहानीके आरंभ, परिणति और परिसमाप्तिके बीच अतिसुन्दर सामंजस्य है; कहींपर कोई घटना अनावश्यक रूपसे बड़ी नहीं हो उठी या कोई अंश एकाएक खंडित नहीं हो गया। प्रत्येक ही खंड-चित्र निर्दोष बन पड़ा है, और सभी खंड-चित्र एक बृहत्तर ऐक्यके अंशमात्र हैं।

शरत्चन्द्रके उपन्यासोंमें आख्यायिका अनेक उपायोंसे गठित हुई है। कुछ उपन्यासोंमें केवल एक ही कहानी है, कोई अप्रासंगिक घटना नहीं है। प्रारंभमें नायक नायिकाकी अवस्थाका वर्णन हुआ है और क्या करके गड़बड़का सूत्रपात हो सकता है, इसकी सूचना भी उपन्यासके प्रथम भागमें ही दी है। इसके बाद बीचके हिस्सेमें आख्यायिकामें अनेक जटिलताएँ और संघर्ष आकर

---

* शरत्चन्द्रकी अधिकांश कहानियोंमें एक नायिका रहती है, जिसकी शक्ति अनन्य-साधारण होती है और अनेक बाधाओंके भीतरसे वह शक्ति कैसे प्रकाशित होती है—यही उनके उपन्यासका प्रधान वक्तव्य बन बैठता है। जहाँ नायिकाकी व्यथा अन्तर्लीन नहीं है, वहाँ कहानी भी प्राणहीन हो गई है। सुनन्दाका इतिहास विस्मयजनक है, किन्तु वह सम्पूर्ण सजीव नहीं है। 'नव विधान' उपन्यास इस तरहकी प्राणहीनताका सबसे बड़ा नमूना है। जान पड़ता है, उपन्यासका कोई भी चरित्र सजीव मनुष्य नहीं है। नायिका उषाने कुछ कलके खिलौनोंमें कूक भर दी है और वे एक निर्दिष्ट मार्गपर चल फिर रहे हैं। यहाँ कहानीके उपयोगी चरित्र नहीं सिरजे गये।

उपस्थित होते हैं और एक घटनासे यह जटिलता चरम (क्लाइमेक्स) को पहुँच जाती है। यही उपन्यासकी सबसे बढ़कर संकटमय स्थिति होती है। फिर इसके बाद उपन्यास परिसमाप्तिकी ओर जाता है। साधारणतः दो विस्मयजनक अप्रत्याशित घटनाएँ उपन्यासमें रहती हैं। एक मध्य भागमें, जहाँ कहानी चरममें पहुँचती है और एक परिसमाप्तिमें। मध्यभागमें जिस जटिलता या उलझनकी सृष्टि होती है, वह यहाँपर सुलझा दी जाती है। 'दत्ता', 'पण्डितजी, 'देवदास', 'बैकुंठका दानपत्र,' 'गृहदाह' आदि इस श्रेणीके उपन्यास हैं। इन सब उपन्यासोंमें शरत्चन्द्रने किसी अवान्तर घटनाका समावेश नहीं किया; अथ च उनके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें कहानीकी स्वल्पता या दीनता भी नहीं है। 'दत्ता' की कहानी विशेषरूपसे नरेन्द्र-विजया-विलास-बिहारीकी कहानी है। इनके पिताओंके बाल्यजीवनके इतिहासका मूल्य है; किन्तु उस इतिहासमेंसे जो अंश उपन्यासके लिए प्रासंगिक हैं, केवल उतने-हीका उल्लेख किया गया है। उपन्यासके अन्तिम भागमें नलिनी प्रधानता प्राप्त कर रही थी; किन्तु बहुत जल्दी ही हमें मालूम हो गया कि नलिनीका मन अन्यत्र बँधा हुआ है, और इसीलिए उसे लाया गया है कि विजयाके हृदयमें मिथ्या ईर्ष्याका संचार हो और उसके मनमें छिपी हुई सत्य बात प्रकट हो जाय। 'गृहदाह' उपन्यासमें भी हम देखते हैं कि मृणाल, राक्षसी, राम बाबूने अपनी निज-स्व कहानीके द्वारा उपन्यासको बोझिल नहीं बनाया। महिम-अचला-सुरेशकी कहानीमें इन लोगोंका जितना प्रयोजन है, उतना ही स्थान इन्होंने पाया है। उससे अधिक जगह नहीं घेरी।

और भी एक कौशल ध्यान देनेके योग्य है। 'गृहदाह' और 'दत्ता' के मध्य भागमें जिस जटिलताकी सृष्टि हुई है, वह समाप्त न होनेवाली जान पड़ती है; किस तरह उसका अन्त होगा, इस बारेमें प्रायः अन्ततक अनिश्चितका रहस्य बना ही रहता है। जब यह जान पड़ा है कि प्रबल बाधा-विपत्तिके रहते भी विजया नरेन्द्रको ही ग्रहण करेगी, तभी हम देखते हैं कि रासबिहारीने सब ठीक कर डाला है और विजया भी समझती है कि उसका छुटकारा नहीं है। लेकिन फिर उसके बाद ही देखते हैं कि धूमकेतुकी तरह उपस्थित होकर नरेन्द्र सब मामला उलट पलट देता है। इस कहानीमें उत्थान-पतन अनेक बार हुआ

है; जब कोई लहर जोरसे ऊँची उठी है, तब उसके बाद ही उसने आवर्त्त (भँवर) की रचना की है। ब्याहका दिन ठीक हो गया है। कन्याको आशीर्वाद देनेकी रस्म तक पूरी हो चुकी है। एकाएक नरेन्द्रनाथने विजयाके पिताकी चिट्ठीकी बात कहकर उसके चित्तको उद्भ्रान्त कर दिया और दूसरी ओर भी रासविहारीके साथ विजयाकी खुलासा कलह हो गई। इसके बाद ही दयालके घर जाकर, नरेन्द्र और नलिनीका संसर्ग देखकर विजया विलास-बिहारीके प्रति अनुकूल हो पड़ी और घर लौटकर विना आपत्तिके ब्राह्म विवाहके इकरारनामेपर उसने हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद नरेन्द्रनाथने फिर उपस्थित होकर सब उलट-पलट दिया। इसी तरह यह कहानी दायें-बायें झुकती हुई तिरछी चालसे चली गई है।

'गृहदाह' उपन्यासका गठन और भी सुन्दर है। घटनाओंको इस तरह सजाया गया है कि सुरेश और महिमके बीच किसी एक जनके साथ अचला स्थिर होकर नहीं रह सकी। जब जान पड़ा है कि वह एकान्त भावसे महिमपर अनुरक्त है, तभी हम देखते हैं कि उसका प्रतिवेश (आस-पासकी स्थिति) इस तरह रचित हुआ है, अथवा अचानक ऐसी कोई घटना घटित हुई है कि वह उसके पाससे हटकर सुरेशके साथ आ मिली है। फिर सुरेशके साथ मिलनेके बाद ही हम देखते हैं कि वह अनिवार्य वेगसे विपरीत दिशामें संचालित हुई है। गँवईगाँवकी विरुद्धता, मृणालके सम्बन्धमें ईर्ष्या और महिमकी नीरव उदासीनतासे जब अचलाका मन वितृष्णासे भर रहा था, ठीक इसी समय बाहरसे सुरेशने जोरसे पुकारा—"महिम! कहाँ हो जी?" इसके बाद कई दिनकी खींच-तानके बाद अचला खुल्लमखुल्ला विद्रोह करके सुरेशके साथ चली आई। किन्तु इसके बाद ही महिम बहुत बीमार हो गया और जिस पतिके विरुद्ध विद्रोह करके अचला उससे अलग हो गई थी, उसीको उसने सेवाके द्वारा फिर प्राप्त कर लिया। किन्तु उसने पतिको पाकर भी नहीं पाया। सुरेशने आकर गड़बड़ मचा दी। जब कठिन संघर्षके बाद उसने सुरेशको आत्मसमर्पण किया है, सुरेशके पास बैठकर धनी गृहिणीका साज सजकर राम बाबूके घरमें उपस्थित हुई है, तब उसने देखा कि वहाँ महिम मौजूद है। इस प्रकार एकके बाद एक घटना सजाई गई है—कहीं भी अपूर्णता नहीं है, कहीं भी बाहुल्य नहीं है, कहीं भी विराम नहीं है।

कहानीके गठन-कौशलपर विचार करते समय और भी एक बात याद रखनी होगी। शरत्चन्द्रने स्वयं एक जगह कहा है कि केवल बाहरकी घटना सजाकर भीतरकी माप नहीं की जा सकती। श्रेष्ठ साहित्यकी रचनामें देखा जाता है कि गोपनतम रहस्यके साथ बाहरकी घटनाका भी बहुत घनिष्ठ योग है। महिमको छोड़कर सुरेश और अचलाका मुगलसराय स्टेशनपर उतरकर डिहरी चले जाना 'गृहदाह' उपन्यासकी सबसे बड़ी आकस्मिक और अद्भुत घटना है। केवल बाहरसे विचार करने पर यह असंभव जान पड़ती है। किन्तु सुरेश पराई स्त्रीपर लुभाया हुआ और चंचल है, वह दुःसाहसी और दुर्दमनीय प्रकृतिका मनुष्य है। इसके सिवा उसके इस कुकर्ममें अचलाकी अन्तरतम आत्माका समर्थन भी था। सुरेशने आप ही कहा है—"पतिके घरमें खड़े होकर उसके मुँहपर ही तुमने कहा था कि तुम एक पर-पुरुषको प्यार करती हो—इसे क्या तुम भूल गईं? जिस आदमीने घरमें आग लगाकर तुम्हारे स्वामीको जला डालना चाहा था - ऐसा तुम्हारा विश्वास है, उसीके साथ तुमने चले आना चाहा था और चली भी आईं। याद आता है...?" अचलाके हृदयके अन्तस्तलमें सुरेशके लिए जो समवेदना सोई हुई थी, वह इस घटनाके बीच प्रकट हुई है। किन्तु आगेकी कहानीमें इस बातका प्रमाण मौजूद है कि यही उसके हृदयकी अन्तिम बात नहीं है। जिस रातको असीम दुर्योगमें अचलाने सती-धर्मको तिलांजलि दी थी, उस दिनके आचरणमें भी बाहरकी घटना और भीतरके अनुरागके सामंजस्यका परिचय मिलता है। अचला सुरेशको घृणा करनेकी चेष्टा करती थी; किन्तु यह भी वह समझती थी कि सुरेशने उसीके लिए अपना सर्वस्व खोया है; उसे आनन्द और आरामसे रखनेके लिए उसके मनमें अनन्त व्याकुलता है। इसी कारण जब सुरेश बाहरसे भीगकर आया तब उसने उसके लिए उद्वेग प्रकट किया। उसकी जो अन्तरात्मा सुरेशके प्रति अनुकूल थी, वह जाग उठी है और राम बाबूके आग्रहपूर्ण आवेदन और पुनःपुनः अनुरोधने उसे हिला दिया है। अचलाने अपने मनको समझाया था कि राम बाबूके दबाव तथा मिथ्या सम्मान और श्रद्धाके लोभने ही उसे इस असीम अन्धकारकी राहमें ठेल दिया था। वह नहीं जानती थी कि बाहरकी इस प्रेरणाकी आड़में उसके अपने ही हृदयकी गोपन आकांक्षा और अनुराग मौजूद था। 'दत्ता' में भी यह सामंजस्य सर्वत्र विद्यमान है। वनमाली बाबूने विजया

नरेन्द्रनाथको ही दी थी। इसका प्रथम आभास उपन्यासके आरम्भमें ही दिया हुआ होनेपर भी, विजयाने इस विषयके सम्पूर्ण तथ्यको तभी जाना जब मन ही मन उसने नरेन्द्रको पसन्द कर अपना लिया था। रासबिहारीने बाहरसे दबाव डालकर विजयाको बाँध लेना चाहा था; लेकिन विजया उसी दिन अपनेको सम्पूर्ण रूपसे उसके हाथमें सौंपनेके लिए प्रस्तुत हुई, जिस दिन उसे निःसंशय रूपसे यह विश्वास हो गया कि विलासबिहारीका अपराध ही सबसे कम है।

इस श्रेणीके जिन अन्यान्य उपन्यासोंका उल्लेख किया गया है, वे 'गृहदाह' और 'दत्ता' के समान सुगठित नहीं हैं; किन्तु जिस मात्रा-बोध और सामंजस्यके ज्ञानने इन दोनों उपन्यासोंके गठन-कौशलको निर्दोष बनाया है, उसका न्यूनाधिक परिचय उनके सभी उपन्यासोंमें मिलता है। केवल 'देना-पावना' में थोड़ी-सी विषमता देखी जाती है। 'देना पावना' में बाहरी घटनाके साथ-साथ हृदयकी आसक्ति-विरक्तिका समन्वय अवश्य साधा गया है, किन्तु उसके गठनकी रीति अन्यान्य उपन्यासोंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारकी है। कहानीकी चरम संकटमय घड़ी (क्लाइमेक्स) उपन्यासके मध्य भागमें नहीं, प्रारंभमें ही उपस्थित हो गई है, जहाँ षोड़शीने जीवानन्दकी शय्या स्पर्श करके नारीत्वका अनुभव किया, उसका पता पाया। इसके बाद वह फिर किसी तरह भैरवीके काममें मन नहीं लगा पाई। कोई कहानी आरंभमें ही चरम (क्लाइमेक्स) पर पहुँच जाय तो उसे परिसमाप्ति तक खींच ले जाना कष्टकर या बहुत कठिन होता है। इसलिए शरत्चन्द्रने एक उपाय खोज निकाला है। वह है निर्मल-चन्द्र और हैमवतीके उपाख्यानकी अवतारणा। जीवानन्दके संस्पर्शमें आकर षोड़शीकी जो सोई हुई चेतना अँगड़ाई लेकर जाग उठी थी, वह निर्मल और हैमकी शान्त तथा स्वच्छंद जीवन-यात्रा देखकर उत्तेजित हो उठी। जीवानन्द और षोड़शीके बीच जो विरुद्धता थी, वह इन दोनोंकी सहायतासे सम्पूर्ण रूपसे मिट गई। षोड़शीने स्वच्छन्दतासे आनन्दके साथ भैरवीकी गद्दी छोड़कर अपने आरंभ किये हुए अधूरे कामका भार जीवानन्दके हाथमें सौंप दिया। जीवानन्दने जो सम्पूर्ण रूपसे षोड़शीको आत्मसमर्पण करना चाहा था, उसकी प्रेरणा अवश्य उसके अपने हृदयसे ही आई थी, किन्तु निर्मलके विरुद्ध ईर्ष्याने भी इस प्रेरणाको कुछ जगा दिया था। उपन्यासके उपसंहारमें हम देखते हैं

कि जीवानन्द अपना काम छोड़कर, षोड़शीका हाथ पकड़कर चला गया। पति और पत्नीके इस सम्मिलनमें हैमका उपकार करनेकी इच्छा मौजूद है।

'देना पावना' में दो कहानियाँ हैं। एक जीवानन्द और षोड़शीकी और दूसरी निर्मल तथा हैमवतीकी। दूसरी कहानी गौण है और पहली या मुख्य कहानीका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए ही उसकी अवतारणा की गई है। किन्तु शरत्चन्द्रके कई उपन्यासोंमें एकसे अधिक कहानियाँ इकट्ठी हो गई हैं। उपन्यास या नाटकमें एकसे अधिक कहानी एकत्र करनेसे आख्यायिकामें तरह तरहकी जटिलता आ जाती है। समालोचकको देखना होगा कि इन सब कहानियोंमें ऐक्य बनाये रखा गया है कि नहीं। एकसे अधिक कहानीकी अवतारणा करनेसे निःसन्देह आख्यायिका विस्तृत हो जाती है; किन्तु बिखरी हुई अलग अलग घटनाओंके बीच एक संयोग-सूत्र स्थापित न कर पानेसे वह कुछ कहानियोंका संग्रहमात्र बनकर रह जाती है। और उन विभिन्न विच्छिन्न कहानियोंकी क्या परिणति होगी, इस विषयमें पाठकको कोई आग्रह नहीं रहता। 'चरित्रहीन' 'बाम्हनकी बेटी' और 'शेष प्रश्न'—इन तीन उपन्यासोंमेंसे प्रत्येकमें शरत्चन्द्रने दो-दो कहानियोंकी अवतारणा की है। अरुण और सन्ध्याके प्रणय और विवाहका प्रस्ताव 'बाम्हन-की बेटी' की प्रधान कहानी है। ज्ञानदाकी वेदनामयी आख्यायिकाका दायरा छोटा है, किन्तु यह भी एक सांगोपांग कहानी है। इसके साथ अरुण और सन्ध्याके विवाह-प्रस्तावका कोई लगाव नहीं है। 'शेष प्रश्न' उपन्यासका आरम्भ शिवनाथ और कमलका ब्याह होनेके बाद हुआ है और कुछ ही समयके बाद अजित और मनोरमाके विवाह-प्रस्तावका उल्लेख किया गया है। किन्तु उपन्यासके आगे बढ़ते-न-बढ़तेही हम देखते हैं कि शिवनाथ और कम-लका शैवमतसे हुआ विवाह टूट गया है—सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। शिवनाथ मनोरमाके ऊपर आसक्त हो गया है और अजित कमलको पानेके लिए प्रलुब्ध हो उठा है। बादको दोनों कहानियाँ जैसे विच्छिन्न हो गई हैं—एक कमल और अजितकी कहानी और दूसरी शिवनाथ और मनोरमाकी कहानी। 'चरित्रहीन' उपन्यासमें इस प्रकारकी विच्छिन्नता और भी अधिक स्पष्ट है। पहले हम देख पाते हैं कि सतीश और सावित्रीकी आख्यायिकामें उपेन्द्रका स्थान नहीं है। इसके बाद उपन्यासके दो प्रधान नारीचरित्र—किरणमयी और

सावित्री—एकदम निःसम्पर्क हैं, एकका दूसरेसे कोई लगाव नहीं है। उपन्यासकी विच्छिन्न घटनाओंको जिन दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—श्रेणीबद्ध किया जा सकता है, उन दोनोंके बीच संयोगका सूत्र कहाँ है?

शरत्चन्द्रने विभिन्न कहानियोंको एकत्र करनेमें अद्भुत निपुणताका परिचय दिया है। उन्होंने दो कहानियोंको एकत्र करनेके लिए किसी तरहकी जबर्दस्ती नहीं की है। कहानियाँ अपनी सहज स्वाधीन राहमें स्वाभाविक गतिसे चलती गई हैं। जान पड़ता है, अलक्षित भावसे स्वतः उनमें ऐक्य आ गया है। यह ऐक्य कृत्रिम नहीं है, अनायास प्राप्त हुआ है। इसका मूल घटनाके समावेशमें नहीं, दो-एक चरित्रोंके सहज विस्तारमें है। 'बाम्हनकी बेटी' का प्रधान विषय अरुण और सन्ध्याके विवाहका प्रस्ताव नहीं, प्रियनाथ डाक्टरका चरित्र है। यह उन्नत-चेता, किन्तु स्वल्पबुद्धि डाक्टर सारे उपन्यासमें छाए हुए हैं, और उसकी बिखरी हुई घटनाओंमें ऐक्य लाये हैं। सन्ध्याके वह पिता हैं। उनके चरित्रकी दुर्बलता और महत्त्व कहाँपर है, यह सन्ध्या जानती है। और ज्ञानदाकी रक्षा उन्होंने ही की है। सन्ध्याकी ट्रेजेडीके साथ ज्ञानदाकी ट्रेजेडीका सम्पर्क नहीं है; किन्तु उपन्यासके अन्तमें दोनों ही मिलित हुई हैं। कारण, दोनों ही प्रियनाथकी संगिनी हैं। 'शेष प्रश्न' उपन्यासमें यह ऐक्य कमल और आशु बाबूके चरित्रकी विशेषतासे आया है। पिछले किसी परिच्छेदमें दिखाया गया है कि कमलके चरित्रके दो पहलू हैं। एक शिवनाथके साथ सम्बन्ध-विच्छेदमें और दूसरा अजितके साथ उसके मिलनमें अभिव्यक्त हुआ है। आशु बाबूकी सहज उदारता प्रकाश और हवाकी तरह उपन्यासके ऊपर छाई हुई है। कोई उनके प्रभावसे दूर नहीं जा सका। वह सभीको पहचानते हैं, सभीके हृदयमें पैठ गये हैं। उपन्यासकी आख्यायिकामें उन्हें कुछ करनेको नहीं है; किन्तु जान पड़ता है, वह अपने लम्बे-तड़ंगे शरीर और उससे भी अधिक विशाल अर्थात् उदार हृदयको लेकर उपस्थित न रहते तो सभी कुछ फीका हो जाता।

'चरित्रहीन' उपन्यासकी कहानी 'शेष प्रश्न' और 'बाम्हनकी बेटी' की कहानीकी अपेक्षा अधिक उलझी हुई है—इसकी घटनाएँ बहुत अधिक अलग अलग और बिखरी हुई हैं। सतीश जब संथालपरगनामें जाकर आश्रय

लेता है, तब पाठक भी कुछ देरके लिए उपेन्द्र, सावित्री, किरणमयी आदिको भूल जानेके लिए वाध्य होता है। दिवाकर और किरणमयीके भागनेका और प्रवासका चित्र खींचते समय ग्रंथकारने अन्य सब चरित्रोंकी जीवन-यात्राके ऊपर पर्दा खींच दिया है। किन्तु आख्यानोंकी अधिकता रहने पर भी इस उपन्यासमें ऐक्यका अभाव नहीं हुआ। इस उपन्यासका नायक चरित्र-हीन सतीश है; किन्तु प्लाटके केन्द्रमें स्थित चरित्र है, चरित्रवान् उपेन्द्र। उनके साथ सभीका सम्पर्क है और उनके चरित्रके परिवर्तनको उपन्यासका केन्द्र मान लें तो इसके संयोगका सूत्र पाना सहज हो जाता है। पहले हम देखते हैं, सावित्रीके साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं है; यहाँ तक कि मेसके राखाल बाबूने सावित्रीके साथ सतीशके लगावका उल्लेख करके उपेन्द्र बाबूको जो चिट्ठी लिखी थी, उसपर उन्हें विश्वास नहीं हुआ और उसे उन्होंने टाल दिया। उनके मनमें कभी यह सन्देह नहीं हुआ कि उनके सहोदर भाईके तुल्य सतीश कभी ऐसे नीच संसर्गमें आ सकता है। सावित्रीके सम्बन्धमें उनकी विरुद्धता उस दिन चरम अवस्थामें पहुँच गई (चरित्रहीन बीसवाँ परिच्छेद) जिस दिन कुछ न कहकर वह सुरबालाको लेकर सतीशके डेरेसे चले गये। उपन्यासका पूर्वार्द्ध यहीं समाप्त हो गया। उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धकी अपेक्षा लम्बा है। उसकी समाप्तिमें वह पश्चात्तापके साथ सावित्रीसे कहते हैं—"उस रातको अगर तुम बहन, अपनेको जाहिर करके मुझे लौटा ले जातीं तो शायद मेरा शेष जीवन इतने दुःखमें न कटता।" फिर इसी सावित्रीके हाथमें अपना असमाप्त काम सौंपकर वह इस संसारमें बिदा हो गये! उपन्यासकी दोनों नायिकाएँ—सावित्री और किरणमयी—परस्पर एक दूसरेसे विच्छिन्न हैं; किन्तु इनके बीचमें उपेन्द्र मौजूद हैं। कहानीके प्रारम्भमें हम देखते हैं कि वह किरणमयीके परम आत्मीय हैं; किन्तु सावित्रीके साथ उनका कोई लगाव नहीं है। उपसंहारमें देखते हैं कि सावित्री उनके बहुत निकट आ गई है; किन्तु किरणमयी बहुत दूर हट गई है। यह असम्भव परिवर्तन ही इस विराट् उपन्यासका प्लाट है और उपेन्द्रकी मृत्युशय्याके पास इन दोनों परम अद्‌भुत रमणियोंने एकत्र होकर कहानीके ऐक्यके प्रति हमारी दृष्टिको आकर्षित किया है।

ऊपर जिन तीनों उपन्यासोंकी आलोचना की गई है, उनके प्लाटमें दो दो कहानियाँ मिल गई हैं। 'ग्रामीण-समाज' और 'श्रीकान्त' – इन दोनों उपन्यासोंकी कहानी भी बहुत जटिल और विस्तृत है। इन दोनों उपन्यासोंमें बहुत-से नर-नारी एकत्र हुए हैं। इनका आपसी सम्बन्ध कहींपर भी गहरा नहीं है। बहुत स्थानोंपर यही जान पड़ता है कि कोई लगाव ही नहीं है। यह अलगाव 'श्रीकान्त' उपन्यासमें ही अधिक प्रकट हुआ है। यह ग्रंथ एक भ्रमण-वृत्तान्तके हिसाबसे रचा गया था। किन्तु थोड़ा विचार करके देखनेसे ही देख पड़ेगा कि उल्लिखित दोनों उपन्यासोंके भीतर भी प्लाटका थोड़ा-बहुत ऐक्य है और श्रीकान्तके भ्रमण-वृत्तान्तमें विस्तार और विचित्रता चाहे जितनी हो, उसकी बिखरी हुई घटनाएँ बिलकुल ही असंलग्न नहीं हैं। 'ग्रामीण-समाज' में रमा और रमेशके प्रणयने और 'श्रीकान्त' में श्रीकान्त तथा राजलक्ष्मीकी अद्भुत सुन्दर कहानीने अन्य सब घटनाओंको एकत्र कर दिया है। बेनी घोषाल, गोविन्द, भैरव—समाजके इन सब क्रूर अथवा दुर्बल-चरित्र लोगोंका चित्र इनमें खूब सजीव हो उठा है। किन्तु ग्रन्थकारने यह भी दिखाया है कि ये (यहाँतक कि बेनी घोषाल तक) उपन्यासोंमें अपना कोई दावा लेकर नहीं आ सके हैं। रमा और रमेशके बीच जो दुरधिगम्य और जटिल सम्पर्क देख पड़ता है, उसे इन्होंने और भी जटिल कर दिया है। उपन्यासमें यही उनका दान और यही उनका दावा है। विश्वेश्वरी आदर्शलोककी रहनेवाली हैं—उपन्यासमें उनका चरित्र या चित्र सम्पूर्ण रूपसे वास्तव नहीं हो पाया; लेकिन तो भी वह उसी जगह सबसे अधिक सजीव हो उठी हैं, जहाँ वह रमा और रमेशके सम्पर्कको समझ पाई हैं। रमेशके जीवनकी एक ऐसी दिशा है, जिसके साथ रमाका लगाव कम है। यह है उसकी ग्राम-सुधारणाकी चेष्टा। उपन्यासकी केन्द्रीय या मुख्य कहानीके साथ इसका योग-सूत्र खूब स्पष्ट और सहज न होनेके कारण रमेशके जीवनका यह पहलू खूब प्रत्यक्ष और सत्य नहीं हो सका।

'श्रीकान्त'की कहानीमें असाधारण विचित्रता है और उसमें अगणित नर-नारी भीड़ किये खड़े हैं। वे अपने अपने प्रयोजनसे उपन्यासमें आये हैं और चले गये हैं। किसीके साथ किसीका लगाव नहीं है। वर्तमान कालमें बड़े लंबे उपन्यास लिखनेका रिवाज चल पड़ा है। रोमा रोलाँके जॉन क्रिस्टोफर, टाल्सटायके

बुड्डेन ब्रुक्स और दि मॅजिक माउंण्टेन तथा रेमंडके पीसेंट्स आदिका खयाल सभी पाठकोंको आवेगा। केवल कलेवर अथवा घेरेके विस्तारकी दृष्टिसे विचार करने पर भी 'श्रीकान्त' की तुलनामें ठहरनेवाले उपन्यास बिरले ही हैं। अथ च, बड़े विस्मयकी बात यह है कि इस विचित्रतामें भी ग्रंथकार अपना मूल सूत्र नहीं खो बैठे—कोई एक क्षुद्र उपाख्यान या कोई एक विच्छिन्न चरित्र अपनी सीमाके बाहर नहीं गया। केवल इन्द्रनाथ और अन्नदा दीदी ही अपने जीवनकी परिसमाप्तिका पता न दे गये हों—यह बात नहीं है, अन्यान्य छोटेसे छोटे चरित्रोंने भी इस संयमका परिचय दिया है। गौरी तिवारीकी लड़की अपने पिताके घर जा पाई कि नहीं, 'नये दादा' डिपुटी हुए हैं कि नहीं, जो ब्राह्मधर्मावलंबिनी स्त्री निष्ठुर बंगाली युवकके द्वारा छली गई वह किस तरह इस निष्ठुर व्यवहारको ग्रहण करेगी, विगत यौवनकी तरह नन्द मिस्त्री भी टगरके पाससे खिसक पड़ा कि नहीं—इन सब बातोंको ग्रन्थकारने सम्पूर्ण रूपसे कह देना नहीं चाहा।

श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके प्रणयके इतिहासने आदिसे अन्त तक अपनी प्रधानताको बनाये रखा है और अन्यान्य खंड आख्यानोंने इसी कहानीको परिपुष्ट किया है। राजलक्ष्मीने अन्नदा दीदी और अभयाको नहीं देखा; किन्तु उनकी कहानीके साथ अपनी समस्याका लगाव देखा है। मन्त्र पढ़कर पाये गये पतिके प्रति उसकी जो भक्ति थी, उसे अन्नदा दीदीकी कहानीने और भी अधिक जोरदार कर दिया है; अभयाने विद्रोहके तारको झनकार दिया है, सुनन्दाने धर्म-निष्ठाका आग्रह दिया है, और शिबू पण्डितका मन्त्र सुनकर राजलक्ष्मीके मनमें मन्त्रकी सजीवता या सार्थकताके संबंधमें सन्देह उत्पन्न हो गया है। श्रीमान् बंकूने राजलक्ष्मीके अतृप्त मातृत्वको खुराक पहुँचाई है। किन्तु जैसे यह देखा गया कि इन लड़कोंको बहलानेके मिथ्या मातृत्वके खिलवाड़से राजलक्ष्मीका काम नहीं चलता—उसकी मातृत्वकी भूख नहीं मिटती—वैसे ही बंकू गौण हो गया। इसी तरह प्रायः प्रत्येक कहानीके साथ श्रीकान्त और राजलक्ष्मीका संयोग स्थापित हुआ है। इस ग्रन्थका चौथा पर्व बहुत नीरस है। इसका प्रधान कारण यह है कि मूल कहानीके साथ इसके छोटे-छोटे आख्यानोंका सम्पर्क सहज नहीं है। पूटूको

लेकर जो कहानी तैयार हुई है वह असंलग्न नहीं है। कारण, बंकूने जिन्हें एक बार अलग कर दिया था, वे श्रीकान्तके विवाहके प्रस्तावसे ही फिर मिलित हुए थे (श्रीकान्त, द्वितीय पर्व, पहला परिच्छेद) और सुनन्दा तथा गुरुदेवने जो आड़ खड़ी की थी, वह पूँटूके आनेसे हट गई। यह आख्यायिका असंलग्न न होने पर भी, इसमें पुनरुक्ति दोष आ गया है। कमललताकी आख्यायिकाके साथ मूल कहानीका संयोग बहुत ही बनावटी है। कमलके विरुद्ध राजलक्ष्मीको कोई यथार्थ ईर्ष्या नहीं है। कारण, राजलक्ष्मी वैवाहिक मन्त्रसे डरी हुई है। अतएव वह जानती है कि मन्त्र पढ़ाकर ब्याही गई स्त्री ही श्रीकान्तको उसके पाससे दूर हटा ले जा सकती है। यह सन्देह कभी स्थायी भावसे राजलक्ष्मीके मनमें आ नहीं सकता कि श्रीकान्त किसी और स्त्रीपर आसक्त होगा। अगर ऐसा होता तो उन दोनोंके प्रणयका लंबा और विचित्र इतिहास मिथ्या हो जाता। वास्तवमें भी देखा जाता है कि राजलक्ष्मी और कमललताके बीच सहजमें ही मेल हो गया और संगीतके विषयमें जो प्रतियोगिताका आभास है, उसमें हम राजलक्ष्मीको नहीं पाते; जो 'पियारीबाई' बिलकुल मर गई थी, वही फिर जैसे जीकर जाग उठी है, ऐसा जान पड़ता है। कहानीके उपसंहारमें यह पुनरुज्जीवन अनुपयोगी और आकर्षणहीन हो गया है। कमललताके साथ राजलक्ष्मीका कोई सच्चा सम्बन्ध नहीं है, उसके संस्पर्शमें आकर उसने अपनी समस्याके बारेमें किसी नवीन प्रकाशका पता नहीं पाया। इसीलिए यह आख्यायिका अप्रासंगिक है।

पहलेके तीन पर्वोंमें वर्णित प्रायः प्रत्येक आख्यानके साथ मूल-कहानीका लगाव है; किन्तु ऐसी दो-एक कहानी या घटनाएँ हैं, जिनके साथ श्रीकान्तका लगाव रहनेपर भी राजलक्ष्मीका कोई लगाव नहीं है। केवल प्लाटकी ओरसे विचार करनेपर इन लोगोंकी सार्थकता क्या है, यह प्रश्न आप ही मनमें उठेगा। श्रीकान्त कर्मवीर महामानव नहीं है। वह राजलक्ष्मीकी अपेक्षा दुर्बल है। राजलक्ष्मी उसे अपने साथ खींचती चली है। वह उसमें बाधा नहीं दे सका। वह राजलक्ष्मीको अपनी इच्छा या प्रयोजनके अनुसार नियंत्रणमें नहीं ला सका। किन्तु श्रीकान्त और राजलक्ष्मीकी कहानी जिस तरह चली है, उसमें श्रीकान्तका दान है। श्रीकान्तने किसी दिन जोर नहीं लगाया, तथापि वह

निःस्व होकर पकड़में नहीं आया। उसकी इस दुर्बलतामें ही उसके महत्त्वका बीज छुपा हुआ है। श्रीकान्तको जो राजलक्ष्मीने पाया था, उसका एक प्रधान कारण श्रीकान्तके चरित्रका प्रशस्त और उन्मुक्त होना था। यह चरित्रकी प्रशस्तता उसकी विचित्र अभिज्ञतामेंसे आई थी। अतएव इस विचित्र अभिज्ञताके साथ मूल आख्यायिकाका परोक्ष संयोग है। संसारके बहुविध चित्रोंको देखकर श्रीकान्तने खरे और खोटेका अन्तर समझना सीख लिया था—उसमें इतनी समझ आ गई थी कि कौन खरा है और कौन खोटा। इस विस्तृत दृष्टिने ही उसके मनमें सांसारिक लाभ-हानिके बारेमें उदासीनता ला दी थी। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको पहचानती थी, इसीसे उसने कहा था—"उस (सुनन्दा) के लड़केको यह आशीर्वाद दिये जाओ कि वह बड़ा होकर तुम्हारा ही जैसा मन पावे...इससे बड़ा आशीर्वाद तो मैं और कोई नहीं जानती।"

'श्रीकान्त' उपन्यासके प्रथम तीन पर्वोंकी आलोचना करनेसे देखा जायगा कि धीरे धीरे (स्रष्टाके अलक्षितमें) इसकी रचना-रीति बदलती गई है। इसी कारण, जो लोग इसका प्रथम पर्व पढ़कर विस्मित विमूढ़ हुए थे, वे तृतीय पर्वकी रचना चातुरीको स्वीकार करके भी उसे अपेक्षाकृत निकृष्ट मानते हैं। वास्तवमें ये दोनों पर्व विभिन्न श्रेणीकी रचनाएँ हैं। प्रथम पर्व भ्रमणवृत्तान्तके हिसाबसे रचा गया था। तृतीय पर्व उपन्यास है। प्रथम पर्वमें पियारीबाईका उपाख्यान बहुत-सी कहानियोंमेंसे एक कहानी मात्र है; किन्तु तृतीय पर्वमें भ्रमण-वृत्तान्तकी बात प्रारम्भमें उल्लिखित होने पर भी, वह विशेष भावसे श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके प्रणयका इतिहास है। प्रथम पर्वमें गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए श्रीकान्तने अस्वस्थ होकर राजलक्ष्मीको जो खबर भेजी थी, वह जैसे बिलकुल ही एक चलतू खयाल था। किन्तु तृतीय पर्वमें हम देखते हैं कि श्रीकान्त चाहे जहाँ जाय, उसे राजलक्ष्मीका उपग्रह (पिछलगुआ) बनकर जाना होगा। प्रथम पर्व और द्वितीय पर्वका पूर्वार्द्ध भ्रमण-वृत्तान्त है। यह बहुत तेजीके साथ चलता है, इसमें कितने ही लोग आते और जाते हैं, कोई स्थिर होकर बैठता नहीं है, कोई अवान्तर या अप्रधान नहीं है और कोई अत्यन्त आवश्यक भी नहीं है। तृतीय पर्वमें कहानीकी वह द्रुत गति नहीं है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके बीच मनका आदान-प्रदान बहुत धीरे-धीरे चलता है। यह मन्थरगति उपन्यासके लिए गौरवकी बात है; किन्तु भ्रमणवृत्तान्तमें

उपयोगी नहीं है। तृतीय पर्वमें भी घटनाओंकी बहुतायत है; किन्तु अवान्तर कथाओंका वह अपना माधुर्य नहीं है। वज्रानन्द, सुनन्दा, यहाँतक कि सतीश भरद्वाज और चक्रवर्तीकी घरवालीने भी श्रीकान्त-राजलक्ष्मीके प्रणयके इतिहासको समृद्धिशाली बनानेके लिए ही उपन्यासके भीतर स्थान पाया है। इनके अपने जीवनमें चाहे जो तात्पर्य क्यों न रहे, यहाँ वे एकदम गौण हैं। ये सब कहानियाँ यद्यपि श्रीकान्तकी अभिज्ञताकी विचित्रताका परिचय देती हैं, किन्तु यहाँ उनमें प्रथम पर्वमें वर्णित कहानीकी सरसता नहीं है। श्रीकान्त और राजलक्ष्मीके मनका जो विश्लेषण यहाँ दिया गया है, उसकी गहराई और सचलता नष्ट हो गई है। तृतीय पर्व प्रथम पर्वकी अपेक्षा निकृष्ट नहीं है। वह दूसरे ही प्रकारकी—भिन्न जातिकी रचना है।

१३–रचना-रीति या शैली

१

शरत्‌चन्द्रकी रचना-रीति या स्टाइलके माधुर्यकी सर्वत्र उच्च कोटिकी प्रशंसा हुई है। जो लोग शरत्‌चन्द्रके उपन्यासोंकी कहानी अथवा भावकी श्रेष्ठता नहीं स्वीकार करते, वे भी उनकी शब्द-सम्पत्ति और रचनासौष्ठवको शिरोधार्य करते हैं। शरत्‌चन्द्रने नारी-हृदयके गहरेसे गहरे अन्तस्तलमें प्रवेश करके उसकी छिपी कहानीको प्रकट करनेकी चेष्टा की है, अतएव उनकी रचनामें भावोंकी भरमार रहना स्वाभाविक है। उनकी अपेक्षाकृत कच्ची रचनाओंमें उच्छ्‌वासकी अधिकता है; किन्तु उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें जो माधुर्य है वह संयमका माधुर्य है। जान पड़ता है, हृदयके रहस्यने अपनेको प्रकट किया है; किन्तु अपनेको खाली नहीं कर डाला। शरत्‌चन्द्रकी नीति संभोग-विरोधी नीति है; उनकी भाषा संयत और शान्त है। उनकी श्रेष्ठ रचनाओंमें विस्तृत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, अद्‌भुत इंगित हैं, विश्व-प्रकृतिके साथ गहरी सहानुभूति है; किन्तु जो उच्छ्‌वास अपनी अत्यन्त अधिकतासे ही अपनेको निःस्व कर डालता है, उसका परिचय नहीं है।

'देवदास' उपन्यास शरत्‌चन्द्रकी प्रतिभाका श्रेष्ठ निदर्शन नहीं है। इसमें भाव-प्रवणताका यथेष्ट परिचय है। किन्तु इसके भीतर भी शरत्‌चन्द्रकी प्रतिभाकी विशेषता झलकती है। छठे परिच्छेदमें हम देख पाते हैं कि पार्वती रातके एक बजे देवदासके शयन-कक्षमें प्रवेश करती है। कुमारी अपने सारे संकोचको धता बताकर अपने प्रेम-पात्रसे अपने मनकी बात कहनेके लिए आई है। उसके व्यवहारमें उच्छ्‌वास, आतिशय्य और निर्लज्जताकी ही प्रत्याशा की जा सकती है।

किन्तु उसकी सबसे अधिक वेदनासे भरी भक्तिमें असीम संयम और अतलस्पर्शी गम्भीरता पाई जाती है। देवदासने उससे प्रश्न किया--" कल क्या तुम लज्जासे मर न जाओगी ? " पार्वतीने विना किसी संकोचके उत्तर दिया -" मर अवश्य जाती, अगर मैं निश्चित रूपसे यह न जानती कि मेरी सारी लज्जापर तुम परदा डाल दोगे।" दम भर बाद जब निराशाकी सम्भावना स्पष्ट हो गई तब उसने कहा—"देव दादा, नदीमें कितना पानी है ? इतने पानीमें भी क्या मेरा कलंक न दब जायगा ? " पार्वती आवेगसे अपनेको भूल गई है, अथवा आपेके बाहर बाहर हो गई है, किन्तु उस आवेगको उसने धीर, स्थिर, संयत भावसे प्रकट किया है ।

'विराज बहू' और एक अपरिणत उपन्यास है। इसमें हल्के-फुल्के उच्छ्वासोंकी हद नहीं है। किन्तु इस उपन्यासकी श्रेष्ठ घड़ियोंमें वाणीके संयमका असाधारण परिचय मिलता है। विराज कहीं लापता हो गई है, अनेक लोग तरह तरहकी बातें कहते हैं, नीलाम्बर दुःख और पश्चात्तापसे भीतर-ही-भीतर जल रहा है। उसे सबसे अधिक पीड़ा अपनी छोटी बहन पूँटीके अभियोगने पहुँचाई है। किन्तु उसका आवेग शान्त, आडम्बर-हीन भाषामें इस प्रकार प्रकट हुआ है—" ना, अब और न कह। वह तेरी गुरुजन है।—केवल नातेमें ही नहीं पूँटी, उसने तुझे माकी तरह पाला-पोसा है और माताके समान हो गई है। दूसरे जो जीमें आवे, कहें, किन्तु तेरे मुँहसे ऐसी बात निकलनेसे घोर अपराध होता है।" इसके बाद बिराज लौट आती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। बिराजकी अंतिम घड़ीमें पूँटी और मोहिनी (बिराजकी देवरानी) शोकसे विह्वल और विमूढ़ हो उठती हैं; किन्तु विकार-ग्रस्त रोगी (बिराज) मृत्युके पहलेकी घड़ी तक निर्विकार रहता है। पूँटीकी रुलाई उमड़ पड़नेपर बिराज कह उठी—" चुप कलमुँही, चिल्ला नहीं।" यह प्यार और स्नेहकी झिड़की, यह पुराना संभाषण, यह कृत्रिम क्रोध—इसीके भीतर बिराजका अतीत जीवन मैजिक लाल्टेनके चित्रोंकी तरह सामनेसे गुजर गया—वह अतीत, जिसमें दारिद्र्य नहीं था, भाइयोंमें विरोध न था, राजेन्द्र न था। ये थोड़े-से शब्द, जो बिराजके मुँहसे निकले, बहुत ही साधारण हैं, किन्तु अद्भुत इंगितसे परिपूर्ण हैं।

शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ रचनाओंमें यह संयम और भी अधिक स्पष्ट और कलाकौशल्का परिचायक हुआ है। 'दत्ता' की नायिका विजया मनकी गुप्त बात संकोचकी बाधाके कारण प्रकट नहीं कर पाती। उसका यह संकोच ग्रंथकारके स्वभाव-सिद्ध संयमका परिचय देता है। इस ग्रंथकी कल्पना बहुत गहरी या व्यापक नहीं है; किन्तु इसका आर्ट खूब ऊँचे दर्जेका है। विजयाके हृदयका आवेग अनेक बाधाओंके भीतरसे प्रकाशित हुआ है, इसीसे इसकी अभिव्यक्ति अत्यन्त मनोहर हुई है। राजलक्ष्मी श्रीकान्तको सम्पूर्ण भावसे आत्मसमर्पण नहीं कर पाती। कभी कभी उसके हृदयकी प्रवृत्ति दुर्बल हो पड़ी है, किन्तु तब भी लेखकने संयमकी सीमाका अतिक्रमण नहीं किया। वह कभी विश्व प्रकृतिके मौन साक्ष्यके प्रति संकेत करके थम गये हैं, कभी राजलक्ष्मीकी अत्यन्त गहरी प्रणयकी आकांक्षाको अति तुच्छ कार्यके द्वारा प्रकट कर गये हैं, और जब केवल बातचीतहीके द्वारा उसके उमड़ते हुए हृदयका रहस्य प्रकाशित हुआ है तब भी वह अभिव्यक्ति लघु उच्छ्वासकी फेनिलतासे बहुत ऊपर रही है। तब भी राजलक्ष्मीने हरएक बात बहुत सोच-विचारकर कही है। हमेशा यह जान पड़ा है कि बातकी आड़में बहुत कुछ बतानेको रह गया है जो बातसे कहीं बड़ा है। अग्रदानी चक्रवर्त्तीके घरसे श्रीकान्तके लौट आनेके बाद रातको उसके साथ राजलक्ष्मीकी जो बातचीत हुई थी और पूँटीके साथ ब्याहके प्रस्तावकी खबर पाकर श्रीकान्तको उसने जो पत्र लिखा था—यही राजलक्ष्मीकी प्रकाश चंचलताका प्रकृष्टतम निदर्शन है। किन्तु गंगामाटी गाँवमें राजलक्ष्मीने श्रीकान्तके आगे अपने मनकी बात जिस तरह खोलकर कही है, उससे हम देख पाते हैं कि वह केवल प्रबल अनुभूतिके आगे आत्मसमर्पण नहीं करती। श्रीकान्तके उद्देश्य-हीन कर्महीन जीवनकी दीनताके सम्बन्धमें वह पूरे तौरसे सजग है। वह अपनेको कड़ाईके साथ सूक्ष्म दृष्टिसे रत्ती-रत्ती विचार करके देखना चाहती है। अनुभूतिको वह बुद्धिके द्वारा ग्रहण करना चाहती है, और जब हृदयके उद्दाम आवेगको किसी तरह छिपा रखनेमें असमर्थ होती है, तब वह आवेग शान्त, संयत भाषामें प्रकट होता है। यथा—"तीर्थयात्रा मैंने की थी, किन्तु देवताको नहीं देख पाया। उसके बदले केवल तुम्हारा लक्ष्य-शून्य निरानन्द मुख ही दिन-रात नजर आया है। मेरे लिए तुम्हें बहुत कुछ छोड़ना

पड़ा है; किन्तु अब और नहीं...सोचा था, तुम्हारे ही लिए यह बात तुमको नहीं बताऊँगी; मगर आज मुझसे कहे विना नहीं रहा गया।" राजलक्ष्मीने श्रीकान्तको जो चिट्ठी लिखी है, उसमें अलंकारोंकी अधिकता है, किन्तु उच्छ्वासका आधिक्य नहीं है। जान पड़ता है, कल्पनाके ऐश्वर्य और भाषाके अलंकारने राजलक्ष्मीके हृदयको गौरवान्वित किया है।

शरत्चन्द्रके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें 'चरित्रहीन' चिन्तनकी दृढ़तामें और कल्पनाकी साहसिकतामें असाधारण है; किन्तु रचना-सौष्ठवमें यह अपेक्षाकृत निकृष्ट है। कारण, इसमें भाषाकी संक्षिप्तता और संयम नहीं है। सतीश, किरणमयी, अन्तकी ओर उपेन्द्र, यहाँ तक कि सावित्री भी अधिकांश समयमें सरल, सहज, संयत भावसे अपने मनकी बात प्रकट नहीं कर सकती। 'गृहदाह' का शिल्पकौशल्य निर्दोष है। सुरेश दुर्दमनीय प्रकृतिका आदमी है; किन्तु अचला और महिम शान्त और संयत हैं। अचला अनेक बार मुसीबतोंमें पड़ी है, किन्तु उसके हृदयके भावको बाहर प्रकट करनेमें कहीं सीमाका अतिक्रमण नहीं किया गया—कहींपर कलाके संयमका बन्धन ढीला या नष्ट नहीं हुआ। सुरेश और केदार बाबू जब महिमके आचरणकी गोपनीयताको लेकर बकझक कर रहे थे, उस समय अचलाने एक शब्द भी नहीं कहा; किन्तु बादको देखा गया कि महिमके देश और पारिवारिक अवस्थाके सम्बन्धमें, यहाँतक कि सुरेशके साथ उसके सम्बन्धकी सभी बातें वह कम बोलनेवाली रमणी अच्छी तरह जानती है। सुरेशको अपने जामाताके पदपर वरण करके केदार बाबू बहुत उल्लसित थे और सुरेश भी अचलाके हृदयको जीतनेकी प्राणपणसे चेष्टा कर रहा था। अचलाने सुरेशको अपनी कृतज्ञता जनाई है; किन्तु कुछ समयके बाद ही देखा गया कि सुरेश और केदार बाबूके आनन्द-उत्सवके बीच तरुणी अचला केवल महिमकी ही प्रतीक्षामें एक-एक करके दिन गिन रही है। महिमके हाथमें अँगूठी पहनाने जाकर उसने थोड़ा-सा अति नाटकीय व्यवहार किया था; किन्तु उसका यह आचरण असहाय नारीका एकमात्र सहारा था। और उसने केवल अँगूठी ही पहना दी है; बहुत बोलकर अपनेको हल्का नहीं किया। सुरेशके प्रति उसका जो अनुराग या आकर्षण था, यह भी प्रकट हुआ है अलक्षित भावसे, छोटी बात या साधारण व्यवहारमें, कण्ठस्वरकी अप्रत्याशित स्निग्धतामें, गाड़ीमें

बैठनेके ढंगमें अथवा कातर अनुनयमें या जिज्ञासामें। शरत्चन्द्रकी श्रेष्ठ कहानी 'महेश' में रचना-संयमका श्रेष्ठ परिचय मिलता है। इस कहानीकी ट्रेजेडी महेशकी मौन वेदना और गफ़ूरकी मौन सहनशीलताके बीच प्रकाशित हुई है। महेशकी मृत्युके बाद गफ़ूरने अपने मनकी बात प्रकट की है; किन्तु उसके अभिशापकी ज्वाला शब्दाडंबरसे नष्ट नहीं हो गई है।

शरत्चन्द्रकी विशिष्ट रचना-रीतिका परिचय रमणीके रूपका वर्णन करनेमें मिलता है। उनके उपन्यासोंकी अधिकांश नायिकाएँ रूपवती हैं। किन्तु शरत् बाबूने उनके रूपका लंबा-चौड़ा वर्णन नहीं किया। पहले तो उन्होंने दो-एक वाक्योंमें ही उनके रूपका सहज सरल वर्णन दिया है, बादको तरह तरहकी अवस्थाओंमें तरह तरहके लोगोंके ऊपर उसी रूपके प्रभावके प्रति इशारा करके उसे सजीव बना दिया है। अन्नदा दीदीका वर्णन उन्होंने केवल दो वाक्योंमें किया है—"जैसे राखसे ढकी हुई आग हों। जैसे युगयुगान्तरव्यापी कठोर तपस्या पूरी करके वह अभी आसनसे उठकर आई हैं।" पियारी बाईजीका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त है। "बाईजी सुश्री है; गला बहुत मीठा है और गाना जानती है।" इसके बाद धीरे धीरे उसके रूपकी विशेषता प्रकट होती गई है। शरद ऋतुके बादलोंसे फूटकर निकलनेवाली चाँदनीके समान निर्मल हास्यसे उसके कानोंके ऐरन (एअर-रिंग) तक उज्ज्वलतर हो उठते हैं। उसके श्याम घनतुल्य काले केशोंपर अस्त होने जा रहे सूर्यकी लाल आभा पड़नेसे अपूर्व शोभा फैल्ती है और उसके चमकते हुए गोरे गालोंपर बही हुई आँसुओंकी धारा सूखकर फूलकी तरह खिल उठती है।

अक्सर शरत्चन्द्र रमणीके रूपका सीधे सीधे वर्णन न करके दूसरेके ऊपर उसका प्रभाव दिखाकर रूप-माधुरीकी ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करते हैं। विजया सुन्दरी है। उसकी सुन्दरता इतनी मनोहर है कि नरेन्द्र मुग्ध होकर कह उठा—"मैं निश्चयसे कह सकता हूँ कि जो चित्र बनाना जानता है उसीका मन आपका चित्र खींचनेके लिए ललचा उठेगा।" यह खुशामदकी बात नहीं है—यह सौन्दर्यके चरणोंमें एक निष्कपट भक्तका स्वार्थ-गन्ध-हीन निष्कलुष स्तोत्र है। किरणमयीका रूप हेलेनके रूप जैसा है—वह मुग्ध भी करता है और विध्वंस करनेकी आगका इंधन भी बन जाता है। नहीं जानते,

शरत्‌चन्द्रने महाकवि होमरका अनुसरण किया है कि नहीं; किन्तु किरणके रूपका वर्णन बहुत संक्षिप्त है—बल्कि नहीं है, यही कहना ठीक होगा। जो कोई उस रूपको देखता है वही कमसे कम क्षण भरके लिए विभ्रान्त विमूढ़ हुए विना नहीं रहता। और हारान बाबू कैसे निष्ठावान् छात्र (अध्ययनशील) थे, यह हम तभी स्पष्ट समझ पाते हैं जब सोचते हैं कि इस परमसुन्दरी स्त्रीके साथ वह गुरु और शिष्याके सम्बन्धको छोड़कर और किसी तरहके सम्बन्धकी कल्पना नहीं कर सके। अचला असाधारण सुन्दरी नहीं है; किन्तु तीसरे पहर जब सूर्यकी लाल-लाल किरणें पश्चिमकी खिड़कीसे होकर घर भरमें बिखर पड़ीं, तब इस तरुणीका कुछ छरहरा कृश शरीर उस प्रकाशसे उद्भासित हो उठा और उससे सुरेश मुग्ध हो गया।

शरत्‌चन्द्रके अनेक उपन्यासोंमें एक नीतिका सहारा लिया गया है। साधारणतः नायक-नायिकाका (विशेषरूपसे नायिकाका) पहलेका एक इतिहास रहता है, जिसके साथ उपन्यासमें वर्णित कहानीका सम्पर्क रहता है। उस पहलेकी कहानीका विस्तृत वर्णन देकर पाठकके धैर्यकी परीक्षा नहीं ली जाती। पियारी बाईजीके भीतर राजलक्ष्मी किस तरह छिपे-छिपे अपनेको बचाये हुए थी; ठीक किस अवस्थामें जीवानन्दकी 'वाहन' अलकाका ब्याह हुआ था और किस तरह भैरवीके भीतर छली गई अलका सोई हुई थी; मेसमें दासीका काम करनेके पहले सावित्रीने क्या किया था; इन सब बातोंका विस्तृत विवरण देकर शरत्‌चन्द्रने अपने उपन्यासोंको भाराक्रान्त नहीं किया। उपन्यासमें पाठकका कौतूहल जगा है और उस कौतूहलको उन्होंने आभाससे, इंगितसे, दो-एक संक्षिप्त संवादोंकी सहायतासे परितृप्त किया है; किन्तु सम्पूर्ण रूपसे निवृत्त नहीं किया, नायिकाके जीवनका पूर्व-इतिहास रहस्यमय ही रह गया है। हम उसकी गुप्त महिमाका अनुभव कर सकते हैं; किन्तु स्पष्ट करके नहीं देख पाते। 'श्रीकान्त' के चतुर्थ पर्वमें शरत्‌चन्द्रके शिल्पका यह संक्षिप्तपना और संयम नष्ट हो गया है। वहाँ हम देखते हैं, कमललतासे होड़ करके राजलक्ष्मी अपने विगत ज़ीवनका वृत्तान्त ब्योरेके साथ कहती है और यह भी देख पाते हैं कि राजलक्ष्मी केवल सुन्दर सुकण्ठ बाईजी ही नहीं है, वह एक पक्की व्यापारी औरत

भी है। श्रीकान्तको इस कहानीके सुननेका आग्रह नहीं था और हम लोगोंके मनमें भी वह केवल कौतुक ही उत्पन्न करता है।

शरत्चन्द्रकी रचना-रीतिका एक प्रधान गुण यथार्थ-प्रियता है। शरत्चन्द्रकी अनुभूतिके साथ रोमांटिक कविकी अनुभूतिका सादृश्य है; किन्तु उसका विस्तृत वर्णन, तिल-तिल करके विश्लेषण और अणु-परमाणु तक पर्यवेक्षण करनेकी शक्तिने उन्हें रियलिस्ट या वस्तु-तांत्रिक साहित्यिक पदका अधिकारी बना दिया है। उनकी भाषामें इस विशेषताकी छाप मौजूद है। बँगलाका प्रथम उल्लेख-योग्य उपन्यास 'आलालेर घरेर दुलाल' बोलचालकी चलती भाषामें लिखा गया था। किन्तु यह उपन्यास व्यंग्यचित्रोंसे भरा हुआ है। इसके लिए साधु भाषा उपयोगी न होती। बंकिमचन्द्रकी भाषा सहज, सरल, स्वच्छन्द है। उसमें अनावश्यक गाम्भीर्य नहीं है। किन्तु वह भी संस्कृत-शब्द-बहुल बँगला है। वह दैनंदिन जीवन-यात्राके चित्रके लिए उपयोगी नहीं है। इस भाषामें भ्रमर, सूर्यमुखी आदि आदर्श-लोक-वासिनी नारियोंका चरित्र अभिव्यक्त हो सकता है; किन्तु साधारण जीवनकी कोई कहानी अगर इस भाषामें लिखी जाय तो उस कहानीका साधारणपन नष्ट हो जायगा। रवीन्द्रनाथने बोलचालकी ठेठ भाषाका समर्थन किया है; किन्तु उनका गद्य एक कविका गद्य है। अतएव उनकी भाषा उपन्यासमें तभी सुन्दर हुई है, जब वर्णनपर कल्पनाका रंग चढ़ा है अथवा कथोपकथन तीक्ष्ण बुद्धिके प्रकाशसे उज्ज्वल हो उठा है। शरत्चन्द्रके गद्यमें प्रचलित भाषाने सबसे पहले अपना न्यायोचित आसन पाया है, अथ च उसने अपने निर्दिष्ट क्षेत्रके बाहर पैर नहीं रखा। उनकी भाषा रोजमर्राकी बोलचालकी भाषा है। उनके चित्र वर्ण-बहुलताके कारण कहीं भी अपने सहज माधुर्यको नहीं गँवा बैठे। भाषा भाव-प्रकाशका वाहन अवश्य है; किन्तु अनेक समय वह मुख्य बनकर भावके प्रकट होनेमें बाधा डालने लगती है। शरत्चन्द्रने कहीं भी अलंकारोंकी बहुलताके कारण अपने वर्णनको भाराकान्त नहीं किया। जान पड़ता है कि जो घटना जिस तरह घटित हुई है, वह ठीक उसी तरह शरत्चन्द्रके उपन्यासमें रूपान्तरित हुई है, भाषाका ऐश्वर्य उसमें कोई विघ्न नहीं डाल सका। इसका प्रधान कारण यह है कि शरत्चन्द्रकी भाषा स्वच्छ, आडम्बरहीन, दैनन्दिन

जीवनके रससे परिपूर्ण है। इसमें प्रचलित भाषाकी स्वच्छन्दता और स्वच्छता रहने पर भी उस (बोलचालकी भाषा) का हल्कापन और तुच्छता नहीं है। शरत्चन्द्रने अनुभव किया है कि हरएक मनुष्यके जीवनमें ऐसी कुछ घड़ियाँ आती हैं जो अनन्यसाधारण ऐश्वर्यसे मण्डित होती हैं और शरत्चन्द्रने उनके वर्णनमें संस्कृत-बहुल और अलंकारमण्डित भाषाका व्यवहार करके अपनी गहरी यथार्थ-प्रियता ही प्रमाणित की है। वास्तवमें शरत्चन्द्रके स्टाइलका प्रधान गुण यही है कि उसमें तथाकथित साधु-भाषा और प्रचलित भाषाका समन्वय हुआ है। प्रचलित भाषाकी स्वच्छता और प्रवाह तथा साधु भाषाकी समृद्धिमें उन्होंने सामंजस्य स्थापित किया है।

पहलेके पैराग्राफमें शरत्चन्द्रकी रचनाकी यथार्थतापर ध्यान दिलाया गया है। इस यथार्थताका प्रधान उपकरण अतिसूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति है। दो-एक दृष्टान्त देनेसे ही शरत्चन्द्रका कला-कौशल समझमें आ जायगा। डाक्टर श्रीकुमार बनर्जीने कहा है—" हमारे साहित्यमें नौका-यात्राके वर्णनका अभाव नहीं है। बंकिमचन्द्रके उपन्यासों और रवीन्द्रनाथकी छोटी कहानियोंमें इस विषयके अनेक कवित्वपूर्ण, सूक्ष्म अनुभूतिसे परिपूर्ण विवरण हैं। किन्तु शरत्चन्द्रका इस विषयका वर्णन बिल्कुल दूसरे ही प्रकारका है। उसमें कवित्वका अभाव नहीं है; किन्तु कवित्व प्रधान नहीं है। उसमें जो अकुण्ठित यथार्थता है, जो प्रत्यक्ष अभिज्ञताका सुर पाया जाता है, वह कवित्वको नाँघकर बहुत ऊँचा उठ गया है।" शरत्चन्द्रका वर्णन जो इतना प्रत्यक्ष और इतना यथार्थ हुआ है, उसका कारण यह है कि उन्होंने तिल-तिल करके इस नौका-अभियानका चित्र खींचा है—प्रथम नाव छोड़नेसे लेकर प्रातःकाल घर लौटने तक नैसर्गिक और काल्पनिक जितने प्रकारकी अभिज्ञता हुई है, उसमेंसे कुछ भी नहीं छूटा। फलस्वरूप पाठकको सम्पूर्ण चित्र बिल्कुल आँखोंके आगे दिखाई देने लगता है। छिदाम या छिनाथ बहुरूपियेकी कहानी, मँझले दादाका अत्याचार, नये दादाका पाप और उसका प्रायश्चित्त, बर्माकी यात्रा — इन सबका वर्णन शरत्-बाबूकी प्रतिभाका श्रेष्ठ निदर्शन है। शरत्चन्द्रकी सूक्ष्म और तीक्ष्ण पर्यवेक्षण शक्तिने इसमेंसे हर एकको सजीव और वास्तव बना दिया है।

शरत्चन्द्रकी वास्तव-प्रियता 'अक्षरणीया' में चरम कोटिको पहुँच गई है।

वहाँ यह सम्पूर्ण रूपसे अलंकार-वर्जित होकर तीव्र और कठोर हो गई है। ज्ञानदा कम बोल्ती है। उसकी अनुभूतिके प्रकाशमें शरत्चन्द्रने स्वभावसिद्ध संयमका परिचय दिया है। किन्तु उसके प्रतिवेशका वर्णन विस्तृत और पुंखानुपुंख हुआ है। दारिद्र्यने उसको पीड़ित किया है, मलेरियाने उसके स्वास्थ्यको चौपट कर दिया है, स्वर्णमंजरीने उसका तिरस्कार किया है, उसके प्रेमपात्र अतुलने उसे लांछित किया है और माताका स्नेह भी भय, शोक और कुसंस्कारसे विषाक्त हो गया है। "किन्तु ज्ञानदाका सबकी अपेक्षा असह्य अपमान खुद उसके अपने हाथसे ही उपस्थित हुआ है - विवाहके बाजारमें अपनेको बेचनेके लिए अपने हाथसे की गई व्यर्थ सजावट ही उसकी यह चरम लांछना थी।" इस चरम लांछनाके वर्णनमें शरत्चन्द्रने कोई छोटीसे छोटी बात भी नहीं छोड़ी; कहीं इसे हल्का नहीं होने दिया। किस तरह यह अवांछित सम्बन्ध मा और बेटीके लिए आकाक्षाकी वस्तु बना, कौन-कौन लड़कीको देखने आये, ज्ञानदाने क्या-क्या अद्भुत साज-सज्जा की, गोदके लड़केने क्या कहा, आसपासकी औरतें किस तरह उपहास करने लगीं, स्वर्णमंजरीने क्या कठोर बात कही, परोसियोंने क्या पूछा, अतुलने क्या सोचा — इन सब बातोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। और इस गुलगपाड़ेमें जो आदमी चुप था—वह स्वयं ज्ञानदा थी!

अनेक समय दो-एक तुच्छ विषयोंके ऊपर रोशनी डालकर शरत्चन्द्रने चित्रको परिपूर्ण रूपसे वास्तविक बना दिया है। जो बंगाली युवक बर्माकी एक स्त्रीको छलकर उसके रुपये और अँगूठी लेकर भाग खड़ा हुआ वह बड़ा ही निष्ठुर और विश्वासघातक था, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उसका बड़ा भाई और भी अधिक नीचाशय और हृदयहीन है। इस मनुष्यके चरित्रकी संकीर्णता केवल कुछ शब्दोंमें ही प्रस्फुटित हो उठी है। उसने श्रीकान्तसे गंभीर भावसे कहा—"...मर्द बच्चा ठहरा, परदेसमें पराई जगह आकर अवस्थाके दोषसे न हो एक शौक कर ही डाला...तो क्या इसीसे हमेशा इसी तरह मारे-मारे फिरना होगा? अच्छा बनकर घर बसाकर चार आदमियोंमें एक आदमी न बनेगा? महाशय यह कौन बड़ी बात है? कच्ची उमरमें कितने ही आदमी होटलोंमें जाकर मुर्गी तक खा आते हैं..." इस तुलनाके भीतरसे इस आदमीकी

नीचता और विकृत मनोवृत्तिका जो परिचय प्रकट हुआ है, वह एक लम्बा लेख लिखने पर भी इतना सहज और तीव्र न होता।

शरत्चन्द्रके शब्दोंके चुनावमें, उपमाओं और रूपकोंकी उद्भावनामें भी इस यथार्थताकी छाप मौजूद है। उन्होंने नर-नारीके सम्पर्कके गोपन रहस्यको प्रकट करनेकी चेष्टा की है। इसके लिए उन्होंने स्पष्ट, इन्द्रिय-ग्राह्य चित्र खींचनेकी चेष्टा की है। कारण, इसके द्वारा अप्रकाश्य रहस्य बहुत सहजमें प्रत्यक्ष हो सकता है। नरेन्द्रनाथके लिए विजयाकी आकांक्षा प्यासकी तरह जागती रहती है। विगत यौवनकी तरह नन्द मिस्त्री भी एक दिन टगरके पाससे खिसक जा सकता है। अभयाका पति जब श्रीकान्तके पास उपस्थित हुआ, तब उसके मनमें आया, जैसे बर्माके किसी घने जंगलसे एक जंगली भैंसा अकस्मात् बाहर निकल आया है। प्रत्येक वर्णन संक्षिप्त है; किन्तु बहुत ही यथार्थ है। कारण, वह अतिशय प्रत्यक्ष है। बर्मासे लौटकर श्रीकान्त राजलक्ष्मीमें एक उदासीनताका भाव देखकर पीड़ित हुआ; किन्तु डेरेपर जाकर उसके घरकी सजावट देखकर ही उसने राजलक्ष्मीके बहुत गहरे प्रेमका परिचय पाया। उसको जान पड़ा, जैसे "भाटेकी नदीमें फिरसे ज्वारके जलके उमड़नेका शब्द मोहानेके पास सुनाई दे रहा है।" इस तरहके अनेक दृष्टान्त यत्र-तत्र भरे पड़े हैं। रूपक और उपमा अलंकारोंकी सहायतासे निगूढ़ रहस्यको स्पष्ट करनेकी शक्ति 'गृहदाह' उपन्यासमें हद तक पहुँच गई है। उसके प्रत्येक चित्रमें संक्षिप्तता और सुस्पष्टताकी पराकाष्ठा देख पड़ती है। खासकर सुरेशकी मृत्युके बाद अचलाका जो वर्णन किया गया है, उसका ध्यान आ जाता है। भय नहीं है, भावना नहीं है, कामना नहीं है, कल्पना नहीं है—जहाँ तक देखा जाता है, भविष्यका आकाश केवल शून्यतासे भरा पड़ा है। उसमें कोई रंग नहीं है, मूर्ति नहीं है, गति नहीं है, प्रकृति नहीं है, एकदम निर्विकार, एकदम बिलकुल शून्य है।

शरत्चन्द्रकी रचनाकी यथार्थता सर्वजनविदित है; किन्तु यथार्थ-प्रियताके साथ जो कवि-प्रतिभा जड़ी हुई है, उसपर सबकी दृष्टि नहीं पड़ती। श्रीकान्तने कहा है कि उसे भगवान्‌ने कल्पना और कवित्वका लेश भी नहीं दिया। किन्तु यह बात सच नहीं है- श्रीकान्तके सम्बन्धमें भी नहीं, और उसकी सृष्टि करने-

वालेके सम्बन्धमें भी नहीं। विश्व-प्रकृतिकी महिमाके ऊपर शरत्चन्द्रकी दृष्टि हमेशा लगी रही है। इस दृष्टिमें रवीन्द्रनाथकी दृष्टिकी तरह विराट् विस्तार नहीं है; किन्तु असाधारण तीक्ष्णता है। उन्होंने विश्व-प्रकृतिके भीतर मानव-हृदयकी बहुत गहरी वेदनाका प्रतिबिम्ब देख पाया है और उसीने विश्व-प्रकृतिको सजीव कर दिया है। अन्धकारसे ढकी हुई रातने पियारी बाईजीका हृदय-विदारक रुदन देखकर शायद परितृप्ति प्राप्त की थी; किन्तु चरम निराशाके बोझसे दबे हुए हृदयको लेकर विजया जब दयालके घरसे बाहर निकली, तब वह बाह्य प्रकृतिमें अपने हृदयका प्रतिरूप ही देखने लगी। "उसे जान पड़ने लगा कि उसके पैरोंके नीचेकी दूबसे लेकर पास या दूर जो कुछ देखा जाता है — आकाश, मैदान, दूसरे गाँवके अन्तकी वनरेखा, नदी, जल, सभी कुछ जैसे चुपचाप चाँदनीमें खड़े-होकर अवसन्नसे हो रहे हैं। किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है, परिचय नहीं है। कोई जैसे उनको सोते समय स्वतन्त्र जगत्से उखाड़ लाकर इधर-उधर डाल गया है—अब तन्द्रा उचटनेपर वे परस्पर एक दूसरेके अजाने मुखकी ओर अवाक् होकर ताक रहे हैं।" फिर विजयाके सुखके दिनमें विवाह-मण्डपमें उसके लज्जित मुखके ऊपर दक्षिण पवन और आकाशकी चाँदनी एक ही साथ उसके स्वर्गगत माता-पिताके आशीर्वादकी तरह आ पड़ी। अचलाके जीवनकी ट्रेजेडीके साथ अन्धकार रात्रिके उन्मत्त दुर्योगका निकट-सम्बन्ध है। गफूर जब अपनी प्रार्थना और अभिशाप जनाकर जन्मभूमिसे बिदा हुआ तब जान पड़ता है, इस उत्पीड़ित किसानके प्रति सहानुभूति जतानेके लिए ही आकाश नक्षत्रखचित होकर भी अन्धकारसे ढका हुआ था।

विश्व-प्रकृतिके साथ मानव-हृदयका गहरासे गहरा ऐक्य हम 'श्रीकान्त' के तृतीय पर्वमें देख पाते हैं। राजलक्ष्मीके अवहेलना करनेपर श्रीकान्तके उद्देश्यहीन, कर्महीन दिन जैसे कटना ही नहीं चाहते थे। "अदूरवर्ती कई छोटे-छोटे बबूलके पेड़ोंपर बैठे घुग्घू बोल रहे थे और उस आवाजके साथ मिलकर मैदानकी तपी हुई हवामें कहीं पास ही डोमोंका बाँसका झाड़ ऐसा एक ही तरहका शब्द, जो व्यथाभरे दीर्घ श्वासके समान जान पड़ता था, हुआ करता था, जिससे बीच बीचमें यह धोखा होता था कि वह शब्द शायद मेरे अपने हृदयके भीतरसे ही निकल रहा है।" गंगामाटी ग्रामके

कारावासमें बाहरकी हवा ही एक मात्र बन्धु थी। कारण, वह दूरकी खबर लेकर आई है और छुटकारेका आनन्द देती है। "जान पड़ता है, जैसे मैं कितने ही लोगोंके अंगका स्पर्श और कितने ही अपरिचित लोगोंकी गरम साँसका भाग पाता हूँ। हो सकता है, मेरा वह बचपनका मित्र इन्द्रनाथ आज भी जीवित हो और यह गर्म हवा शायद अभी अभी उसके शरीरको छूकर आई है।...कभी जान पड़ता है कि इसी कोनेकी दिशामें तो बर्मा देश है। हवाके लिए तो कोई बाधा नहीं है। कौन कहेगा कि यह हवा समुद्र पार करके अभयाके शरीरका स्पर्श मेरे पास नहीं ले आ रही है।"

मानव हृदयके साथ सम्पर्क जिसका न हो ऐसा कोरा प्रकृतिवर्णन शरत् बाबूके साहित्यमें नहीं है। जो दो-एक जगह ऐसा वर्णन है, वहाँ भी शरत्चन्द्रकी रचनाके ढंगकी विशेषता देख पड़ती है। रात्रिके रूपका जो वर्णन उन्होंने दिया है, वह असाधारण है। अजाना अन्धकार उनको दूरसे दूर नहीं ले गया। उन्होंने उसके दुरधिगम्य रहस्यको स्पष्ट, मूर्तिमान और निकट करना चाहा है। अथाह सागर, गहन वन और श्रीराधाके दोनों नेत्रोंमें भरकर जिस रूपने प्रेमकी बहिया बहा दी—इन सबके साथ तुलना की जानेसे रूपहीन मृत्यु भी अद्भुत रूपसे सजाई गई है, और कविने उसकी बढ़ रही पद-ध्वनिकी, उसकी सब दुःख और व्यथाको हरनेवाली अनन्त सुन्दर मूर्तिकी वन्दना की है। जो रहस्यमय है, दुर्ज्ञेय है, दूरस्थित है, वह भी निकट आकर सहज और प्रत्यक्ष हो गया है। यही शरत्चन्द्रके प्रकृति-वर्णनकी विशेषता है। इसमें विस्तारका अभाव रह सकता है, किन्तु इसकी तीव्रता और स्पष्टताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'श्रीकान्त'के द्वितीय पर्वमें और 'चरित्रहीन'में क्षुब्ध समुद्रका जो वर्णन है उसमें ऊपर लिखी वर्णनकी महिमा नहीं है, किन्तु ये दोनों ही वर्णन शरत्चन्द्रकी कवि-प्रतिभाकी गवाही देते हैं। शरत्चन्द्रने समुद्री लहरोंके चमकीले काले रूपको स्पष्ट प्रत्यक्ष किया है। समुद्रकी सीमाहीनताके बारेमें वे अचेतन नहीं हैं किन्तु समुद्रकी बड़ी बड़ी लहरोंकी सुन्दर विराट् मूर्तिने उन्हें अधिक मुग्ध किया है—"जहाजके ऊपर उद्दाम प्रचण्ड लहरें शुभ्र श्वेत फेनका किरीट मस्तक पर पहने उन्मत्तकी तरह फाँद पड़ती हैं, टकराती हैं, चूर-चूर

होकर न जानें कहाँ लय हो जाती हैं—बार-बार उठकर दौड़ी आकर फिर गायब हो ज ती हैं।" (चरित्रहीन)

"एक चीजकी बहुत बड़ी ऊँचाई और उससे अधिक विस्तार देखकर ही कुछ यह भाव मनमें नहीं आता; क्योंकि ऐसा होता तो इसके लिए हिमालयका कोई भी अंग-प्रत्यंग यथेष्ट होता। किन्तु यह जो विराट् व्यापार जीता-जागता-सा दौड़ा आ रहा है, उसकी अपरिमेय शक्तिकी अनुभूतिने ही मुझे अभिभूत कर दिया था।"

"किन्तु समुद्र जलमें धक्का देनेपर जो ज्वाला बार बार चमक उठती है वह अनेक प्रकारसे विचित्र रेखाओंमें इसके सिरके ऊपर अगर खेलती न रहती तो इस गहरी काली जल-राशिकी असीमताको इस अंधकारमें मैं शायद इस तरह देख न पाता। इस समय जितनी दूर तक दृष्टि जाती है उतनी दूर तक इस प्रकाश-माला (नक्षत्रपुंज) ने जैसे छोटे-छोटे दीपक जलाकर इस भयंकर सौन्दर्यका मुख जैसे मेरी आँखोंके सामने खोल दिया।" (श्रीकान्त—द्वितीय पर्व)

शरत्चन्द्रकी रचनामें कविकल्पनाका जो परिचय पाया जाता है, उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। उनका गद्य केवल कल्पनासे भरा-पूरा ही नहीं है, उसकी गति भी छन्दोबद्ध वाक्यकी गतिके समान सुमधुर है। पहली बात तो यह है कि एक वाक्यके विभिन्न अंशोंमें ऐसा एक सुन्दर सामंजस्य है—तालमेल है कि पाठक श्रुति-माधुर्य अर्थात् कानोंको भला मालूम होनेके गुणसे विमोहित हुए विना नहीं रह सकता। इस सामंजस्यकी रीतिका एक सरल उदाहरण हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"किन्तु यह न रहना कैसा न रहना है, यह जाना कैसा जाना है, इसे सतीशसे अधिक कौन जानता है! सरोजिनीसे अधिक किसने देखा है! सावित्रीसे अधिक किसने सुना है!"

इस तरहका सामंजस्य शरत् बाबूकी रचनाओंमें खूब दुर्लभ नहीं है और यह कोशिश करके लाया गया जान पड़ता है – अनायास आया हुआ नहीं। किन्तु अपनी श्रेष्ठ रचनाओंमें वह जो विभिन्न अंशोंमें सामंजस्य लाये हैं, वह अतिशय कलाकौशलसे पूर्ण होनेपर भी ऐसा सावलील सहज है कि जान पड़ता है भाषा आप

ही आप छन्दोवद्ध होकर नाचने लगी है। नीचे दिया गया अनुच्छेद शरत्‌चन्द्रके रचना-सौष्ठवका एक श्रेष्ठ नमूना है—

"बाहरकी उन्मत्त रात्रि वैसे ही बिफरती हुई दुन्द मचाने लगी, आकाशमें बिजली वैसे ही बार-बार अन्धकारको चीरकर टुकड़े टुकड़े कर डालने लगी, उच्छृंखल आँधी-पानी वैसे ही सारी प्रकृतिको अस्तव्यस्त कर देने लगा; किन्तु इन दोनों अभिशप्त नर-नारियोंके अंधकारमय हृदयतलमें जो प्रलय गरजता फिरने लगा, उसके आगे यह सब एकदम तुच्छ अकिंचित्कर होकर बाहर ही पड़ा रहा।"

इस वर्णनमें प्रकृतिके साथ मनुष्यके हृदयकी जो तुलना है, वह कवि-प्रतिभाका परिचय देती है। इसकी शब्द-सम्पत्ति अतुलनीय है, किन्तु उससे भी अधिक अनुपम है विभिन्न अंशोंका सामञ्जस्य। प्रत्येक वाक्यांशके शब्द भी छन्दोवद्ध वाक्यकी तरह रखे गये हैं। किसी भी अंशका विश्लेषण करनेसे यह माधुर्य अच्छी तरह अनुभव किया जा सकेगा।

आकाशकी बिजली वैसे ही बार-बार अन्धकारको चीरकर। टुकड़े-टुकड़े कर डालने लगी।

इन दोनों। अभिशप्त नर-नारियोंके। अन्धकारमय हृदयतलमें। जो प्रबल। गरजता फिरने लगा।

शरत्‌चन्द्रके गद्य-छन्दकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आलोचना करनेसे देखा जायगा कि इसका एक और प्रधान उपकरण विशेषणोंका सुष्ठु प्रयोग है। विशेषण विशेष्यके साथ मिलकर पद्यके चरणकी तरह सु-विभक्त हो पड़ते हैं। यथा—

"विह्वल यौवनके। लालसामत्त वसन्त-दिनमें।"

"निन्दित जीवनकी। संचित कालिमा।"

"यह अदृष्टपूर्व अद्‌भुत नारी-रूप ही। आज। षोड़शीके तेलहीन बिखरे केशोंमें। उसके निपीड़ित यौवनके रूखेपनमें। उसकी उत्सादित प्रवृत्तिकी शुष्कतामें, शून्यतामें।"

"इस भ्रष्ट जीवनकी। विशृंखल घटनाओंकी। शतधा छिन्न ग्रंथियाँ।"

"उस अन्धकारप्राय नदी-तटके। समस्त नीरव माधुर्यकी। वह। सम्पूर्ण उपेक्षा करके। स्वप्नाविष्टकी तरह। सिर्फ यही बात।..."

२

शरत्चन्द्रकी स्टाइल अथवा रचना-रीतिकी माधुरीको उच्च प्रशंसा प्राप्त होने पर भी, उनकी रचनामें बहुत-से दोष भी हैं। 'किन्तु' की भरमार है, 'अन्तर्यामी' शब्द जहाँ देखो तहाँ बार-बार आया है। 'ऐसा होता है,' 'ऐसा ही है' आदिकी पुनरुक्ति भी कम नहीं है। इन बातोंकी ओर सभी लोगोंकी दृष्टि आकृष्ट होगी। अवश्य ही इस तरहके किसी शब्द या पदकी भरमार लेखकका मुद्रादोष (वाग्भंगी?) है। अतएव इस दोषको रचनाकी मौलिक त्रुटि मान लेना ठीक न होगा; क्योंकि यह गौण लक्षणको प्रधानता देना होगा। कोई कोई समझते हैं कि शरत्बाबू संस्कृत-रचना-रीतिसे परिचित नहीं थे, अतएव उनकी रचनामें व्याकरण के और दूसरे दोषोंका भी अभाव नहीं है।

किन्तु बँगला-साहित्यके ऊपर संस्कृत-व्याकरणके नियमोंका प्रयोग करने जानेके पहले कमसे कम एक बात हमें याद रखनी चाहिए। प्रत्येक साहित्य अपनी ही गतिसे चलता है और श्रेष्ठ लेखकका प्रयोग ही इस गतिका नियामक होता है। योरपका प्रत्येक साहित्य ग्रीक और लैटिन भाषाका ऋणी है; किन्तु योरपके साहित्यिकोंने इस ऋणका प्रयोग या उपयोग अपनी भाषा और साहित्यकी रीतिके अनुसार किया है। रुचि-वागीश लोगोंने इन सब अपप्रयोगोंपर आपत्ति उठाई है; किन्तु साहित्यने उनकी इस आपत्तिको नहीं माना। बँगला-साहित्यके सम्बन्धमें भी यह बात लागू होती है। 'सृजन' और 'इतिपूर्वे' (संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'सर्जन' और 'इतःपूर्वे') आदि प्रयोग अब ठीक और शुद्ध प्रयोग ही मान लिए गये हैं। शरत्चन्द्रने 'संवाद' को 'सम्वाद,' 'बारंबार' को 'वारम्वार' लिखा है। उनका 'किंवा' 'किम्वा' हो गया है। उनका 'संवरण' 'सम्वरण' बन गया है। इस प्रकार उन्होंने संस्कृतके पंचम वर्णके नियमका उल्लंघन किया है। ये सब अपप्रयोग कानोंको उतना न खटकने पर भी पढ़नेमें आँखोंको बुरे लगते हैं। कौन जाने, भविष्यमें ये सब अपप्रयोग ग्राह्य होंगे कि नहीं। इनका समर्थन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। सिर्फ एक बात याद रखनी होगी।

वह यह कि इस प्रकारके प्रयोग नियमविरुद्ध होने पर भी मारात्मक नहीं हैं, और रवीन्द्रनाथ तथा शरत्चन्द्र जैसे लेखकोंकी रचना-रीतिकी आलोचना करनेमें मौलिक गुण और दोषोंपर ही ध्यान देना होगा। कोई एक पद संस्कृत व्याकरणके अनुकूल है कि नहीं, इसकी आलोचना मुख्य नहीं है। प्रचलित रीतिका लंघन करनेका अधिकार उन्हीं सब लेखकोंको है, जो नई सृष्टिके द्वारा साहित्यकी सम्पत्तिको बढ़ा देते हैं, जो नियमका व्यतिक्रम करके ही भाषाको समृद्ध करते हैं। ये सब बड़े लेखकोंके व्यतिक्रम ही अन्य लोगोंके लिए रीति गिने जाते हैं। अवश्य ही इन सब प्रतिभाशाली लेखकोंके सभी प्रयोग स्वीकार करने योग्य नहीं हैं और इनकी रचना त्रुटि-शून्य है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

शरत्चन्द्रकी रचनाका प्रधान गुण उसकी सुस्पष्टता और यथार्थप्रियता है। उन्होंने कभी कभी किसी भावको प्रत्यक्ष कराते समय उसे आवश्यकतासे अधिक प्रधानता दे दी है अथवा किसी चित्रको वास्तविक बनानेमें उसे अजीब-सा बना डाला है। दृष्टान्तस्वरूप निम्नलिखित वाक्योंका उल्लेख किया जा सकता है—

" मेरा सारा मन उन्मत्त ऊर्ध्वश्वाससे उसकी ओर दौड़ा है।"

ऊर्ध्वश्वासकी उन्मत्तता एक कष्ट कल्पना ही है। 'श्रीकान्त' के प्रथम पर्वमें राजलक्ष्मीके मातृ-हृदयका जो वर्णन है, उसका ओज और माधुर्य असाधारण है। किन्तु उस जगह भी अनावश्यक 'किन्तु', 'ही', 'और', 'तो' आदिकी अधिकता है।

" वह आप चाहे जो हो, किन्तु उसे अपनेतईं माताका सम्मान तो अब उसे देना ही होगा! उसकी असंयत कामना, उच्छृंखल प्रवृत्ति उसे चाहे जितना नीचेकी ओर ठेलना चाहे, किन्तु यह बात भी तो वह भूल नहीं सकती कि वह एक लड़केकी मा है! और उस सन्तानकी भक्तिसे झुकी हुई दृष्टिके सामने उसकी माको तो वह किसी तरह अपमानित नहीं कर सकती!"

प्रत्येक वाक्य आश्चर्यका चिह्न देकर समाप्त किया गया है। 'किन्तु' का दो बार प्रयोग हुआ है, यद्यपि इसकी जरूरत नहीं थी। 'तो' 'ही' 'और' का बाहुल्य पीड़ादायक है।

अन्यत्र देख पाते हैं—

"उसका वशमें न रहनेवाला हृदय और जागी हुई धर्म-वृत्ति ये दो प्रतिकूल-गामी प्रचण्ड प्रवाह किस तरह किस संगममें सम्मिलित होकर उसके इस दुःखके जीवनमें तीर्थकी तरह सुपवित्र हो उठेंगे...।" (श्रीकान्त—तृतीय पर्व)

यह वाक्य भाव और भाषामें अत्यन्त मधुर है, किन्तु प्रथम 'उसका' अनावश्यक है और द्वितीय 'उसके' कर्णकटु है।

इस तरहके अनावश्यक शब्दोंके प्रयोगसे और भी दो-एक वाक्योंका माधुर्य नष्ट हो गया है—मजा किरकिरा हो गया है।

"यह सौन्दर्यके चरणोंमें निष्कपट भक्तका स्वार्थलेशहीन निष्कलुष स्तोत्र अनजानमें ही उच्छ्वासित हुआ है .." (दत्ता)

स्तोत्र उच्छ्वसित हुआ है, यह कोई मुहावरा नहीं है। 'यह' केवल अनावश्यक नहीं है, इसका अन्वय करना भी असम्भव है।

शरत्चन्द्रकी रचनामें उपमाका असाधारण ऐश्वर्य है। अनेक वर्णनोंमें एकसे अधिक उपमाएँ एकके बाद एक रखी गई हैं; किसीने किसीकी जगह नहीं घेरी है। किन्तु किसी-किसी जगह दो विच्छिन्न उपमाएँ एक ही वाक्यमें मिल गई हैं। इससे रचनाके प्रसाद गुणको हानि पहुँची है। दो-एक वाक्योंमें मिश्र उपमा भी हैं। यथा—

"इस चोरीके प्रच्छन्न इंगितने तीव्र तड़ित-रेखाकी तरह उसके संशयके जालको इस सिरेसे उस सिरे तक फाड़कर हृदयके अन्तस्तल तक उद्भासित कर दिया।" (अन्धकारमें आलोक)

इस वर्णनमें एक चित्र खिल उठा है—बिजलीकी रेखाकी क्षिप्र गति और तीव्र प्रकाश, जिसकी सहायतासे क्षण भरके लिए धरती जगमगा उठती है। 'जाल' शब्द अनावश्यक है। वह कोई नया चित्र सामने नहीं उपस्थित कर सकता। इसे ठीक मिश्र उपमा नहीं कहा जा सकता। किन्तु नीचेका वाक्य इस दोषसे दूषित है।—

"केवल देखता हूँ, एक विषयमें तन्द्रातुर मन कलरवसे तरंगित हो उठता है ..स्मृतिके आलोड़नसे।" (श्रीकान्त—चतुर्थ पर्व)

इन सब अपप्रयोगोंकी जड़ है रचनाको ओजस्वी और सुस्पष्ट बनानेकी चेष्टा। इस प्रकारकी चेष्टा ही अभिभाषणके रूपमें बदल गई है। अनावश्यक शब्द, विभिन्न शब्दोंके माध्यमसे एक ही भावकी पुनरुक्ति, विशेषणोंकी बहुलता—इन सब दोषोंने कुछ वर्णनोंके माधुर्यको नष्ट कर डाला है। पहले कहा जा चुका है कि शरत्चन्द्रके रचना-सौष्ठवका एक प्रधान उपकरण है विशेषणोंका सुललित प्रयोग। और विशेषणोंकी अधिकताने ही अनेक वाक्योंकी स्वच्छन्द सावलील गतिको रोक दिया है। अन्तिम वयसकी रचनाओंमें यह दोष अधिक दिखाई पड़ता है।

..."याद पड़ता है, इस जीवनमें जितनी रातें आई-गई हैं, उनके साथ आजकी इस अनागत रात्रिकी अपरिज्ञात मूर्ति जैसे अदृष्ट-पूर्व नारीके अवगुण्ठित मुखकी तरह ही रहस्यमय है।"—(श्रीकान्त—तृतीय पर्व)

कल्पनाके ऐश्वर्य और सांकेतिकताकी दृष्टिसे यह वर्णन असाधारण है। किन्तु 'अनागत', 'अपरिज्ञात', अदृष्ट-पूर्व' और 'अवगुंठित'—इतने भारी भारी विशेषणोंसे वाक्य अनावश्यक रूपसे बोझिल हो गया है।

'शेष प्रश्न' उपन्यासमें इस तरहके शब्द-बाहुल्यके बहुतसे दृष्टान्त भरे पड़े हैं। दो-एकका यहाँ उल्लेख किया जाता है—

"वर्त्तमान उसके लिए लुप्त, अनावश्यक, अनागत और अर्थहीन है।"

इन विशेषणोंमें परस्पर-विरुद्धता और पुनरुक्ति, दोनों दोष देख पड़ते हैं।

"कुछ भी न जानकर एक दिन इस रहस्यमयी तरुणीके प्रति अजितका हृदय श्रद्धासहित विस्मयसे भर उठा था। किन्तु जिस दिन कमलने आधी रातके समय अपने निर्जन गृह-कक्षमें इस अपरिचित पुरुषके सामने अपने विगत नारी-जीवनका असंवृत (बेपर्द) इतिहास बहुत ही निःसंकोच भावसे उद्घाटित कर दिया, उसी दिनसे अजितकी पुंजीभूत विरक्ति और वितृष्णाकी जैसे कोई सीमा नहीं थी।"

तनिक सूक्ष्म भावसे विचार करने पर देखा जायगा कि 'असंवृत' और 'निःसंकोच भावसे उद्घाटित' से एक ही भाव प्रकट होता है। किन्तु इसे जाने दिया जाय तो भी प्रत्येक पाठक यह लक्ष्य करेगा कि आवश्यकतासे

अधिक विशेषणोंके प्रयोगसे इस वर्णनकी सहज गतिमें बाधा पहुँची है, और यही इन कई वाक्योंकी प्रधान त्रुटि है।

इस प्रकारका शब्द-बाहुल्य 'शेष-प्रश्न', 'श्रीकान्त' (चतुर्थ पर्व) आदि ग्रन्थोंमें सर्वत्र पाया जाता है। यह बात नहीं है कि सर्वत्र ही यह दोष हो। मगर हाँ, शरत्चन्द्रकी प्रथम युगकी रचनाओंमें जो प्रांजलता है, वह इन ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। इस प्रकारकी रचनाओंमें जो सौन्दर्य है, वह सहज सृष्टिका सौन्दर्य नहीं है। 'श्रीकान्त' के प्रथम पर्वमें अन्नदा दीदीकी एक चिट्ठी है। चतुर्थ पर्व निकृष्ट होने पर भी उसमें राजलक्ष्मीका जो पत्र है, उसके माधुर्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु इन दोनों चिट्ठियोंमें बात कहनेका ढंग कितना भिन्न है—दोनोंकी प्रकाशभंगीमें कितना प्रभेद है! * दोनों ही स्त्रियोंने गहरे आवेगकी प्रेरणासे चिट्ठी लिखी है। अन्नदा दीदीकी बात सरल सहज शब्दों द्वारा प्रकट हुई है। वे अपनी कहानी प्रकट करनेहीमें व्यस्त हैं, उसे अलंकृत करना नहीं चाहतीं। उनके आडम्बरहीन जीवनके साथ उनकी भाषाकी सादगीने सामंजस्य बनाये रखा है। पर राजलक्ष्मीके पत्रमें इस निराभरण ऐश्वर्यका परिचय नहीं है। राजलक्ष्मी मन ही मन जानती है कि अनुमतिके विना श्रीकान्त उसका परित्याग नहीं कर सकता। अतएव श्रीकान्तके संबंधमें आशंका भी अब उसके लिए ऐश्वर्यकी तरह है। वह अपने मनकी बातको बढ़ाकर सँभालकर अलंकारोंसे समृद्ध करके प्रकट करती है। राजलक्ष्मीके पत्रका प्रधान लक्षण भाषाकी धीमी गति और रसिकतामिश्रित निपुणता है। शरत्चन्द्रकी रचनाका यह एक परमसुन्दर निदर्शन है; किन्तु प्रथम वयसकी रचनामें जो सहज सावलील भाव था, वह इसमें नहीं है।

यह प्रभेद और एक दृष्टान्तसे और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। उपन्यासमें राजलक्ष्मीने संगीतके माध्यमसे श्रीकान्तको अपनी संगीत-निपुणताका प्रथम परिचय दिया—वह भी पाषाण-प्रतिमाको प्रसन्न करनेके लिए उतना

* अवश्य यह बात माननी होगी कि अन्नदा दीदीने बालक श्रीकान्तको पत्र लिखा था और राजलक्ष्मीने अपने प्रेमी श्रीकान्तको पत्र लिखा है। यह होने पर भी दोनों पत्रोंकी रचनाका पार्थक्य ध्यान देनेके योग्य है।

नहीं, जितना 'दुर्वासा मुनि' को रिझानेके उद्देश्यसे। प्रथम पर्वमें श्रीकान्त लिखता है—

"गहरी रात तक जैसे केवल मेरे लिए ही अपनी सारी शिक्षा, सारे सौन्दर्य और गलेकी सारी मिठाससे मेरे चारों ओरकी सारी कदर्य मदोन्मत्तता डुबाकर अन्तको वह स्तब्ध हो चली।"

यह वर्णन संक्षिप्त, अथ च संकेतमय है। बाईजीकी शिक्षा और सौन्दर्यने गलेकी मिठासके साथ मिलकर एक अद्भुत सुन्दर कल्पलोककी सृष्टि कर दी है, जहाँ पृथ्वीकी कोई भी कदर्यता प्रवेश नहीं कर सकती। यहाँ बाईजीने केवल समझदार श्रोताको मुग्ध करनेके लिए नहीं गाया है; उसके इस गानेका लक्ष्य बहुत समयके बिछुड़े प्रणयीसे संभाषण करना भी है। इसीसे उसकी यह स्तब्धता केवल गायिकाका विश्राम नहीं है। प्रणयिनी अपनी सारी शिक्षा और सौन्दर्य अर्पण करके चुप हो गई है। थोड़ा-सा गौर करनेसे ही देखा जायगा कि इस वर्णनका प्रधान लक्षण इसकी संक्षिप्तता है; उसके लिए बाईजीका रूप, गुण, चारों ओरकी मदोन्मत्तता और अन्तमें सर्वव्यापी स्तब्धता, सब एक दूसरेसे मिल गये हैं, और एक लक्षण यह है कि जिन सब शब्दोंका व्यवहार किया गया है, खास करके 'कदर्य', 'मदोन्मत्तता', 'डुबाकर', 'स्तब्ध', उनका बहुत सहजमें एक-एक इन्द्रियग्राह्य चित्र हमारी आँखोंके आगे खिंच जाता है। चतुर्थ पर्वका वर्णन इस प्रकार है—

"गाना शुरू हुआ। संकोचकी दुबिधा कहीं भी नहीं है।—निःसंशय कण्ठ अवाध कल-स्रोतकी तरह बह चला। मैं जानता हूँ, इस विद्यामें वह सुशिक्षित है, यह उसकी जीविका थी। लेकिन मैंने यह नहीं सोचा था कि बंगालके निजस्व संगीतकी इस धाराको उसने यत्न करके सीखा है और उसमेंसे कमाल हासिल कर लिया है। प्राचीन और आधुनिक वैष्णव कवियोंकी पदावली उसे कण्ठस्थ है, यह कौन जानता था। केवल सुर, ताल और लयसे ही नहीं, वाक्यकी विशुद्धतासे, उच्चारणकी स्पष्टतासे, प्रकाशभंगीकी मधुरतासे उसने जिस विस्मयकी सृष्टि की, उसका खयाल भी मैं नहीं कर सकता था।"

इस वर्णनमें कवि-कल्पनाका परिचय नहीं है। यह समालोचकका पुंखानुपुंख विश्लेषण है। यह लंबा है, अथ च इसमें सुस्पष्ट इन्द्रियगाह्य चित्र केवल एक ही है। अधिकांश शब्द गुणवाचक हैं। 'संकोचकी दुविधा', 'प्रकाश-भंगीकी मधुरता' आदि पदोंमें एकाधिक गुणवाचक विशेष्य एकत्र हुए हैं। 'वाक्यकी विशुद्धता' का तात्पर्य ग्रहण करना ही कठिन है। पूर्ववर्ती वाक्यमें ही कहा गया है कि उसने प्राचीन और आधुनिक कवियोंकी पदावली कण्ठस्थ कर ली है। तो क्या राजलक्ष्मी केवल गायिका नहीं है, पदावलीके 'पाठ' के सम्बन्धमें भी अभिज्ञ है? अगर यह बात नहीं हो तो 'बाल्यकी विशुद्धता' और 'उच्चारणकी स्पष्टता'—इन दोनोंमें बहुत अन्तर नहीं रह जाता। इस प्रकारके निर्जीव वर्णनके विषयमें ये सब प्रश्न आप ही उठते हैं। सबसे बढ़कर त्रुटि यह है कि गुणवाचक विशेष्योंके बाहुल्यसे गायिका आप ही अस्पष्ट हो गई है।

१४–साहित्यक विचार

१

शरत्चन्द्रने बहुत बार कहा है कि वह उपन्यास-लेखक हैं, रसके विचारक नहीं। तथापि अनेक साहित्य-सभाओंमें उन्होंने भाषण किये हैं और साहित्यके सम्बन्धमें दो-एक लेख भी लिखे हैं। इन सब भाषणों और लेखोंमें उनका मत प्रकाशित हुआ है। लेख और भाषण विभिन्न समयोंमें रचित होनेपर भी उनके बीच एक सुस्पष्ट संयोग-सूत्रका परिचय प्राप्त होता है। यह योग-सूत्र शरत्चन्द्रका साहित्यिक मतवाद गिना जा सकता है और इसकी खोजकी जा सके तो शरत्चन्द्रके साहित्यका स्वरूप भी अधिक स्पष्ट होगा।

शरत्चन्द्रने बंकिमचन्द्रके उपन्यासोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करके भी यह दावा किया है कि आधुनिक साहित्य बंकिमचन्द्रके दिखाये मार्गको छोड़कर आगे बढ़ रहा है। उन्होंने कहा है—"बंकिमचन्द्रके प्रति भक्ति और श्रद्धा हम लोगोंको किसीसे कम नहीं है, और उसी श्रद्धाके जोरसे हमें उनकी भाषा और भावको छोड़कर आगे चलनेमें दुबिधा नहीं जान पड़ी *।" शरत् बाबूने, अपने ऊपर रवीन्द्रनाथका ऋण स्वीकार किया है, किन्तु रवीन्द्रनाथके 'साहित्य-धर्म' शीर्षक लेखके उत्तरमें साहित्यके सम्बन्धमें एक बड़ा-सा लेख (साहित्यकी रीति और नीति) भी लिखा है। सरसरी नजरसे देखनेपर जान पड़ेगा कि इस लेखका उद्देश्य केवल व्यंग्य और मजाक उड़ाना

---

* इस आलोचनामें शरत्चन्द्रके जिन सब लेखोंसे उद्धारण लिये गये हैं, वे उनके 'स्वदेश और साहित्य' ग्रन्थमें प्रकाशित हैं। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरद्वारा प्रकाशित शरत्-निबन्धावलीमें भी उक्त लेख अनूदित हैं।

है; किन्तु तनिक ध्यान देकर पढ़नेसे ही देख पड़ेगा कि साहित्य धर्मके सम्बन्धमें उनके और रवीन्द्रनाथके मतमें मौलिक अन्तर है। साहित्यके सम्बन्धमें शरत्चन्द्रका विशिष्ट मत क्या है और इस बारेमें बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथसे उनका मतभेद कहाँपर है; यह आलोचना करके देखना होगा। बंकिमचन्द्रने विश्वके कार्य-कलापके बीच एक अनिर्वचनीय ऐक्य देख पाया था। वह उसकी अभिव्यक्तिको ही साहित्यका प्रधान कार्य मानते थे। कभी यह ऐक्य उन्हें नियतिका रूप रखकर प्रतीत हुआ है और कभी इसे उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्तिके समन्वय रूपमें वरण किया है। किन्तु उन्होंने सभी समय ऐक्यकी अनुभूतिको ही साहित्यका उपजीव्य या आश्रय मानकर ग्रहण किया है। रवीन्द्रनाथने साहित्यमें परिपूर्णताको खोजा है। जिस शक्तिने प्रतिदिनके प्रयोजनसे अपनेको खण्डित नहीं किया, उसे उन्होंने सौन्दर्यका उत्स कहकर स्वीकार किया है। इन दोनों प्रकारकी खोजोंमें अलगाव रहने पर भी इनके बीच सादृश्य भी है। बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ मूलमें आदर्शवादी हैं। एक विराट् आदर्शने—उसका नाम चाहे जो रख लिया जाय—उनकी साहित्य-सम्बन्धी जिज्ञासाको जगाया है।

शरत्चन्द्र इस मार्गके पथिक नहीं है। साहित्यमें वह मुक्तिवादी हैं। उन्होंने केवल राजनीतिक या सामाजिक विद्रोहकी बातें ही नहीं लिखी हैं। उन्होंने कहा है—"भावमें, कार्यमें, चिन्तनमें स्वतन्त्रता ला देना—किसी प्रकारका बन्धन न रहने देना ही तो साहित्यका काम है।" इस छुटकारेके सम्बन्धमें उनकी धारणा खूब व्यापक है। वह मानते हैं कि साहित्य किसी विशेष आदर्शका बाहन न होना चाहिए। 'गुरु-शिष्य-संवाद' नामका व्यंग्य लेख उन्होंने रवीन्द्रनाथको लक्ष्य करके लिखा है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। किन्तु उसमें भूमाकी जो संज्ञा दी गई है, उसीसे समझा जाता है कि उनका मतवाद रवीन्द्रनाथके मतवादसे कितना भिन्न है। शरत् बाबूने लिखा है—"परब्रह्म ही भूमा है। उसके आनन्दका नाम ही भूमानन्द है।...भूमा अन्तविशिष्ट अनन्त है, आकारविशिष्ट निराकार है—अर्थात् निराकार, किन्तु साकार है, जैसे काला किन्तु सादा,—समझे?" इस व्यंग्योक्तिमें प्रत्यक्ष भावसे साहित्यका उल्लेख न रहनेपर भी साहित्यकी ओर इसका इशारा खूब है। शरत्चन्द्रकी नायिका रमाके सम्बन्धमें

एक आलोचकने कुछ कठोर बात कही थी, जिसके उत्तरमें उन्होंने कहा है—"यह धिक्कार आर्टका नहीं है, यह धिक्कार समाजका है, यह धिक्कार नीतिका अनुशासन है। इनका मानदण्ड एक नहीं है, अक्षर-अक्षर पंक्ति पंक्ति एक करनेके प्रयासमें ही सारी गड़बड़, सारे विरोधकी उत्पत्ति है।" एक दूसरे प्रसंगमें उन्होंने कहा है—"कई वर्ष पहले मैं कॉंठालपाड़ा ग्रामकी साहित्य-सभामें उपस्थित हुआ था। देखा, बंकिम बाबूकी मृत्युके दिनको स्मरण करके बहुतसे मनीषी, बहुतसे पण्डित, बहुतसे साहित्यरसिक बहुतसे स्थानोंसे सभामें आकर इकट्ठे हुए हैं। वक्ताके बाद वक्ता खड़े होते हैं—सभीके मुँहसे यही एक बात सुनाई पड़ती है कि बंकिमचन्द्र 'वन्दे मातरम्' मन्त्रके ऋषि हैं, बंकिमचन्द्र मुक्ति-यज्ञके प्रथम पुरोहित हैं। सबकी समवेत श्रद्धांजलि जाकर 'आनन्दमठ'के ऊपर ही पड़ी किन्तु किसीने 'विषवृक्ष' का नाम नहीं लिया, किसीने एक बार 'कृष्णकान्तेर विल' को याद नहीं किया।" और 'कृष्णकान्तके विल' में नीतिका आदर्श अक्षुण्ण रखनेके लिए बंकिमचन्द्रने रोहिणीके साथ जो अन्याय-अविचार किया है, उसकी निन्दा शरत्चन्द्रने एकसे अधिक बार की है।

शरत्चन्द्रके मतसे साहित्य मानवात्माकी बन्धन-हीन अभिव्यक्ति है। बाहरसे कोई आदर्श, कोई दार्शनिक मतवाद उसे बाँध नहीं सकता—किसी तरहके बन्धनसे काम नहीं चलेगा। उन्होंने स्वयं ही कहा है—"बुरेकी वकालत करनेके लिए कोई भी साहित्यिक कभी किसी दिन साहित्यकी महफिलमें खड़ा नहीं होता; किन्तु बहलाकर नीतिकी शिक्षा देना भी वह अपना कर्त्तव्य नहीं मानता।...थोड़ा गहरे पैठकर देखनेसे उसकी सारी साहित्यिक दुर्नीतिके मूलमें शायद एक ही चेष्टा हाथ लगेगी; वह यही कि वह मनुष्यको मनुष्य ही सिद्ध करन चाहता है।" यही शरत्चन्द्रका साहित्य-धर्म है। मनुष्य भूमाका उपासक नहीं है, परिपूर्णताकी प्रतिच्छवि मात्र नहीं है, उसका जीवन नीतिकी बातोंका उदाहरण मात्र नहीं है। वह मनुष्य है और किसी आदर्शके द्वारा तिलमात्र विचलित न होकर मनुष्यको मनुष्य सिद्ध करना ही साहित्यिकका काम है। हृदयकी सच्ची अनुभूति, आनन्द और वेदनाके आलोड़न-मंथनको ही शरत्चन्द्रने साहित्यका एकमात्र विषय निर्देश किया है।

यहाँपर प्रश्न होगा कि शरत्चन्द्र आदर्शवादी हैं या यथार्थवादी—आयडियलिस्ट हैं या रियलिस्ट ? इन दोनों अँगरेजी छापोंमेंसे कौन उनके नामके साथ जोड़ी जा सकती है, इस बातको लेकर शरत्चन्द्रके जीवित-कालमें ही बहुत आलोचना हो चुकी है। शरत् बाबूने स्वयं इस बहसका उल्लेख करके, इसके समाधानकी ओर अंगुलिनिर्देश किया है। आयडियलिस्ट और रियलिस्टके बीच कोई सुस्पष्ट सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती। आदर्श कोई आकाशकी चीज नहीं है; उसे इस पृथ्वीके जीवनमें ही अन्तको आंशिक भावसे सत्य होना होगा। वही आदर्श है, जिसका हम अनुसरण करते हैं अथवा जिसका अनुरण करना उचित मानते हैं। यथार्थवादी लोग कोरे या खालिस यथार्थको लेकर व्यस्त नहीं रह सकते। वे भी मूल्यका विचार करते हैं। हमारा कोई आदर्श न रहने पर किसी पदार्थका कोई मूल्य ही नहीं रहता हमारे लिए। यथार्थवादी लोग कहते हैं—ये सब घटनाएँ हुई हैं अथवा होती रहती हैं। साहित्यकको इनका ही वर्णन देना चाहिए। यह औचित्य-बोध वास्तव घटनामें नहीं है। यह यथार्थवादीका अ-यथार्थ आदर्श है। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"दो शब्द आजकल प्रायः सुने जाते हैं Idealistic and Realistic (आदर्शवादी और यथार्थवादी)। मुझे लोग दूसरे सम्प्रदायका अर्थात् यथार्थवादी कहते हैं। अथ च, यह मुझे नहीं मालूम कि इन दोनोंको किस तरह अलग करके लिखा जाता है या लिखा जा सकता है.. जो कुछ घटित होता है, उसके हूबहू चित्रको जैसे मैं साहित्य-वस्तु नहीं कहता, वैसे ही जो घटित नहीं होता, अथ च समाज या प्रचलित नीतिकी दृष्टिसे जो हो तो अच्छा हो, इस कल्पनाके माध्यमसे उसकी उच्छृंखल गतिमें भी साहित्यकी बहुत अधिक विडम्बना होती है।"

आदर्शवाद और यथार्थवाद, इन दोनोंको बिल्कुल अलग न रखे जाने पर भी, सभी साहित्यिक इन दोनों उपकरणोंका समान भावसे प्रयोग नहीं करते। कोई-कोई साहित्यिक चरित्रकी पारिपार्श्विक अवस्थाका पुंखानुपुंख वर्णन देना चाहते हैं। वे चरित्रके विश्लेषण और बाहरके परिवेष्टनके साथ उसके संयोगपर विशेष लक्ष्य रखते हैं। इन्हें हम Realist (यथार्थवादी) कह सकते हैं। एक श्रेणीके और साहित्यिक हैं, जिनकी साहित्यिक प्रेरणा किसी विशेष अभिज्ञतासे नहीं आती; मानव-जीवन और मानव-चरित्रके सम्बन्धमें उनकी कुछ धारणाएँ और

आदर्श हैं। वे अभिज्ञताके भीतरसे उन्हीं धारणाओंको जाँच कर स्पष्ट कर लेना चाहते हैं। इन्हें आदर्शवादी साहित्यिक कहा जा सकता है। शरत्चन्द्रने इन दोनों सम्प्रदायोंसे दूर रहना चाहा है। उनके मतमें, उन सब उपन्यासोंमें आदर्शवादी अवैज्ञानिक मनोवृत्तिकी परिणति देखी जाती है, जिनमें मरा हुआ बालक संन्यासीके मन्त्र-बलसे जी उठता है और सच्चरित्र गरीब कालीका भक्त नायक स्वप्नमें आदेश पाकर उसके जोरसे सात घड़े सोनेकी मोहरें पेड़के तलेसे खोदकर पाता और बड़ा आदमी बन जाता है। वैज्ञानिक मनोवृत्तिसे सम्पन्न लोगोंको भी उन्होंने यह कहकर सावधान किया है कि "संसारमें जो कुछ होता है—और अनेक गन्दी या भद्दी बातें ही होती हैं—वह किसी तरह साहित्यकी सामग्री नहीं है। प्रकृति या स्वभावकी हूबहू नकल करना फोटोग्राफी हो सकता है; किन्तु वह क्या एक चित्र होगा?" शरत्चन्द्रने स्वच्छ मोह-मुक्त दृष्टि और बन्धन-मुक्त मन लेकर मानव-जीवनको समझना चाहा है। उन्होंने नैतिक या कल्पित किसी आदर्श या आइडियाके द्वारा अपनेको भाराक्रान्त नहीं करना चाहा। इस हिसाबसे वह यथार्थवादी या Realist हैं। किन्तु पूर्वकल्पित आदर्शके द्वारा दबे न होनेपर भी, उन्होंने वास्तव अभिज्ञताको केवल बाहरकी घटनाके हिसाबसे नहीं देखा। उनका प्रधान उद्देश्य चरित्रकी सृष्टि, घटनाके भीतर अनुभूतिकी खोज, है। अनुभूतिको देख पाना कठिन है और घटनाके भीतर उसका जो प्रकाश होता है वह अस्पष्ट और असम्पूर्ण रहता है। इसलिए जो साहित्यिक आनन्द और वेदनाके आलोड़नको ही साहित्यका मौलिक उपकरण मानकर ग्रहण करते हैं, वे आदर्शके द्वारा संचालित न होनेपर भी बाहरकी घटनाको प्रधानता नहीं दे पाते। वेदना-बोधकी प्रचुरता उन्हें उद्वेलित करती है, और इस हिसाबसे वह रोमांटिक और आदर्शवादी सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। कारण, अनुभूतिको ही केन्द्र बनानेसे बाहरी घटनाकी प्रधानता कम हो जायगी। बाहरकी घटना, केवल अनुभूतिके वाहनके हिसाबसे ही वर्णन की जाती है। अन्तर्लीन अनुभूति अयथार्थ है, और आदर्शकी तरह ही वह वास्तव चित्रका नियन्त्रण करती है। शरत्चन्द्रने अपनी साहित्य-सृष्टिके सम्बन्धमें कहा है—"मैं तो जानता हूँ कि किस तरह मेरे चित्र बनकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण होते हैं। वास्तव अभिज्ञताकी मैं उपेक्षा नहीं करता; किन्तु वास्तव और अवास्तवके

सम्मिश्रणसे ये चित्र कितनी व्यथा, कितनी सहानुभूति, कितना हृदयका रक्त देकर धीरे-धीरे बड़े होकर विकासको प्राप्त होते हैं, इसे और कोई न जाने, मैं तो जानता हूँ। सुनीति और दुर्नीतिका स्थान इसके भीतर है, किन्तु वाद-विवाद करनेकी जगह इसमें नहीं है—यह चीज इनसे बहुत ऊँची है।" अन्यत्र उन्होंने कहा है—"मानवकी सुगम्भीर वासना, नर-नारीकी अत्यन्त गूढ़ वेदनाका विवरण अगर वह न प्रकट करेगा तो कौन करेगा?"* मानवका यह सच्चा परिचय ग्रन्थकारके किसी आदर्शके द्वारा नियन्त्रित न होगा यही शरत्चन्द्रका लक्ष्य है। और, इस हिसाबसे वह यथार्थवादी या वास्तव-पन्थी हैं। किन्तु 'सुगभीर' और 'निगूढ़' की खोज करनेमें वह वस्तु-तांत्रिकताकी सीमाको नाँघ गये हैं।

शरत्चन्द्रने साहित्यको आदर्शके बोझसे छुटकारा दिया है और अनुभूतिको प्रधानता दी है। अनुभूति हर घड़ी बदलती रहती है। जो अनुभूति सब समय स्थिर होकर रहती है, वह आदर्शका ही रूपान्तर मात्र है। अनुभूतिको आदर्श और वास्तवके शासनसे मुक्त करनेके कारण शरत्चन्द्रने साहित्य-सृष्टिमें क्षणिकता-की जयजयकार की है। उन्होंने बार बार कहा है कि साहित्यमें नित्य वस्तु नामकी कोई चीज नहीं है। दासूरायकी पांचाली† एक समय लोगोंको बहुत मन भाई थी, किन्तु आज वह बासी मालाकी तरह अनादृत है—उसे कोई नहीं पूछता। शकुन्तला, चण्डीदासकी वैष्णव-पदावलीकी आयुका समय अवश्य ही दासू रायकी पांचालीकी आयुसे लम्बा है; किन्तु वे भी अमर नहीं हैं। मनुष्यके मनके परिवर्तनके साथ साथ उनकी मृत्यु भी अवश्य होनेवाली है। आज जो लेखक लांछना और तिरस्कार पा रहे हैं, उनके लिए भी लज्जाका कोई कारण नहीं है। अनागतके बीच उनके भी उत्कर्षका दिन छिपा हुआ है। सौ वर्षके बादका पाठक सम्प्रदाय हो सकता है कि उनकी सारी कालिमाको धो-पोंछ दे।

* केवल साहित्यमें ही नहीं, सांसारिक बातोंके विचारमें भी, शरत्बाबूने निगूढ़को प्रधानता दी है। देशबन्धु चित्तरंजन दासके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है—"लोग कहते हैं कि इतना बड़ा दाता, इतना बड़ा त्यागी हमने नहीं देखा। दान हाथ फैलाकर लिया जाता है। त्याग आँखोंसे देखा जाता है, यह सहजमें लोगोंकी नजरोंसे बच नहीं सकता। किन्तु हृदयका निगूढ़ वैराग्य?"

† एक प्राचीन ढंगका बंगला काव्य।

शरत्‌बाबूने साहित्यके क्षेत्रको सीमाबद्ध नहीं करना चाहा—" उसकी गति भविष्यके बीचमें है।" किसी कालका कोई आदर्श उसे खंडित न कर सकेगा। मनुष्यकी अनुभूतिकी प्रतिच्छवि मनुष्यके मनकी तरह ही चंचल है। अपनी एक पाठिकाको शरत्‌बाबूने लिखा था—" तुमने चित्तरंजन शब्दको लेकर बहुत कुछ लिखा है, लेकिन यह एक बार भी सोचकर नहीं देखा कि वे दो शब्द हैं। केवल ' रंजन ' नहीं, ' चित्त ' नामकी भी एक वस्तु है। वह चीज बदलती है।" इस तरफसे कमल और उसकी सृष्टि करनेवालेके मनमें सादृश्य है। दोनोंने ही चित्तके चंचल होनेकी महिमाका ढिंढोरा पीटा है। साहित्यमें गतिशीलताके ऊपर जोर देनेके कारण, शरत्‌चंद्रने किसीको चरम सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया। (कमलकी भाषामें) " सत्य केवल उसके चले जानेका छंद मात्र है।" गतिका छन्द अव्याहत रहे, उसमें रुकावट न पड़े, इतना ही दावा शरत्‌चन्द्रने साहित्य और साहित्यिककी ओरसे जनाया है। यहाँ-पर रवीन्द्रनाथ और शरत्‌चन्द्रके साहित्य-संबंधी मतका प्रभेद सहजमें ही मालूम पड़ जायगा। रवीन्द्रनाथने साहित्यमें सार्वजनीनको, चिरन्तनको खोजा है। उनके मतमें—

" To detach the individual idea from its confinement of everyday facts and to give its soaring wings the freedom of the universal : this is the function of poetry,......Creation throbs with Eternal passsion. Eternal Pain. "

शरत्‌चन्द्रने भी साहित्यको बन्धनहीन करना चाहा है। उन्होंने भी प्रतिदिनकी घटनाओंको चरम सत्य मानकर ग्रहण नहीं किया। किन्तु उन्होंने प्रतिदिनकी घटनाओंकी आड़में क्षणिक अनुभूतिको रूप देकर चरित्रकी सृष्टि करनी चाही है। उनके मतमें अन्यान्य बंधनोंकी तरह वास्तवसे अतीत आदर्श भी साहित्य-सृष्टिकी गतिको अवरुद्ध करता है।

साहित्यमें क्षणिकतापर विश्वास करनेके कारण शरत्‌चंद्र कुछ भी छोड़नेके लिए प्रस्तुत न थे। यहाँ तक कि उनके मतसे आवर्जना (कूड़ा कर्कट) का भी मूल्य है। बहुतसे सड़े-गले पत्तोंसे भूमिकी उर्बरता साधित होनेपर वहींपर बड़े भारी वृक्षका जन्म संभवपर होता है। सत्साहित्यकी बहुतायत कभी किसी समय नहीं देखी जाती। उसकी भी सृष्टि बहुत-से कूड़े-कर्कटके बीच ही होती है।

जिस दिन कूड़ा-कर्कट नहीं रहेगा, उस दिन सत्साहित्य भी नहीं रहेगा। बहुत लोग साहित्यकी सृष्टि करना चाहते हैं, इसी चेष्टामें लगे रहते हैं, इससे कमसे कम यह प्रमाण मिलता है कि देशमें प्राणशक्तिका संचार हो रहा है, और इसीकी प्रेरणासे सत्साहित्यकी सृष्टि संभव होगी। इसी कारण शरत्चन्द्रने आवर्जनाके भीतर भी सार्थकताका आविष्कार किया है। इससे उनके साहित्यिक मतकी उदारताका परिचय मिलता है। उन्होंने कहा है-" आवर्जना ही सभी साहित्योंकी बुनियाद है। जिन्हें कूड़ा समझा जाता है वे ही साहित्यकी अस्थि-मज्जा हैं ......कूड़ा जिस दिन दूर हो जायगा, उस दिन वह भी उसी राहसे अन्तर्धान हो जायगा, जिसे सार-वस्तु कहा जाता है। आवर्जना चिरजीवी होकर नहीं रहती। वह अपना काम करके मर जाती है—यही उसका प्रयोजन है, यही उसकी सार्थकता है।"

२

शरत्चन्द्रने क्षणिक अनुभूतिकी अभिव्यक्तिको साहित्यका मूल-उपकरण स्वीकार किया है। इससे यह समझा जा सकता है कि वह Art for art's sake (कला कलाके लिए) नीतिमें विश्वास करते हैं। किन्तु यह सत्य नहीं है। जो अनुभूति साहित्यका प्राण है, वह खालिस 'मरमी' अनुभूति नहीं है। साहित्यका जो अंश केवल अन्तर्दृष्टि या कोरी अभिव्यक्ति है वह शायद ऐसी प्रतिभा है जिसका विश्लेषण नहीं हो सकता; किन्तु वही साहित्यकी प्रधान वस्तु नहीं है। साहित्यके सम्बन्धमें शरत् बाबूने कहा है —" संज्ञानिर्देश करके दूसरेको इसका रूप समझाया नहीं जा सकता। किन्तु साहित्यका और एक पहलू है, वह बुद्धि और विचारकी वस्तु है। वह युक्ति तर्कके द्वारा किसी दूसरेकी समझाई जा सकती है।" यह साहित्यका आइडिया, उसका चिन्तन और मत है। यह अनुभूतिको प्रभावित करता हैं, उसकी रसद पहुँचाता है। यह अभिव्यक्तिका विषय है, और युग-युगमें इसका परिवर्तन होनेके कारण ही साहित्यका स्वरूप भी बदला करता है। साहित्यकी जो चिर-चंचलता और गतिशीलताकी बात उन्होंने कही है, उसकी भी जड़ यहींपर है। साहित्यमें जो अनुभूति प्रकट होती है, वह ऐसा पदार्थ नहीं है, जो छुआ न जाय या पकड़के बाहर हो। वह कविके समग्र

मनकी सृष्टि है, उसका एक अंश बुद्धिका दान है। लोगोंकी मति-गति बदल गई है, अतएव आजकलका पाठक प्रतापके आदर्शको चरम मानकर ग्रहण नहीं कर सकता और रोहिणीकी अपमृत्युको भी अकुण्ठित भावसे शिरोधार्य नहीं कर सकता। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"विष्णुशर्माके युगसे आज तक हम कहानी-उपन्याससे कुछ शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। यह प्रायः हमारा संस्कार ही बन गया है।" किन्तु हम जो बात सीखते हैं उसके स्वरूपके सम्बन्धमें हमारी धारणा अटल नहीं रहती, इसीसे साहित्यका रूप भी बदलता है। असलमें प्रचारहीन साहित्य प्रचार भी नहीं है, साहित्य भी नहीं है; उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। साहित्य अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। प्रत्येक अनुभूतिका ही रूप है। उसे समझनेके लिए उसे और अनुभूतिसे अलग करना होगा। यह काम बुद्धिका है। इस तरह ओतप्रोत भावसे बुद्धि और अनुभूति एकमें गुँथ गई हैं, और इसी कारणसे साहित्यमें प्रचारनीतिका प्रवेश अवश्यंभावी है। शरत्चन्द्रने आप ही कहा है—"जगत्का जो चिर-स्मरणीय काव्य और साहित्य है, उसमें भी किसी-न-किसी रूपमें यह चीज है। रामायणमें है, महाभारतमें है, कालिदासके काव्यग्रन्थोंमें है, आनन्दमठ और देवी चौधरानीमें है, इब्सन–मेटर्लिंक–टाल्सटायमें है, हमसून–बोअर–वेल्समें है।" इसीलिए शरत्चन्द्रने साहित्य-रचनामें वैज्ञानिक मनोवृत्तिका दावा स्वीकार कर लिया है। रवीन्द्रनाथके 'साहित्य-धर्म' लेखके उत्तरमें उन्होंने कहा है—"विज्ञान तो केवल निष्पक्ष कौतूहल मात्र ही नहीं है, वह कार्य-कारणका विचार है।" "इसीसे विज्ञानको सम्पूर्ण अस्वीकार करके धर्मपुस्तककी रचना की जा सकती है, आध्यात्मिक कविता लिखी जा सकती है, रूप कथा-साहित्यकी रचना भी न की जा सकती हो, यह बात भी नही है। किन्तु उपन्यास-साहित्यका यह श्रेष्ठ मार्ग नहीं है।"

साहित्य जो अनुभूतिको प्रकट करता है सो वह केवल कल्पनामात्र नहीं है; उसमें बुद्धिके लिए भी स्थान है। कविकी प्रतिभाका कितना अंश कल्पना है और कितना अंश बुद्धि है और किस प्रकार इनके सामंजस्यके फलसे साहित्यकी सृष्टि होती है—यह रस-तत्त्वका एक मौलिक प्रश्न है। शरत्चन्द्रने इस प्रश्नका समाधान करनेकी चेष्टा नहीं की। वह रसकी सृष्टि करनेवाले हैं, तत्त्वके विचारक नहीं। उनकी आलोचना थोड़ी सीमाबद्ध होगी ही। साहित्यके

विचारमें उनका श्रेष्ठ दान यही है कि उन्होंने साहित्यिकको यथासंभव भार-मुक्त करना चाहा है। उनके मतसे साहित्य अनुभूतिकी अभिव्यक्ति है। वह अनुभूति 'वास्तव' में जन्म लेती है और बाहरकी घटनाओंके भीतर आंशिक भावसे प्रकाशित होती है। अतएव वास्तवको बाद देकर साहित्यकी सृष्टि संभवपर न होगी। आदर्शके लिए मनुष्यकी आकांक्षा उसकी अनुभूतिका अंग हो सकती है, किन्तु बाहरके किसी आदर्शके मापदंडसे साहित्यका विचार न होगा। बाहरके आदर्श द्वारा उसे नियन्त्रित करना उसे पंगु बना डालना होगा। फिर जो यथार्थ केवल व्यक्तिगत प्रयोजनमें ही समाप्त हो जाता है, वह एक आदमीके भोगकी वस्तु है; वह विश्व-मानवका ऐश्वर्य नहीं हो सकता। "सच्चा ऐश्वर्य जो है, वह हमेशा मनुष्यके नित्यके प्रयोजनके अतिरिक्त है।" यह ऐश्वर्य अनुभूतिका ऐश्वर्य है। प्रतिदिनके प्रयोजन और यथार्थ घटनाके साथ इसका संयोग रहने पर भी यह उनसे परे है—यह विश्व-मानवकी सम्पत्ति है। शरत्चन्द्रकी रचनामें इन दोनों परस्पर-विरोधी भावधाराओंका समन्वय हुआ है, इस लिए शरत्चन्द्र खालिस आदर्शवादी नहीं हैं और कोरे यथार्थवादी भी नहीं हैं। उन्होंने साहित्यको प्रशस्त, बन्धनमुक्त करना चाहा है। रस-तत्त्वके विचारमें यही उनका श्रेष्ठ कृतित्व है। उन्होंने किसी आदर्शकी खातिर साहित्यके दावेको घटाना नहीं चाहा। शरत्चन्द्रने कहा है—"साहित्यके अनेक कामोंमें एक काम जातिका गठन करना, सब ओरसे उसे उन्नत बनाना है।" किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि साहित्यका चरम मूल्य समाजके हानि-लाभ और राजनीतिक कलह-मिलनके बहुत ऊपर है। साहित्यके विचारमें उन्होंने अपने जिस दूर तक सोचनेके गुणका और मतकी उदारताका परिचय दिया है, उसकी तुलना अन्यत्र दुर्लभ है। केवल रसकी सृष्टिमें नहीं, रसके विचारमें भी वह असाधारण हैं।

१५–शेष परिचय

[शेषेर परिचय (शेष परिचय) उपन्यास समाप्त करनेके पहले ही शरत्चन्द्रका जीवन समाप्त हो गया था। उनकी मृत्युके बाद श्रीयुक्ता राधारानी देवीने इस ग्रन्थको पूरा करके पुस्तकाकार प्रकाशित किया। हम यहाँ श्रीयुक्ता राधारानीकी रचनाके रूपमें इसे स्थान नहीं दे रहे हैं। शरत्चन्द्रके जीवन-कालमें इस उपन्यासका जितना अंश 'भारतवर्ष' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था, केवल उसीकी विशेषतापर विचार किया जा रहा है।]

१

याद आता है, किसी एक प्रसंगपर बर्नार्ड शॉने कहा था कि मैं लगातार अविश्रान्त भावसे नाटकपर नाटक लिख सकता हूँ। कारण, कल्पित परिस्थितियोंमें कल्पित अथ च सजीव नर-नारियोंको रखकर उनके मुखमें भाषा देनेकी क्षमता मुझमें है। बर्नार्ड शॉने मजाकमें ही सही, नाटकोंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, वह उपन्यासोंके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है। उपन्यास हो चाहे नाटक, उसमें एक कल्पित परिस्थितिमें कल्पित नर-नारियोंसे इस तरह बातें करानी होंगी या काम कराना होगा कि जिससे ऐसा जान पड़े कि वे जीते जागते मनुष्य हैं। कवि विधाताके समान होता है। वह नित्य नये-नये मनुष्योंकी सृष्टि करता रहता है, जो परिस्थितिके बीच भाषा और कार्यद्वारा अंदरूनी प्राणशक्तिका प्रमाण देते हैं।

शरत्चन्द्रमें ऐसी सृष्टि करनेकी शक्ति असाधारण थी। वह नर-नारी और बालकोंको अनेक घटनाओंके चक्रमें डालकर, उन्हें प्राणवान् करके प्रकट कर सकते थे। जिन्होंने केवल परिस्थितिकी विचित्रतापर नजर जमा रखी है, उन्होंने हमेशा

ही कहा है कि ये सब घटनाएँ असम्भव हैं; ये विस्मयमें डाल सकती हैं; किन्तु सत्य नहीं हैं। कोई बाईजी अपने पाठशालाके साथीके लिए अपने हृदयमें पवित्र प्रेम संचित कर रखेगी; मेसकी नौकरानी पवित्रताका आदर्श होगी; रोगी मित्रको छोड़कर उसकी पत्नीको लेकर कोई मित्र भाग जायगा; ये सब परिस्थितियाँ एकदम अविश्वासके योग्य जान पड़ती हैं। किन्तु इन सब मामलों—घटनाओंको—विच्छिन्न भावसे अर्थात् अलग करके देखनेसे काम न चलेगा। राजलक्ष्मी, सावित्री, सुरेश और अचलाके चरित्रकी विशेषताने ही इन सब असम्भव घटनाओंको विश्वासके योग्य बना दिया है। इन सब चरित्रोंकी असाधारणता इन सब अद्भुत घटनाओंकी सहायताके विना प्रकाशित नहीं हो सकती थी। 'शेष परिचय' में जो कहानी वर्णन की गई है; वह प्रथम दृष्टिमें अतिनाटकीय मालूम पड़ सकती है। कुलका त्याग करनेवाली स्त्री तेरह वर्ष बाद अपनी परित्यक्त कन्याके विवाहको रोकनेके लिए व्यग्र हो उठी है और अपना इरादा कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए पहलेके अपने आश्रित एक युवकसे भेंट करने आई है और वहीं उसका अपने उसी पतिके साथ एकाएक सामना हो गया है, जिसे तेरह वर्षके भीतर उसने कभी नहीं देखा ! उसी कन्याकी बीमारीको उपलक्ष्य करके एकाएक वह स्त्री उसी आदमीसे चिरकालके लिए अलग हो गई, जिसका आश्रय लेकर तेरह वर्ष पहले उसने गृहका त्याग किया था और लम्बे तेरह साल तक वह जिसके साथ रही-सही। इस कहानीमें ऐसे ही और भी अतिनाटकीय मामले हैं। ये साधारणतः असंभव ही जान पड़ते हैं; किन्तु शरत्चन्द्र जिस रहस्यकी खोज कर रहे थे, उसके लिए असाधारण चरित्र और विस्मयकर परिस्थितिका प्रयोजन था।

२

वह रहस्य क्या है ? शरत्चन्द्रने नारी-हृदयके रहस्यको खोलनेकी चेष्टा की है और नारीको न्यायसंगत मर्यादा दी है। उन्होंने दिखाया है कि समाजने जिनको कलंकिनी कहकर पंगतके बाहर कर दिया है, वे हृदयकी पवित्रता और अनुभूतिके गौरवमें असाधारण भी हो सकती हैं। उन्होंने यह भी दिखाया है कि विधवाके प्रेममें वास्तवमें कोई कलंक नहीं है। रमा रमेशको जो प्यार करती थी,

वह सार्थक नहीं हो सका; किन्तु उसमें गहराई या पवित्रताका अभाव नहीं था। शरत्चन्द्रने देखा है कि ये सब स्त्रियाँ केवल समाजके द्वारा ही विडंबनाको नहीं प्राप्त हुई हैं; उन्हें सबसे अधिक विडम्बित किया है समाजके दिए हुए संस्कारोंने। राजलक्ष्मी, रमा आदिके हृदयोंमें गहरे प्रेम और अनतिक्रमणीय धर्म-बुद्धिका अविराम संघर्ष चलता रहा है। वे किसी तरह यह नहीं समझ पाईं कि इन दोनोंमें कौन शक्ति अधिक प्रबल है अथवा किसकी मर्यादा अधिक है। अचलाके चरित्रके विश्लेषणमें शरत्चन्द्रने और भी थोड़ा-सा साहस किया है। इस जगह संघर्ष हुआ है अनुभूति और बुद्धिके बीच, अथवा अनुभूतिके भीतर ही। मानव-जीवनका श्रेष्ठ रहस्य यही है कि उसमें जो सब बहुत ही गहरी अनुभूतियाँ हैं, उनके बीच अनेक समय स्वविरोधिता रहती है। इसी लिए वे दुर्ज्ञेय और अलंघ्य हैं। स्वयं जिसे अच्छी तरह नहीं समझा जाता, उसे दूसरेके आगे स्पष्ट करके प्रकट नहीं किया जा सकता और इसी कारण उसे अपने काबूमें रखना भी कठिन होता है। अचला समझती थी कि वह महिमको प्यार करती है और सुरेशको पराई स्त्रीके प्रति लुब्ध और विश्वासघातक समझकर घृणा करती है। किन्तु अपने अनजानेमें ही सुरेशकी ओर उसका मन आगे बढ़ता रहा है। सुरेश जो अति नाटकीय और दुःसाहसिक उपायसे उसे लेकर भाग गया, यह जैसे उसके अन्तःकरणके भीतर छिपी हुई प्रणयकी आकांक्षाका ही प्रतीक है। उसके हृदयमें इन परस्परविरोधी अनुभूतियोंने कैसे आश्रय ग्रहण किया था, इस बातको वह न समझा सकी। इस सारे व्यापारको उसने दैवका अभिशाप ही समझा।

'शेष परिचय' में शरत्चन्द्र और भी थोड़ा आगे बढ़े हैं। इस उपन्यासकी नायिका सविता अपने पतिके प्रति अत्यन्त अनुरक्त और भक्ति रखनेवाली थी। किन्तु उसी पतिको त्यागकर वह रमणी बाबू नामके एक दूरके नातेके आदमीके साथ बाहर निकल गई। उसके पीछे घरमें उसकी तीन वर्षकी लड़की रेणु, उसके धर्मपरायण पति, गृहदेवता गोविन्दजी और कुल-वधूकी मर्यादा पड़ी रही। तेरह साल तक रमणी बाबूकी रखैलके रूपमें रहनेके बाद सवितासे हमारी पहली भेंट होती है। कहानीका आरंभ यहींसे होता है। हम देखते हैं कि तेरह साल बाद भी पतिके प्रति सविताकी भक्ति पहलेहीकी तरह अटल है, कन्याके प्रति उसका प्रेम अम्लान है और रमणी बाबूके प्रति उसकी वितृष्णा (नफरत) की सीमा नहीं है। अगर यह समझा जाता कि रमणी बाबूके साथ

रहनेके फलस्वरूप उसके मनमें यह वितृष्णा उत्पन्न हुई है तो फिर यह प्रश्न अपेक्षाकृत सरल हो जाता, रविबाबूके 'घरे बाइरे' (घर और बाहर) की मोह-मुक्त विमलाके साथ उसकी तुलना की जा सकती। किन्तु देखा जाता है कि उसके चरित्रका रहस्य और भी जटिल, और भी गंभीर है। जिस दिन वह रमणी बाबूके साथ घरसे निकली, उस दिन भी उसने रमणी बाबूको प्यार नहीं किया। अथ च तेरह वर्ष तक उसने रमणी बाबूके ऐश्वर्यका अंश ग्रहण किया और उनकी शय्यासंगिनी बनी रही। राजलक्ष्मी या सावित्रीने जो अपने शरीरको पवित्र बनाये रखा, वह भी सविताने नहीं किया। शायद उसने सोचा होगा कि जिस नारीने कुलका त्याग कर दिया, पति और कन्याके बन्धनको काट डाला, उसके लिए देहको अकलंकित रखनेसे लाभ क्या है? किन्तु प्रश्न यह है कि फिर सविताने घरका त्याग क्यों किया? गहरी अर्धरात्रिके समय अपमानकी गठरी सिरपर लादकर घरसे बाहर होते समय उसने कहा था—"तुम कोई इनकी (रमणी बाबूकी) देहमें हाथ न लगाना। मैं मना किये देती हूँ। हम अभी घरसे निकले जाते हैं।" तो क्या उसके गृहत्यागका कारण रमणी बाबूके प्रति अनुकम्पा है? उसे अत्याचारसे बचानेकी इच्छा है? किन्तु जिस आदमीको उसने किसी दिन भी प्यार नहीं किया, उसके ऊपर यह अनुकम्पा क्यों होगी? खासकर उसने खुद ऐसी कोई व्याख्या देकर अपने पापको हल्का करनेकी चेष्टा नहीं की। अगर रमणी बाबूके प्रति दयाने ही उसे इसके लिए प्रेरित किया होता, तो किसी-न-किसी समय वह उसका उल्लेख अवश्य करती। इसके अलावा सविताका एकान्त अनुगत राखाल इस मामलेमें बाहरके षड्यन्त्रके ऊपर कितना ही जोर क्यों न दे, इसमें सन्देह नहीं कि ब्रज बाबूके घरमें रहते समय रमणी बाबूके साथ सविताका सम्बन्ध शुचिताकी सीमाको नाँघ गया था। जिस अवस्थामें निर्जन कक्षमें गहरी रातको इन दोनोंको पाया गया, उसकी व्यंजना ही यथेष्ट है। सविताने स्वयं अपने इस पद-स्खलनको सम्पूर्ण रूपसे मान लिया है। पतिका घर छोड़नेके पहलेके अपने आचरणको उसने कभी अनिन्द्य नहीं माना। अथ च पतिके प्रति एकनिष्ठ भक्तिका अभाव भी उसमें कभी किसी दिन नहीं हुआ। तब फिर क्यों उसका पदस्खलन हुआ था? नारीके हृदय-रहस्यकी ठीक यह दिशा शरत्चन्द्रने अपने और किसी उपन्यासमें खोलनेकी चेष्टा नहीं की। अथ च पहलेके उपन्यासोंमें उन्होंने जिन सब समस्याओंकी चर्चा या आलोचना की थी,

उनके साथ इस उपन्यासकी भी समस्याका संयोग है। उन्होंने पद-स्खलिता रमणियोंको अपने उपन्यासोंका केन्द्र बनाया है और अनेक पहलुओंसे उनके चरित्रकी विशेषताका विश्लेषण किया है। किन्तु यहाँ उन्होंने उन स्त्रियोंके जीवनके मौलिक प्रश्नकी आलोचना की है। वह प्रश्न यह है कि इनका पदस्खलन होता क्यों है और वह पद-स्खलन उनके जीवन अथवा चरित्रके ऊपर रेखापात करता है कि नहीं। इस पहलूसे विचार करने पर यह उपन्यास सच-मुच ही शरत्चन्द्रका शेष परिचय देता है।

जिस सुगभीर कलंकका बोझा लादकर सविता समाजके बाहर निकल गई, उसका कोई कारण ही उसे खोजे नहीं मिला। उसने जोर देकर कहा है कि रमणी बाबूको उसने कभी किसी दिन प्यार नहीं किया, किसी दिन श्रद्धा नहीं की, अपने स्वामीकी अपेक्षा किसी दिन उसे बड़ा नहीं माना—जिस दिन घर छोड़ा उस दिन भी नहीं। उसने बार बार अपनेसे यही प्रश्न पूछा है; किन्तु उत्तर नहीं पाया। उसने अपने स्वामीसे क्षमा चाही; किन्तु स्वामीके प्रश्नका वह उत्तर नहीं दे सकी। उसने कहा है कि जिस दिन वह स्वयं इसका उत्तर पावेगी, उसी दिन स्वामीको इसका उत्तर जनावेगी। अथ च रमणी बाबूको उसने पुराने फटे कपड़ेकी तरह अथवा उससे भी अधिक किसी हेय वस्तुकी तरह त्याग कर दिया। उन दोनोंकी सम्मिलित जीवन-यात्राका जो चित्र हम पाते हैं, उससे जान पड़ता है कि कभी किसी दिन इन दोनोंमें हृदयका कोई सम्बन्ध नहीं था। रमणी बाबू हर रोज आये हैं, पलँगपर बैठकर पान-तमाखूसे एक गाल आम जैसा फुलाकर वारंवार उन्हीं सब अत्यन्त अरुचिकर संभाषणोंसे और हँसी-दिल्लगीसे उन्होंने उसके मनोरंजनका प्रयास किया है। उसने उनकी लालसा-लिप्त गँदली नजर, उनकी लज्जाहीन अति उग्र अधीरताको बर्दाश्त किया है। इस कामार्त अति प्रौढ़ व्यक्तिके विरुद्ध पर्वताकार घृणा और विद्वेष मनमें रखकर हर रातको वह उसकी शय्याकी साथिन बनी है। तो भी इसी तरह उसका एक युग कट गया है। एक युग कट जाना विचित्र नहीं है; किन्तु इसीके संस्पर्शमें आकर उसका पदस्खलन क्यों हुआ था? इसी 'क्यों' का कोई जवाब उसे ढूँढ़े नहीं मिला। बारह सालसे अधिक समय तक सविता इस प्रश्नकी आलोचना करती रही; किन्तु उत्तर नहीं पाया। शारदाके प्रश्नके उत्तरमें सविताने कहा है—"पद-स्खलनमें क्या कोई 'क्यों' होती है शारदा? यह एकाएक सम्पूर्ण अकारण निरर्थकतामें हो जाता है।" अपने

हृदयकी अली-गलीमें घूमकर और दूसरोंसे पूछकर भी सविताको इस रहस्यका पता नहीं लगा। कह नहीं सकते कि यही उसके स्रष्टाका भी आखिरी जवाब है कि नहीं। शायद शरत्‌चन्द्रने समझा होगा कि स्त्री और पुरुषके बीच जो यौन आकर्षण है, उसके साथ हृदयकी अनुभूतिका सम्पर्क कम है; इसका बुद्धिसे विचार करना या जाँचना असम्भव है। इसके भीतर कोई 'क्यों' नहीं है।

उपन्यास-लेखक चाहे प्रश्न उपस्थित करें और चाहे प्रश्नका उत्तर ही दें, उनकी रचनाकी प्रधान विशेषता यह है कि वह नर-नारीके सम्पर्कका सजीव चित्र खींचेंगे; उनके इस चित्रके भीतर हृदयका रहस्य प्रतिबिम्बित होगा; उनकी जिज्ञासा समाधानका संकेत देगी। सविताका चरित्र अगर सम्पूर्ण उतर पाता, तो शायद उसकी किसी असतर्क बातके बीच अथवा उसके व्यवहारके द्वारा यह रहस्य अच्छी तरह स्पष्ट हो सकता। किन्तु हम उसका सम्पूर्ण चित्र नहीं पाते। जिस उपन्यासको औपन्यासिक समाप्त नहीं कर जा सके, उसका विस्तृत विश्लेपण और आलोचना सम्भव नहीं है। तो भी एक बात जान पड़ती है: उपन्यासका मूल विषय पदस्खलिता नारीका चरित्र अंकित करना है। अथ च उपन्यासका आरम्भ हुआ है पदस्खलनके तेरह वर्ष बाद, और कहानीके आगे बढ़ते-न-बढ़ते ही प्रतिनायक रमणी बाबू अन्तर्द्धान हो गये हैं। कहानीमें दो बातोंने प्रधानता पाई है—सविताने अपने पतिके निकट आश्रय चाहा है और विमल बाबूने सविताके निकट आना चाहा है। पति और कन्याने स्पष्ट करके जना दिया है कि उनके साथ उसका सम्बन्ध या सम्पर्क शेष हो गया है। विमल बाबूने मित्रता चाही है और उसे पाया है; किन्तु नर-नारीका सम्पर्क जिस जगह गहरा, घना और रहस्याच्छन्न है, वहाँ तक यह मित्रता नहीं पहुँची। अतएव शरत्‌चन्द्र किस घटना और परिस्थितिके भीतरसे सविताके चरित्रको सम्पूर्ण रूपसे प्रकट करते, और उसे वह पूरी तौरसे अभिव्यक्त कर पाते या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु यह निश्चित है कि सविताके चरित्रमें उन्होंने एक परम अद्‌भुत रमणीके चरित्रको अंकित करनेका प्रयास किया है और उसके बीचसे नारी-हृदयके गोपनतम और गम्भीरतम रहस्यके ऊपर रोशनी डाली है। असम्पूर्ण होने पर भी यह उपन्यास उनकी स्वकीय प्रतिभाका परिचय देता है।